भैरवी।

लेखक—
श्रीयुत पं० विश्वम्भरनाथ जिज्जा
स० सम्पादक 'भारतमित्र'।

(१)

कौन वीराने में, देखेगा वहार—
फूल जंगल में खिले किनके लिये ?

नाना प्रकार के वृक्ष-लतादि से सुसज्जित, दुर्गम वन में सुहावनी संध्या का पयान हुआ।

बड़े बड़े साखू और सट-वृक्ष, नोकीले महान पर्वतों पर लटक रहे थे। उनकी फैली हुई सुपरिवेष्टित घनी छाँह, और लटकती हुई लम्बी जटाएँ उन पहाड़ों की गुरुता बढ़ा रही थीं। योगी साधुओं की तरह अचल पर्वतों का शान्त साम्राज्य फैला था। ऊपर से, दो चोटियों को चीरती हुई एक छोटी सी सुन्दर जल-राशि उन जटा-जूट-धारी पर्वतों के नीचे इसतरह चुलबुलाती हुई गिर रही थी, मानो कोई अबोध चंचल बालिका अपने पिता के चरणों पर लोट रही हो। अगल बगल कूल-किनारों पर

लगी हुई लताओं और झाड़ियों में लगे नानाप्रकार के मनोहर पुष्प, ऐसे लटक रहे थे, मानो उस मचली हुई बालिका को शान्त कराने के लिये, सर्व प्रिय माता प्रकृति ने लाल पीले रंग बिरङ्गी फूल ऊपर पालने में लटका दिये हों।

पश्चिम दिशा में अंशुमाली धीरे धीरे क्षितिज के नीचे चले। आकाश में अरुण आभा अभी तक फैली है। उस आभा के लाल प्रतिबिम्ब ने स्रोत को बिल्कुल लालोलाल कर दिया है। जैसे, जल में सहस्रों दीपक एक साथ जगमगा दिये हैं। या, पानी में एक न बुझनेवाली भीषण अग्नि प्रज्वलित है।

आकाश की लाली क्रमशः घटने लगी। अंधकार के गर्भ में से संध्या खिसकने लगी। जंगली पक्षियों ने हजारों बोलियों में गान करते हुए वृक्षों पर बसेरा लिया। वन की सन्तति, आनन्द से चहचहा रही थी।

संध्या के इस आगमन में चन्द गुलशब्बू ने खिल कर हृदय खोलदिया,-बहुत समय से बन्दी कीट पतङ्ग स्वतंत्र हुए। कोमल कमल ने कठोरता की, और अरसिक की तरह हृदय बन्द कर लिया। प्रणयी भौंरे को रात भर की कैद हुई! प्रेम पाने की आशा में दिनभर भन भन करते, बिचारे दीन अलि-का यही पुरस्कार है।

स्रोत के समीप एक छोटी सी कुटीर है। उसमें से एक तापसी निकली। व्यतीत संध्या और प्रकृति-सौन्दर्य निहारती हुई तापसी स्रोत के तीर पर बैठ गई। सहज ही भय से काँप जानेवाला स्त्री-हृदय निर्जन वन में निर्भय निवास करता है।

तापसी स्रोत जल की स्वच्छ लहरियों को देखते हुए, धीरे धीरे गाने लगी—

"कौतुक वश, सब प्रेम तुम्हारो।
प्रेम की बंसी, साध के डेरा, प्रणय नीर में डारो।
छवि सुन्दर दिखराय छिप्यो, यह दीनों सुन्दर चारो॥
कौतुकवश, सब०।"

तापसी करुण कंठ से यह गीत धीरे धीरे गा रही थी, और अखंड प्रकृति का सौन्दर्य निहार रही थी। पर, सुरीले कंठ में करुणा के साथ शिथिलता थी—कंठ में कपकपी थी। गाते गाते गला भर गया गद्‌गद्‌ गले में गान गम्भीर होगया। सारे स्वर से रुलाई मालूम होने लगी।

संसार की लीला में, प्रेम के अभिनय में, और मनुष्य की साध में अस्थायी कौतुक है। यह वैसा ही क्षणिक कौतुक है, जैसे एक विचित्र तुच्छ ओस-बिन्दु अपने छोटे से केन्द्र में आकाश के नाना प्रकार के रंग दिखाता है, और पृथ्वी में लुप्त होजाता है।

पर, प्रेम का कौतुक बड़ा दुष्कर है। प्रणय समुद्र में प्रेमी सचमुच एक लालची मत्स्य की नाईं अपनी साध की डोरी में स्वयं खिंचा रहता है। प्रेम-पाश में फँसना ही एक सब से बड़ा कौतुक है।

संध्या बीत गयी थी। रात्रि की काली साड़ी का आंचल आकाश से पृथ्वी पर लटक रहा था। तापसी ने जल के स्रोत से स्नान किया, गेरुए रंग की धोती पहनी, और अपना कमंडल जल से भर कर धीरे धीरे कुटीर की ओर चली।

फूस और पत्तों से बनी कुटीर के सामने धूनी धधक रही थी। व्यतीत-यौवना तापसी कमंडल में जल [illegible] कर वहाँ चौका लगाने लगी।

सहसा, पृथ्वी पर पड़े हुए सूखे पत्ते खड़खड़ाए। तापसी ने चौंक कर पीछे देखा। उसने देखा कि एक पथिक उसकी ओर आ रहा है।

पथिक क्लान्त है—दिन भर चलते चलते थक गया है। तापसी को थके बटोही पर दया आयी। पथिक को रात बिताने के लिये आश्रय मिला।

पथिक की क्षुधा दूर करने के लिये, तापसी ने उसे कुछ कन्द मूल दिये। पथिक ने उन्हें खाया, जल पीया, और तृप्त हुआ।

(२)

रात्रि का पहला पहर बीता। चन्द्रदेव ने निकल कर अपनी चाँदनी छिटका दी है। चाँदनी के निर्मल प्रकाश में सारा वन डूबा हुआ था। वृक्षों के पत्तों में से छन छन कर चाँदनी बरस रही थी। तापसी और बटोही दोनों बैठे रजनी का सुघर सिंगार देख रहे थे।

तापसी ने पूछा,—"बटोहीराज! तुम्हारा कहाँ से आगमन हुआ?"

बटोही ने कहा,—"बस, मार्ग पर चल रहा हूँ। याद नहीं रहा कि—कहाँ से आता हूँ। यदि यहाँ विश्राम न मिलता, तो रात भर बराबर चलता ही रहता। मेरा नित्य-प्रति यही नियम है।"

तापसी ने कहा,—"क्या चलना ही बराबर नियम है?"

बटोही,—"हाँ, और चलते २ जब थक जाता हूँ, तब भी बराबर चलता ही रहता हूं। वन-देवी! मेरा बरसों से यह अभ्यास पड़ गया है।"

फिर बटोही ने तापसी से पूछा,—"तुम इस निर्जन वन में निवास करती हो! तुम यहाँ कब से हो?"

तापसी ने कहा,—"सचमुच पथिक! मुझे याद नहीं। मैं बहुत दिनों से यहाँ हूँ। नगर से वन अधिक भयानक नहीं होता, न वन की सी रमणीक शोभा नगर में होती है, इसलिये अपने निवास के लिये वन से बढ़कर कोई स्थान अच्छा न दिखा। यह वन-पशुओं का नगर है, और मनुष्य रूपी पशु जिस नगर में न हों, मुझे वही रुचिकर है।"

पथिक ने कहा,—"देवी! यह वन तो बड़ा भयानक है! परन्तु......ठीक है, मनुष्य जब वनवासी जीवन व्यतीत करता है, तो उसके लिये वही सुखप्रद, शान्ति प्रद, हो जाता है।"

तापसी ने कहा,—"बटोही राज! हृदय की सच्ची शान्ति इसी शान्तिनिकेतन में है। यहाँ बन्धन, आडम्बर नहीं, मनुष्यों का कुत्सित कोलाहल नहीं। यहाँ हिंसक पशु हैं, पर पशुओं में दया और मैत्री के भाव स्वार्थी मनुष्यों की अपेक्षा बहुत अधिक है। पशु अमैत्री और अशान्ति जानते नहीं। वे स्वयं शान्ति से रहते हैं, और दूसरों को शान्ति से रहने देते हैं। इसीलिये, अपने निवास के लिये मुझे वन प्रिय लगा। मेरी आत्मा को यहाँ अनन्त शान्ति मिलती है। पृथ्वी पर यहाँ स्वर्गीय सुख है।"

पथिक ने चाँदनी को दिखाकर कहा,—"निश्चयही, इस निविड़ शान्ति में जीवन का आनन्द अपार है। यहाँ ईश्वर की शुद्ध दया, प्रेम, और करुणा का विस्तार है। चारों ओर चाँदनी पर दृष्टि डालो—प्रकृति और पहाड़ों की गम्भीरता देखो! यहाँ जैसे प्रकृति वास्तव में सजीव मालूम होती है।"

पथिक ने पूछा,—"देवी, तुम्हारा नाम क्या है ?"

"भैरवी, मेरा नाम है भैरवी" तापसी ने कहा।

तापसी कुछ रुकी–फिर बोली,–"मेरा एक नाम और था, जो जननी ने रखा था, पर वह नाम मैं भूल गयी। अब मैं भैरवी हूं।"

"भैरवी कैसा शान्ति-प्रदायक नाम है!" पथिक ने कहा।

"तभी तो मन में शान्ति मालूम होती है। भैरवी (रागिनी) में एक विचित्र शान्ति है जो अन्य किसी रागिनी में नहीं प्रतीत होती। एक रागिनी और भी अच्छी है—उसका नाम है सोहनी! सोहनी में करुणा प्रधान है—भैरवी में करुणा और शान्ति दोनों हैं। विश्व ब्रह्माण्ड एक वृहत बंसी है, जिसमें हर समय ये दो रागिनियाँ निरन्तर बजा करती हैं। इनके बजने का कोई समय नहीं है। भैरवी में सोहनी और सोहनी में भैरवी मुझे सदा सुन पड़ती है। जब सोहनी सुप्त होजाती है, तब बंसी में भैरवी बजने लगती है। रात्रि का पिछला पहर बीतने के बाद, जब वायु में उड़ती हुई भैरवी प्रभात के प्रथम प्रकाश का स्वागत करती है, तब वही समय साधुओं के ध्यान वन्दन का है। वायु में बोलती हुई भैरवी का प्रभाव सारे विश्व को करुणा और शान्ति का सन्देशा सुनाती है। पृथ्वी और आकाश में गूंजती हुई भैरवी हृदय के एकतारे पर करुणा गान गाती है। तब देवताओं को नीचे उतरकर उसे सुनने की इच्छा होती है। उस समय स्वर्ग के सारे देवता पृथ्वी पर आकर भैरवी सुनते हैं। वही साधुओं की आराधना का समय है।"

तापसी ने आकाश की ओर देख फिर उद्भ्रान्त चित्त से

कहा,—"परन्तु अर्द्धरात्रि में जब सोहनी का सोहावना स्वर गूंजकर विश्व को विमोहित करता है तब उस समय दुःख और दर्द से हृदय भर जाता है। हे पथिक! आज तुम्हें उसी दर्द की एक सोहनी सुनाती हूँ। निराश प्रेम और विफल करुणा दोनों जहां लिपटकर एक होजाते हैं, वहीं उन्मत्त हृदय की एक तीखी तान टूटती है। उसे सुनो। भैरवी गाने लगी,—

"चाह की रही लालसा भारी।
सुन्दर रूप अकथ जेहि भाया, हृदय लियो बैठारी॥
चाह्यो प्रेम नयन नयन सों, कानहुं खबर न पायो।
तन मन दै निज दोउ दोउ को, फल संयोग न खायो॥
मिटी न जब सब साध, नाथ! क्यों बीच विरह दुःख दीन्ह्यो।
स्मृति ही हेत शेष जब तन, तब क्यों जीवन जग कीन्ह्यो?
चाह की० ॥"

भैरवी ने यह गान ऐसा हृदय खोलकर गाया कि—अर्द्ध-रात्रि के पंचम और निषाद का पर्दा भी हिल उठा—सारी दिशाएं उसी गान से गूंजने लगीं। फूंक मारकर चुप होजाने के बाद जैसे बंसी स्पष्ट मीठे स्वर में बजने लगती है, विपंची की तारों पर उंगलियाँ चलाने के बाद जिस तरह तारें झन-झना उठती हैं, उसी तरह इससमय गान समाप्त कर, तापसी के चुप होने के बाद सारा निर्जन निस्तब्ध स्थान गूंज उठा। समस्त दिशाओं में सोहनी की मीठी चीत्कार सुन पड़ने लगी। गान सुनते सुनते पथिक, बैठा मूर्तिवत हो गया।

भैरवी ने पथिक से कहा,—"जब प्रथम बार मन्दाकिनी के तीर पर मैं ने यह गान सुना था तो उस समय आकाश में

मेघों की हलकी चादरें आती जाती थीं । मुझे ऐसा जान पड़ा कि जैसे मेघों के अन्तरिक्ष में वही स्वर गूंज रहा है। एक बार इच्छा हुई कि—मैं भी यह गान ज़ोर से गाऊं, अथवा बादलों पर बैठकर आकाश में बादलों में वह गान गाऊं और सुनूँ—सारे वायुमंडल को गुंजा दूँ। एक बार ऐसी इच्छा हुई कि, सूक्ष्म से सूक्ष्म—अति सूक्ष्म बनकर—प्रेम-लालायित हृदय में घुस जाऊँ, और इस गान का स्वर फूँकूं—हृद्तंत्री में इसे बजाऊँ । मुझे यह गीत ऐसा अच्छा मालूम हुआ कि—सारे विश्व में इसे फैलादूं । प्रेमी पपीहे को यही गान सिखा दूं, जो 'पी कहाँ' के बदले इसे रटा करे। विश्व को प्रियतममय निरखने पर जब विरह में मधुर मिलन का आभास होगा, तब इस गान की आवश्यकता होगी, इसी लिये इच्छा हुई थी कि—किसी पक्षी से इस पृथ्वी के ऊपर आकाश में उड़ते उड़ते इस गान को गाने के लिये कहूँ ।

"यौवन के प्रथम प्रभात की किरणें सौन्दर्य का प्रकाश खोजती हैं। सौन्दर्य जहाँ होता है, सुन्दर आत्माएँ वहीं आकर भटकती हैं । पक्षियों का बोलना, फूलों का खिलना, चन्द्र का चमकना, सभी सुन्दर हैं । पर, मनुष्य के सुन्दर हृदय से बढ़कर संसार में और कोई सुन्दर वस्तु नहीं है। समस्त गुणों से समावेश सौन्दर्य की सृष्टि जिस हृदय में होती है, वह हृदय धन्य है ! उसी की सच्ची चाहना होती है ।

"चाह को रही ललसा भागी ।

सुन्दर रूप, अकथ जेहि भाषा, हृदय लियो बैठारी ।"

"अकथनीय सौन्दर्य को चाहने की लालसा मनुष्य को प्रेम करना सिखाती है । हे सुन्दर ! मनोहर रूपवाले मोहन ! तुम्हें कहां बैठाती ? जिस चाह और आशा से चातक

नील नीरद निहारते निहारते नीलाम्बर में लीन रहता है—जिस मंगलमय, मृदु अवलोकन की अभिलाषा में चकोर चांद को देखता है, हाय! यही चाह, असीम आशा—और आन्तरिक अभिलाषा एक समय मुझे भी थी। चकोर और चातक अपने सुन्दर को कहीं बैठा नहीं सके, पर मैं ने तो अपनी स्मृतियों का घर—मान, गौरव, और मर्यादा का पवित्र स्थान—हृदय—बैठने के लिये दिया था। हे सुखद! मेरे सुन्दर! हे पूर्ण आदेशों से अङ्कित! मेरी वासनाओं से वासित! तुम्हारे बैठाने योग्य स्थान मैं और कहाँ पाती! तुम्हें किसी की कुदृष्टि न लगे, इसलिये शरीर के अन्तः-पुर—हृदय—में तुम्हें छिपा कर बैठाया था। परन्तु, जिस सुख और साध की लालसा से तुम्हें बैठाया था, उसे शायद तुमने उस ऊतड़गाम में नहीं पाया।"

तापसी फिर विक्षिप्त होकर गाने लगी,—"बाढ्यो प्रेम नयन नयन सों कानहुँ खबर न पायो। तन मन दै निज दौड़ दौड़ को फल संयोग न खायो।"

"संसार में सब चीज़ों का बढ़ना मालूम होता है, पर प्रेम की गति कोई नहीं जानता। इसी का जीवन पर्यन्त दुःख रहा कि—प्रेमवल्ली कैसे फूलती, फलती, और फैलती है! इसका एक बार यदि अनुभव कर पाती। आँखों आँखों में प्रेम होजाता है। और कानों-कान खबर नहीं होती। प्रेम-स्रोत के प्रवाह की गति अति तीव्र होती है, शायद इसी से कुछ जान नहीं पाते। हाय, इसीलिये तो मैं कहती हूँ, —"बाढ्यो प्रेम नयन नयनन सों कानहुं खबर न पायो।"

"आँखों आँखों में प्रेम होजाता है, और कानोंकान खबर नहीं होती। आँखों में प्रीति समा जाती है—आँखें,

आँखों को तुरन्त पहिचान लेती हैं—सारे हृदय में एक मधुर रस तैरने लगता है। जैसे, आँखों में अभूतपूर्व अनोखा संसार दिखने लगता है—फिर, इस संसार का ध्यान नहीं रहता। तभी तो आँखें सुन्दर आँखों के सागर में डूबकर लीन होजाती हैं। आँखें, सुन्दर आँखों में रहजाती हैं। आँखें हृदय में पैठकर आत्मा को खींच लाती हैं। सारे हृदय में एक महा क्रान्ति मचा देती हैं। पर, तो भी कानों को ख़बर नहीं होती। यही आँखों की रीति है, अनरीति है, और प्रीति है।

"तन मन दै निज दोउ दोउ को फल संयोग न खायो।"

"किसी ने दिया है? तन, मन देने पर भी फल कुछ न मिले। यह कैसा अजीब सौदा है? पर, तन मन देने पर भी जो न मिले, तो समझना चाहिये कि सौदा सचमुच महँगा है। इस महँगी को दूर करने के लिये चाहे हृदय के सारे छिपे हुए रत्न—पुण्य, तप और भक्ति—खर्च डालो, तो भी सस्ता न होगा। जितना ही पाने के लिये आगे बढ़ोगे उतनाही वह दूर होता जायगा। आँसुओं के नीर से चाहे हृदय की भूमि को सींच डालो, पर यह ऊसर भूमि की सिंचाई है। अनन्त, अविनाशी और अखण्ड आत्मा का संयोग संसार में कहाँ मिलता है। दोनों जब तन मन देदेते हैं, तोभी संयोग-फल क्यों दूर रहता है?

"मिटी न जब सब साध नाथ! क्यों बीच बिरह दुख दीन्हो।"

"मन की साध नहीं मिटी, पर विरह क्यों हो गया? साध न मिटे—न मिटे! पर, हम जिसे प्यार की वस्तु समझते हैं, वह क्यों अलग हो जाती है! पपीहा की 'पी कहाँ' का दुःख भरा है। पिछले सुख की याद में हृदय

जब बेचैन होता है, तभी शायद पपीहा 'पी कहाँ' कहता है। हृदय में हूक उठती है—वह कहता है 'पी कहाँ ?', मन में टीस की वेदना होती है—चिल्लाता है—'पी कहाँ ?' विरह में रोते रोते यही 'पी कहाँ' कहने की उसकी बान पड़ गयी है। सर्वस्व खोकर शायद उसने यह 'पी कहाँ' का मंत्र सीखा है। अभी नहीं भूलता। कृष्ण-विरह में वियोगिनी ब्रज-बालाओं ने कजरारी आँखों से रोकर कालिन्दी का जल काला कर दिया। यमुना के 'कलकल' नाद में जैसे 'हा कृष्ण ! हा कृष्ण !' की ध्वनि गूंज रही है।

"स्मृति ही हेत शेष अब तन, तब क्यों जीवन जग कीन्हों ?

"विरह के बाद, यह जीवन जब केवल उस विरह को याद रखने के लिये है, तब यह व्यर्थ जीवन तुरन्त क्यों नहीं समाप्त हो जाता ? हाय, किसी की याद में जब जीवन पर्यन्त रोना है, तब सारा रोना एकदम क्यों नहीं आजाता ? जिससे जीवन का अन्त हो जाय। स्मृति का बोझा अत्यन्त भारी होता है, तो भी मनुष्य उसे क्यों उठाता है ! किस तरह उठा सकता है ? मन के साथ तो अब मोहिनी माया भी लिपट कर मन को नहीं फुसला सकती। आशा भी सहारा नहीं दे सकती। तब, ऐसा माया-मोह से रहित; निराशा-पूर्ण जीवन अब तक क्यों बना है ? फूलों में किस बुलबुल का प्यार अब भी बना है ! प्यारी रजनी की विदाई के बाद प्रभात के आकाश में किसके सोहाग की सुर्खी चमक रही है ? जिसका तुरन्त हो अन्त हो जाना चाहिये, उसका अस्तित्व अब तक क्यों बना है। दीपक में जब तेल नहीं दीपक क्यों जल रहा है !"

(३)

कहते कहते तापसी रो उठी। सुनते सुनते पथिक चिल्ला
ठा। उसने कहा,—"भैरवी ! जब तुम्हारी सारी बातों की
याद इतनी पक्की है तो तुम "गौरी" नाम को कैसे भूल गयीं?
क्या तुम 'समाज-पीड़िता' गौरी नहीं हो ?"

"गौरी" शब्द ने तापसी को चौंका दिया। जिस हृदय
में संध्या प्रभात, सुख दुःख, आशा निराशा, का कुछ भी ज्ञान
न रह गया था, उसके कोने २ में समस्त काल की अनन्त
घड़ियाँ एक साथ बजने लगीं। तापसी को हृदय में प्रबल
आन्दोलन मालूम हुआ। शान्त हृदय-सागर एक बार ज़ोर
से उछल उठा।

उसने चाँदनी के प्रकाश में पथिक को ध्यानपूर्वक पुत-
लियाँ जमा कर देखा। वह फिर एक क्षण चुप रह कर विचा-
रने लगी,—"अहा यह चमत्कार कैसा ? मुझे गौरी कहने
वाला यह पुरुष कौन है ?"

पथिक ने रोते हुए कंठ से फिर कहा,—"गौरी ! तुमने
सारी स्मृति को बटोर कर अपने को क्यों अपार कष्टों में
डाला। घर का सुख छोड़कर जंगल में इतना कठोर त
क्यों कर रही हो ?"

तापसी ने सहसा कहा—"तुम कौन हो ? तुम कौन हो !
यह कैसा चमत्कार ! क्या मोहन हो ! मेरे मृदु भाषी पथिक,
तुम कौन हो ? बताओ ?"

पथिक ने करुणकंठ से कहा,—"मैं एक प्रमाद की अस-
म्भव कल्पना हूँ मुझे न पूछो, मैं कौन हूँ। मैं एक पीड़ित आत्मा
की [illegible] हूँ। जलते हुए हृदय की आग हूँ। पर तुम्हें,

फिर कभी इस जीवन में देखूँगा, ऐसी आशा तो कभी न थी। गौरी अहा तुम हो ?"

तापसी ने पास जाकर पथिक को देखा, और आँसू बहाये। कहा,—" मोहन ! इस जन्म में अपने जिस वांछित फल को फिर देखने की आशा न थी, उसी को दूसरे जन्म में पाने की लालसा से तपस्या करती थी, पर यह कभी न सोचा था कि—भगवान के इस शान्तिनिकेतन में आत्म-समर्पण करते करते फिर उस मनोहर दुर्लभ द्रव्य को देखूँगी। आओ, मोहन ! प्रियतम ! आज मिल जायँ। शरीर को नहीं, मन को मन से मिला दें। प्राणों के भीतर से हाथ निकाल कर दोनों हाथ मिलाते मिलाते, आओ मोहन उस अनन्त सागर तक दौड़ चलें—दौड़ कर मिल जांय जिसमें सारा विश्व मिलकर लीन हो रहा है—आओ, हम भी उसी में लीन हों। वियोग की वेदना जहाँ फिर न सताये, इससे खूब डूब कर लीन हों। जहाँ पर काल, आकाश, और कल्पना का अन्त हो जाता है—चलो, उस अनन्त सीमा तक चलें। क्षितिज के उस पार, उस अनन्त शून्य स्थान में प्रकृति की प्रारम्भिक अवस्था छिपी है ! वहाँ प्रेम राजा है—चलो, वहाँ की हम प्रजा हों ! आओ हृदय को हृदय से मिला दें—उस अनन्त सीमा के पार इन युग्म हृदयों के अतिरिक्त और कुछ न हो ! आओ, प्राणधन ! प्राणधन !"

विरहिणी ने दोनों हाथ आकाश की ओर फैला दिये—जैसे भगवान की भिक्षा हाथों में ली। फिर—उसने अपने हाथ पथिक की ओर बढ़ाये, और कहाः—"मोहन, तुम धन्य हो ! जीवन में फिर मिलन होता है। यह विश्व की रचना फिर एकबार कैसी मनोहर मालूम होने लगी। अहा,

फिर कभी इस जीवन में देखूँगा, ऐसी आशा तो कभी न थी। गौरी अहा तुम हो ?"

तापसी ने पास आकर पथिक को देखा, और आँसू बहाये। कहा,—" मोहन ! इस जन्म में अपने जिस वांछित फल को फिर देखने की आशा न थी, उसी को दूसरे जन्म में पाने की लालसा से तपस्या करती थी, पर यह कभी न सोचा था कि—भगवान के इस शान्तिनिकेतन में आत्म-समर्पण करते करते फिर उस मनोहर दुर्लभ दृश्य को देखूँगी। आओ, मोहन ! प्रियतम ! आज मिल जायँ। शरीर को नहीं, मन को मन से मिला दें। प्राणों के भीतर से हाथ निकाल कर दोनों हाथ मिलाते मिलाते, आओ मोहन उस अनन्त सागर तक दौड़ चलें—दौड़ कर मिल जांय जिसमें सारा विश्व मिलकर लीन हो रहा है—आओ, हम भी उसी में लीन हों। वियोग की वेदना जहाँ फिर न सतावे, इसमें खूब डूब कर लीन हों। जहाँ पर काल, आकाश, और कल्पना का अन्त हो जाता है—चलो, उस अनन्त सीमा तक चलें। क्षितिज के उस पार, उस अनन्त शून्य स्थान में प्रकृति को प्रारम्भिक अवस्था छिपी है ! वहाँ प्रेम राजा है—चलो, वहाँ की हम प्रजा हों ! आओ हृदय को हृदय से मिला दें—उस अनन्त सीमा के पार इन युगल हृदयों के अतिरिक्त और कुछ न हो ! आओ, प्राणधन ! प्राणधन !"

विरहिणी ने दोनों हाथ आकाशकी ओर फैला दिये—जैसे भगवान की भिक्षा हाथों में ली। फिर—उसने अपने हाथ पथिक की ओर बढ़ाये, और कहा:—"मोहन, तुम धन्य हो ! जीवन में फिर मिलन होता है। यह विश्व की रचना फिर एकबार कैसी मनोहर मालूम होने लगी। अ—

यह आकाश और पृथ्वी का अस्तित्व विल्कुल निरर्थक नहीं है। जहाँ, प्रियतम आत्माएँ कभी न कभी भूले भटके अवश्य मिल जाती हैं!"

गौरी (तापसी) विमुग्ध हो देखने लगी। मोहन भी अवाक् होकर उसे सिर से पैर तक देखने लगा।

आकाश के अन्तिम प्रभा-हीन तारे विदा हो रहे थे। मोतियों की सुराही की तरह 'कहकशाँ' (तारों का गुच्छा) धीरे धीरे खिसक रही थी। रजनी अपने काले आँचल को समेटे प्रभात के पर्दे में विलीन होरही थी। जैसे, रजनी की अन्तिम विदाई के उपलक्ष में प्रकाश और अन्धकार परस्पर गले मिल रहे थे।

सूर्य्य भगवान ने हसते हँसते अपनी पहली किरणें इन प्रेमियों के मुखपर फेंकी। मलय पवन ने उनके दग्ध हृदय शीतल किये।

इति।

अमेरिकन युवती।

लेखक-
श्रीयुत सूरजप्रसाद शुक्ल।

(१)

मदन देखने में बहुत सुन्दर था। उसका रंग गोरा, शरीर बलिष्ठ और कद ऊँचा था। उसका कंठ तो अत्यंत मधुर था। जब वह गाता तब श्रोतागण उसे चारो ओर से घेर लेते थे। वह संगीत-विद्या का प्रेमी था। अमेरिका जैसे देश में रहकर भी वह अपने पास सितार रखता था।

रविवार का दिन था। शीत के कारण जनेवा झील का जल जम गया था। शिकागो निवासी ऊनी कपड़े पहने हुए पार्क में भ्रमण कर रहे थे। झाल के तट का फील्ड्स म्युज़ियम लोगों से भरा था। बर्फ़ पर नर नारी स्केटिंग खेल रहे थे। सर्वत्र प्रसन्नताही दिखाई पड़ती थी। इसी समय मदन शिकागो यूनिवर्सिटी के बोर्डिंगहाउस में बैठा हुआ अरोरा-मिकडेल की राह देख रहा था।

अरोरा-व्रिकडेल, एक अमेरिकन युवती थी। वह स्वर्गीय लावण्य-परिवेष्ठित थी। यदि उसे ऊषा कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। उसके सुनहले केश कटि प्रदेश तक लहराते रहते थे। उसकी आँखे स्वच्छ, आकाश के सदृश नील वर्ण की थीं, कपोल पूर्ण विकसित गुलाब के समान थे। यह सब होते हुए भी उसके पास धन न था। वह अपनी सुन्दरता को बढ़ाने के लिये बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण चाहती थी। वह धन के अभाव के कारण सदा दुखी रहती थी। ईस्टर का समय आता था, क्रिस्टमस की छुट्टी होती थी और प्रेमी प्रेमिकायें आमोद-प्रमोद करते थे, किन्तु वह इन दिनों में घर के बाहर बहुत कम निकलती थी। उस कल्प-काल को वह पियानो बजाने और गाने में व्यतीत कर देती थी।

मदन को अकेले आज चैन न पड़ती थी। बोर्डिंगहाउस के सब विद्यार्थी आज खेल खेलने चले गये थे। मदन बार २ वातायन से बाहर देखता था, किन्तु अरोरा-व्रिकडेल दिखाई न पड़ती थी। उसकी विकलता बढ़ गई। वह उठ कर कमरे में कभी जल्दी २ कभी धीरे २ टहल कर कुछ सोचने लगा। वह अरोरा के दुःख का कारण जानता था। उसने कई बार उसे क्रिस्टमस गिफ्ट देने के प्रश्न पर गंभीरता पूर्वक विचार किया। एक बार तो वह बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण भी ले आया था, किन्तु वह उपहार अपनी प्रेमिका को किसी कारण वश न दे सका। आज उसने उस संचित गिफ्ट को दे देने का पूर्ण संकल्प कर लिया।

सायंकाल होगया और नगर बिजली की रोशनी से जगमगा उठा, किंतु अरोरा-व्रिकडेल न आई। मदन निराश हो गया। वह सितार उठा कर बजाने लगा। उसकी मंजुल

झनकार में कमरा गूंज उठा। मदन तल्लीन होगया। अरोरा ग्रिफडेल चुपचाप आकर मदन के पास बैठ गई। मदन को यह मालूम भी न हुआ कि अरोरा उसके पास आकर कब बैठी। वह भी वीणा की ध्वनि सुनकर अपने को भूल गई। क्रमशः वह मंजुल स्वर रुका।

अरोरा ने आश्चर्य से पूछा—"मदन" तुम जादूगर हो?"

मदन चौंक पड़ा। उसने कहा—"अरोरा, तुम कब से बैठी हो?"

अरोरा ने केवल मुस्करा दिया। उसने फिर पूछा—"प्यारे मदन, तुम वैद्य हो? मेरे सिर में पीड़ा थी, किन्तु अभी वीणा-रव सुनते २ मैं अच्छी होगई।"

मदन तत्काल अरोरा के विलम्ब का कारण समझ गया उसने बड़े ध्यान से अरोरा को सिर से पैर तक देखा। वह कहने लगा—"प्यारी अरोरा, ऐसी भयंकर शीत में तुम ऐसे कपड़े पहनती हो।"

अरोरा ग्रिफडेल इस प्रकार बोली कि मानो उसने मदन के शब्द सुने ही नहीं। वह उसके प्रश्न को उड़ा देना चाहती थी। वह कहने लगी—"मि० मदन, राजर्षि अब्राहम लिङ्कन के जन्मोत्सव के समय एक राष्ट्रीय नाटक खेलने वाले हैं। आप नायक का पार्ट लीजिये और मैं नायिका का।" यह कह कर वह बड़ी उत्सुकता से मदन की ओर देखने लगी। मदन सब समझ गया। खेल की सफलता पर नाटक के पात्रों को उपहार मिलता है। इसी उपहार की आशा पर अरोरा ग्रिफडेल शीतकाल के लिये कपड़े बनवाना चाहती थी। मदन को बड़ा दुःख हुआ। उसने उठ कर ट्रंक से बहुमूल्य कपड़े और आभूषण निकाल कर अरोरा ग्रिफडेल के सामने रख

दिये । उसने आश्चर्य से मदन की ओर देखा । मदन का मुख गंभीर था । वह फिर उपहार की ओर देखने लगी उपहार रत्न-जटित वस्तुओं से जगमगा रहा था । अरोरा ब्रिकडेल के कपोलों पर अश्रु चुचुआ आये । वह सब समझ गई । मदन ने सब आभूषण और वस्त्र अरोरा को पहना दिये उसे एक दर्पण के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया । अरोरा ब्रिकडेल आज अपने लावण्य को देखकर आश्चर्य और आनन्द से प्रफुल्लित हो उठी । उसने प्रेम से मदन की ओर देखा वह हँस रहा था । उसकी आँखों में एक पवित्र सौन्दर्य झलक रहा था । अरोरा के प्रेमाश्रु बह पड़े । अश्रुओं ने सुन्दरी के सौन्दर्य को, बढ़ा दिया । मदन ने अरोरा ब्रिकडेल को गले से लगा लिया और उसके हाथ में एक स्वर्ण-पत्र दे दिया उसमें केवल यह खुदा था—"अरोरा ब्रिकडेल और मदन ८०,००,०००) रुपये ।"

(२)

जब अरोरा मदन के साथ ऐक्टिंग करने जाती तब उसे तटस्थ दर्शकगण 'चीअर्स' ही देते थे और जब वे दोनों नृत्य करते तब उनकी दृष्टि उस ओर खिंच जाती थी । दर्शक कहते थे कि जितनी पवित्रता, जितना प्रेम अरोरा और मदन के नृत्य में दिखलाई पड़ा, उतना बहुत कम देखने को मिला । अरोरा और मदन कुछ दिनों में प्रख्यात ऐक्टर होगये । अब अरोरा का रूप कई युवकों की आँखों में गड़ने लगा । सुन्दर युवतियाँ उससे ईर्षा करने लगीं । कई युवक अरोरा से मैत्री करने आते और साथ नाचने की विनती करते, किन्तु वह इन्कार कर [illegible] और स्नेह से मदन की ओर देख लेती थी । मदन

पर मुस्करा देता था। वह युवक फिर कभी उससे ऐसा कोई प्रस्ताव न करता था।

महात्मा अब्राहम-लिंकन का जन्मोत्सव निकट आगया। महानगरी में जब नागरिकों ने यह बात सुनी कि अरोरा-ग्रिकडेल और मदन राष्ट्रीय नाटक में खेलेंगे तब तो दो दिन नाटक के पूर्व ही सीट रिजर्व होगई। खेल के दिन हाल खचाखच भर गया।

अंत में नाटक आरंभ हुआ। मदन और अरोरा रंगमंच पर आये। दर्शकों ने तालियों की कड़कड़ाहट से अपना उत्साह दिखलाया। दोनों का उत्साह बढ़ा और उन्होंने नाट्यकला का उच्चतम विकास दिखला दिया। समाचारपत्रों के चित्रप्रेषकों ने उनका कई बार चित्र लिया। किन्तु आज मदन का हृदय एक अचिन्त्य और अव्यक्त वेदना से विदीर्ण हो रहा था। वह खेलता था, गाता था, हँसता था, रोता था, किन्तु वह बिलकुल स्वाभाविक जान पड़ता था। जिनका जीवन नाटक देखने में व्यतीत हुआ था, वे भी न जान सके कि यह स्वाभाविकता है या कृत्रिमता। जब अब्राहम लिंकन की मृत्यु दिखलाई गई, तब दर्शकों की आँखों से अश्रु गिरने लगे। कई ने तो अपनी आँखों में रूमाल लगा लिये। अन्त में यवनिका पतित हुई, और तालियों की कड़कड़ाहट हुई।

अरोरा ग्रिकडेल और मदन नाटकघर के बाहर आये। प्रत्येक पुरुष और स्त्री के मुख पर दोनों की प्रशंसा थी। अरोरा अत्यन्त प्रसन्न थी, किंतु मदन के मुख पर बड़ी विषाद के चिन्ह थे। अरोरा उससे वार्तालाप करती थी परंतु वह उसकी ओर कुछ ध्यान ही न देता था। वह किसी वस्तु का ध्यान करता हुआ घर की ओर चला आरहा था। इसी

समय किसी ने कहा--"मदन भी कितना सुन्दर है!" आ
ने पीछे फिर कर देखा। दो दर्शक बात करते चले जारहे
मदन अपने ध्यान में ही मग्न रहा। अरोरा फिर मदन का
पकड़कर चलने लगी। अंगस्पर्श होते से मदन चौंक
अरोरा बहुत समय से मदन के हाव भावों का और
म्लान मुख का अध्ययन करती चली आरही थी। वह अ
उसके मानसिक क्लेश का कारण न समझ सका।
प्रसन्नता भी चिन्ता के रूप में परिणत होगई।
व्याकुलता से मदन के गले में अपनी कोमल गोल भुजा
डाल कर केवल कहा--"प्यारे!" वह फिर उसके मुख
ओर देखने लगी। जिस संबोधन से मदन का कमल
खिल उठता था वह आज न खिला।

मदन ने केवल अरोरा की ओर देखा और एक
निश्वास छोड़ दी। अरोरा विकल की चिन्ता बढ़गई
फिर पूछा--"प्यारे, सुख के समय यह दुःख क्यों?"

मदन ने स्नेह से अरोरा का हाथ पकड़ लिया।
पर पवित्रता, गंभीरता, उदासीनता और चिन्ता झलक
थी। वह कहने लगा--"आज मेरा प्रेम, मेरा सुख
और मेरा मीठा स्वप्न निराशा की श्वास में मिलगया।
की पुकार पर मेरी वह आशा निराशा में परिणत होगई।

अरोरा अब तक शांति से सुन रही थी। उसने हृदय
कर कहा--"प्यारे, निराशा कैसी?"

मदन--"वतलाऊँ निराशा कैसी?--आज जब तु
राष्ट्रीय अभिनय हो रहा था, जब गुलामी नष्ट करने के
अमेरिकनों का वलिदान हुआ था, तब मेरे
यज उठे थे। उस समय मैंने सहसा सुना--

तवर्ष में भी क्या ऐसा राष्ट्रीय उत्सव होता है ?" इस
य मैंने प्यारे देश की गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ
ा। अमेरिका की स्वतंत्रता के साथ मुझे भारतवर्ष की
तंत्रता, अमेरिका के सुख के साथ मुझे प्यारे देश का
ख स्मरण हो आया। मेरा हृदय क्षुब्ध हो उठा और आँखों
अश्रु की अविरल धार बह पड़ी। उसे धारा में मेरी आशा
ी बह गई, अरोरा !"

अरोरा—"प्यारे मदन !"

मदन—"मैं पराधीन हूँ और तुम स्वाधीन हो। हमारे
म्हारे बीच में एक भयानक जल-प्रपात लहरें मार रहा है।
तुम्हें जितना निकट समझता था किन्तु तुम उतनी ही दूर
े। तुम एक आकाश की दुर्लभ तारिका हो। दूर से मैं तुम्हें
केवल देख सकता हूँ किंतु पा नहीं सकता। तुम मेरी स्वाधी-
ता की प्रतिमा हो और मैं तुम्हारा उपासक हूँ। इस
पासना के बदले मैं तुम्हारी करुणा चाहता हूँ। क्या दे
सकोगी ?"

अरोरा ने आश्चर्य से कहा—"करुणा !"

मदन—"हाँ अरोरा, मैं घुटने टेककर तुम से करुणा की
भिक्षा माँगता हूँ। मैं ने तुमसे प्रेम कर अपराध किया है।
गुलामी और स्वाधीनता एक साथ नहीं बँध सकते। मुझे
क्षमा करो अरोरा !"

अरोरा का हृदय धक से होगया, यदि वह इंजन का
बाइलर होता तो फटजाता। उसने मदन को उठाकर हृदय से
लगा लिया और उसकी भुजाओं के बीच में मुँह छिपाकर
रोने लगी। उसके अश्रु से मदन का वक्षस्थल भीग गया।
अरोरा ने कहा—"प्यारे मदन, यह करुणा की भिक्षा है ! मैं

इतना बड़ा स्वार्थ-त्याग न कर सकूँगी। मेरे हृदय में अभी इतना बल नहीं है। मैं तुम्हें न छोड़ सकूँगी। मैं अपनी आँखों के तारे को, अपने जीवन के सुख दुःख के साथी को, पर स्वार्थ के लिये न देसकूँगी। तुम मुझसे प्रेम करो मदन! प्यारे मैं तुम्हारी हूँ और तुम मेरे हो।"

पुरुष का हृदय और उसका बल अबला के रोदन औ निर्बल बाहु-पाश से पराजित हो चला। इसी समय किसी अव्यक्त दैवी शक्ति ने उसके हृदय में नव स्फूर्ति का संचार किया। मदन ने अरोरा ब्रिकडेल के बाहु-पाश से छुटकारा पाकर कहा-"अरोरा, अरोरा! मैं अब तुमको उस दिन आलि गन करूँगा जब मेरा मस्तक स्वाधीनता के स्वर्गीय राज्य गर्व से खड़ा होगा। तुम्हारा प्रेम, तुम्हारा सौन्दर्य, तुम्हा कोमल भुजायें मुझे उस दिन शोभा देंगी जब मेरा देश स्व धीन होगा। अभी तो ये मेरा उपहास मेरा अट्टहास करती हैं।

इतना कह कर मदन चलने लगा। अरोरा ब्रिकडेल वहीं खड़ी रह गई। मदन कुछ दूर पर जाकर खड़ा होगया। देखा कि अरोरा रो रही है। मदन कुछ सोचकर लौट पड़ा वह कुछ दूर आकर रुक गया और फिर बिना कुछ शीघ्रता से चला गया। जाते समय उसने देखा कि अ वृक्ष से टिक गई है और उसकी ओर अश्रुभरे नयनों से रही है। यदि यह वृक्ष न होता तो वह भूमि पर गिर

(३)

के समय मदन किडन-गार्डन में घूम से अरोरा ब्रिकडेल न आई थी। मदन के मकाओं के साथ उद्यान में विचरण कर रहे

उसके साथी उसे आजकल अकेले देखकर आश्चर्य करते और अरोरा के विषय में नाना प्रकार की कल्पना करते थे। आज मदन को भी अरोरा का विरह असहनीय हो गया। वह एकान्त में बैठकर कुछ सोचने लगा। अरोरा की कमनीय कांति, उसका म्लान मुख, उसके कपोलों पर अश्रु की लड़ी, उसकी विकल दृष्टि और कातर प्रार्थना, उसे क्रमशः स्मरण हो आये। वह काँप उठा। उसने स्वतः कहा-"अरोरा हृदयहीन नहीं है। उसके हृदय है, दिल है। उस दिन उसी दिल पर आघात हुआ है। संभव है कि वह दिल टूट गया हो।" मदन ने स्वयं सोचा—"वह दिल टूट गया हो।" तब उसकी विकलता और बढ़ गई। वह उस हरी घास पर टहलने लगा। समीर बही और कानों में सन सन कर कह गई—"मदन, अरोरा का दिल तो टूट गया।" जब हृदय में ही शान्ति नहीं है सुख नहीं है तब प्रकृति में सुख की खोज करना व्यर्थ है। प्रकृति की मनोहारी सुन्दरता, उसके सुख के अनन्त भंडार तो हृदय की शान्ति और सुख की छाया है। संसार का सब सुख और दुःख शांति और अशांति तो हृदय ही में है। जब मदन ने हृदय ही से शांति खो दी तब उसे बाह्य प्रकृति भी अशांतिमय दृष्टिगोचर होने लगी।

मदन को जब किसी प्रकार शांति न मिली—तब वह झील के किनारे चला गया। वह वहां एकान्त में बैठ गया। जनेवा झील अपने स्निग्ध जल कलेवर पर अमेरिका देश के नवयुवक और युवतियों की नौकाओं को लिये कल्लोल कर रही थी। उसकी तरङ्गों को पार कर मदन को किसी युवती का गान सुनाई पड़ा। उस रागिनी को सुनतेही विरही मदन का विरह बढ़ गया। उसे सर्वत्र अरोरा की छाया

दिखाई पड़ने लगी। उसने सोचा—"यदि इस समय अरोरा होती तो मैं उसकी आँख की नीलिमा की तुलना जनेवा झील के निर्मल नील जल से करता, उसके केशों की तुलना इस डेफेडिल के सुनहले रंग से करता, और उसके मुख की तुलना उस चन्द्र से करता। इतना कह के मैं उसका मुख चूम लेता। मेरा संतप्त हृदय शीतल हो जाता। हाय! इस समय उसका सुन्दर चित्र ही होता।"

वह संगीत उसे सन्निकट ही कर्णगोचर होने लगा। कुछ समय में एक नौका किनारे आई। कुछ लोग उतरे। मदन उस ओर दौड़ पड़ा। वह ज़ोर से कह उठा—"अरे इसमें तो प्यारी अरोरा ही बैठी है।" अरोरा मदन को देख कर जहाँ की तहाँ खड़ी रह गई। उसकी आँखों में अश्रु के बूंद चमक उठे। मदन ने उसका हाथ बड़े स्नेह से पकड़ लिया। अंग-स्पर्श मात्र से मदन को किसी अन्तर्निहित शक्ति ने भारत का स्मरण करा दिया। दूसरी किसी शक्ति ने उसका उपहास किया। उसने कहा—"मदन, भारत का स्मरण करने का यह समय नहीं है। देख तेरे सामने रूप और प्रेम की जीवित मूर्ति खड़ी है। इसे आलिंगन कर; जीवन का उपभोग कर।"

मदन ने अरोरा के दोनों करकमलों को स्नेह से अपने हाथ में लेकर कहा—"अरोरा!"

आगे वह कुछ न कह सका। उसका गला रूँध गया अरोरा-ब्रिकडेल ने केवल मदन की ओर देखा। उसकी बड़ी आँखों से अश्रु बह पड़े। मदन ने उसको गले से लगा लिया और मुख चूम कर कहा—"प्यारी मुझे क्षमा करो। अपने प्रेम के उज्वल प्रभात से मुझे आलोकित करो।"

दोनों एक बेंच पर बैठ गये किसी ने कुछ न कहा। मद

फिर कहने लगा—"प्यारी अरोरा यह क्रिस्टमस का समय है। संसार में लोग आनन्द कर रहे हैं। तुम शोक मत करो।"

अरोरा-ब्रिकडेल ने कुछ भी न कहा। उसके कपोलों पर अश्रु ढलक आये थे। मदन ने उसके अश्रु पोंछ कर कहा—"प्यारी, तुमने मुझे क्षमा न किया। यदि तुम जानतीं कि मेरे हृदय में कैसा भीषण संग्राम होरहा है, कैसा भयानक तूफान उठ रहा है तो तुम मुझे क्षमा कर देतीं।"

अरोरा धीरे २ कहने लगी—"नहीं २ मदन! तुम मुझे क्षमा करो। स्वाधीन देश अमेरिका की युवतियाँ प्रेम करना जानती हैं। वे अपने प्रेमियों की गुलामी नष्ट करने के लिये बलिदान कर सकती हैं। इसी बलिदान ने हमारे देश को स्वाधीनता का पवित्र स्वर्ग बना दिया है।"

यह कुछ अधिक ज़ोर और गम्भीरता से कहने लगी—"मैं गौरवान्वित हूँ कि मैंने एक देशप्रेमी से प्रेम किया। हमारे देश में नवयुवक देश की स्वाधीनता के लिये हुर्रे २ कह कर तोप के मुँह पर छाती अड़ा देते हैं। यदि तुम से मैंने प्रेम किया है तो तुम भी आओ और देश को स्वतंत्र करने में भाग लो।"

मदन गौरवान्वित हो गया। उसने व्याकुलता से उसका हाथ पकड़कर कहा—"नहीं २ अरोरा, अब ऐसा न करना। मैं रमणी-हृदय और सौन्दर्य से पराजित होकर तुम्हारे द्वार पर आया हूँ। तुम मुझे न त्यागना। मैं पागल हो जाऊंगा।"

अरोरा उठ बैठी, वह उद्वेग से कहने लगी—"रमणी के हृदय और सौन्दर्य का अपमान न करो। यदि प्रेमी अपनी प्रेमिका के हृदय और सौन्दर्य से मातृभूमि, मातृभाषा और

जाति-प्रेम के उत्थान में भाग न लेवे तो वह हृदय और वह सौन्दर्य मृत है, नरक के द्वार हैं। यदि मेरा हृदय तुम्हें देशोत्थान में न लगा सके तो मैं समझूँगी कि ईश्वर ने मुझ अबला का बल हर लिया। यदि मेरा रूप तुम्हें अपने देश की नारियों का स्मरण करा दे तो मैं समझूँगी कि ईश्वर ने मेरे रूप की पवित्रता नष्ट कर दी। यदि मेरा प्रेम तुम्हें त्याग में और कष्ट-सहन में बल न दे सके तो मैं समझूँगी नाथ ने मेरा सर्वस्व नष्ट कर दिया। उस समय मैं शुष्क हृदय और लावण्य को लेकर क्या करूँगी। मेरा जीवन-प्रदीप बुझ जायगा।"

मदन—"अरोरा!"

अरोरा—"छिः, तुम अपने इस हृदय-दौर्बल्य को त्याग दो। ऐसा न हो कि तुम्हारे भारतवासी मित्र कहें कि एक अमेरिकन बाला ने एक देशभक्त की देश-भक्ति नष्ट कर दी। मुझ में ऐसा भारी स्वार्थ-त्याग करने की शक्ति नहीं है, किन्तु हमारी स्वाधीनप्रियता ने वह बल हमें दे दिया है। मैं अपने हृदय और जीवनसर्वस्व की मातृभूमि को स्वाधीन देखना चाहती हूँ। यदि तुम मुझ पर प्रेम करते हो तो मेरे कारण मेरी राष्ट्र की कीर्त्ति पर धब्बा न लगाना। प्यारे, तुम मेरी ओर एक टक क्या देख रहे हो?"

मदन—"एक अपूर्व ज्योति।"

अरोरा—"मदन!"

मदन—"आज मेरी आँखें खुलीं। आज मैंने अपनी मातृभूमि से सत्य प्रेम करना सीखा। आज से मैंने अपने प्यारे देश को स्वाधीन करने का व्रत धारण किया। आओ प्यारी, मैं तुम्हें गले से लगालूँ।"

—"आज मेरा जीवन धन्य हुआ। आज मेरा प्रेम ...। हम अमेरिकन युवतियों का स्वप्न है कि ... की पवित्र भूमि से संसार के पराधीन देशों में ... की झनकार उठे और स्वाधीन हो जायँ। नारियों के उद्धारक का ऋण इसी प्रकार अदा करना ...। स्वतंत्र देश की रमणियों का यह प्रेम है।"

...रा-ब्रिकडेल ने मदन को आलिंगन कर लिया। मदन ...ा मुख चूम लिया। जनेवा झील के तट पर यह एक ...म दृश्य होगया।

इति।

जाति-प्रेम के उत्थान में भाग न लेवे तो वह हृदय और वह सौन्दर्य मृत है, नरक के द्वार हैं। यदि मेरा हृदय तुम्हें देशोत्थान में न लगा सके तो मैं समझूंगी कि ईश्वर ने मुझ अबला का बल हर लिया। यदि मेरा रूप तुम्हें अपने देश की नारियों का स्मरण करा दे तो मैं समझूंगी कि ईश्वर ने मेरे रूप की पवित्रता नष्ट कर दी। यदि मेरा प्रेम तुम्हें त्याग में और कष्ट-सहन में बल न दे सके तो मैं समझूंगी नाथ ने मेरा सर्वस्व नष्ट कर दिया। उस समय मैं शुष्क हृदय और लावण्य को लेकर क्या करूंगी। मेरा जीवन-प्रदीप बुझ जायगा।"

मदन—"अरोरा!"

अरोरा—"छिः, तुम अपने इस हृदय-दौर्बल्य को त्याग दो। ऐसा न हो कि तुम्हारे भारतवासी मित्र कहें कि एक अमेरिकन बाला ने एक देशभक्त की देश-भक्ति नष्ट कर दी। मुझ में ऐसा भारी स्वार्थ-त्याग करने की शक्ति नहीं है, किन्तु हमारी स्वाधीनप्रियता ने वह बल हमें दे दिया है। मैं अपने हृदय और जीवनसर्वस्व की मातृभूमि को स्वाधीन देखना चाहती हूं। यदि तुम मुझ पर प्रेम करते हो तो मेरे कारण मेरी राष्ट्र की कीर्त्ति पर धब्बा न लगाना। प्यारे, तुम मेरी ओर एक टक क्या देख रहे हो?"

मदन—"एक अपूर्व ज्योति।"

अरोरा—"मदन!"

मदन—"आज मेरी आँखें खुलीं। आज मैंने अपनी मातृभूमि से सत्य प्रेम करना सीखा। आज से मैंने अपने प्यारे देश को स्वाधीन करने का व्रत धारण किया। आओ प्यारी, मैं तुम्हें गले से लगालूं।"

अरोरा—"आज मेरा जीवन धन्य हुआ। आज मेरा प्रेम सफल हुआ। हम अमेरिकन युवतियों का स्वप्न है कि पिता वाशिंगटन की पवित्र भूमि से संसार के पराधीन देशों में स्वतंत्रता की झनकार उठे और स्वाधीन हो जायँ। नारियाँ अपने देश के उद्धारक का ऋण इसी प्रकार अदा करना चाहती हैं। स्वतंत्र देश की रमणियों का यह प्रेम है।"

अरोरा-ग्रिफडेल ने मदन को आलिंगन कर लिया। मदन ने उसका मुख चूम लिया। जनेवा झील के तट पर यह एक पवित्रतम दृश्य होगया।

इति।

हनूमान ।

लेखक—

श्रीयुत गोवर्द्धनदास विष्णुदास 'मस्त'

(१)

गदाधर कोयला सा काला, खजूर सा लम्बा और देह से दुबला था । वह तवर्ग का उच्चारण नहीं कर सकता था । उसके बदले टवर्ग का उच्चारण करता था । वह अपनी माँ का दुलारा वेटा था, इसलिये अपने हाथ से तम्बाकू तक नहीं भरता था । वह जब तम्बाकू पीना चाहता तब उसकी माँ भर कर ला देती थी । आज सवेरे उठ कर उसने माँ से कहा—

"माँ ज़रा टम्बाकू टो भर के ला डो ।"

माँ ने हुक्का तैयार कर बेटे को दिया और बोली—"देखो आज घर में कुछ भी नहीं है, रसोई कैसे बनेगी । कहीं जाओगे भी या नहीं ?"

"उस डिन जो भाई ने डाल चावल ला डिया ठा और भी कई चीज़ें लाई टीं, सो क्या चुक गईं ?"

"वह थी ही कितनी ? आधा महीना तो कटा, अब कितने दिन चलेगा ।"

"नहीं है तो अब मैं क्या करूँ? चोरी करूँ या भीख माँगू।"

इतने में पड़ोस की श्यामा घर में घुसी और गदाधर की माँ से बोली—"दर्शन करने चलोगी।"

गदाधर बीच में बोल उठा—"घर में तो खाने को नहीं, जायगी दर्शन करने।"

माता को दूसरे आदमी के सामने गदाधर के ये वचन बुरे लगे। उसने गदाधर को आँखों से इशारा करते हुए मानों कहा, यह कह कर तुमने अच्छा नहीं किया और आगे ऐसी बातें मुख से न निकालना। किन्तु गदाधर डरने वाला थोड़ा ही था। यह क्यों चुप होने लगा। वह बोला—"आँखें क्या दिखलाती हो। क्या हम डर थोड़े ही जायँगे। क्या हमने झूठ कहा। अच्छा तुमही कहो कि तुमने नहीं कहा था कि घर में कुछ खाने को नहीं है।"

गदाधर की माँ बोली—"गदाधर, तुम्हारी बुद्धि क्या हुई है।"

गदाधर ने दुःख से गड़गड़ाहट निकालते हुए कहा—"माँ तुम तो कहती थीं कि हमें बुद्धी नहीं है। अभी कहती हो कि हमारी बुद्धी क्या हुई। इतने दिन तुम हमको निर्बुद्धि क्यों कहती थीं? अच्छा, अब इन बातों को छोड़ो। तुम मन्दिर में जा सकती हो, हम जाते हैं सारङ्गी को ठीक कराने। तुम जानो तुम्हारी रसोई।"

इतना कह गदाधर तो सारङ्गी लेकर निकल गया और उसकी माता भी श्यामा के साथ अपने पुत्र के गुण वर्णन करती हुई मन्दिर गई। गदाधर को सारङ्गी और गाने का बड़ा शौक था। कुछ २ गदाधर का हाथ अच्छा बजाने लगा था। उसके गाँव के धनी लाला जगतराम ने यह समझ

कर कि कुछ दिन मेरे साथ रहेगा तो गदाधर को अच्छा बजाना आजायगा और घर का कुछ काम काज भी करता रहेगा, १०) मासिक देकर एक बार गदाधर को नौकर रखना चाहा था, तब से गदाधर अपने को दूसरा तानसेन समझने लगा है। अपने सामने और बजाने वालों को तिनके के बराबर भी नहीं समझता था। उसने सारङ्गी के जो थोड़े से बोल सीखे थे उसमें अपनी ओर से टीका टिप्पणी करता था। बजाने के समय शिर हिलाने की बुरी आदत पड़ गई, और भी अनेक कारणों से उसका गाना बिगड़ गया। सभी लोग उसके बजाने से नफ़रत करने लगे। लाला जगतराम ने जो उसे अपने यहाँ रखना चाहा यही गदाधर के लिये हानिकारक हुआ। ऐसा होता है कि अपनी प्रशंसा सुन या योग्यता देख आदमी को अहंकार हो जाता है, किन्तु गंवार गदाधर को जितना अभिमान हुआ उसकी कोई सीमा नहीं। मारे अभिमान के फूल कर उसने लिखना पढ़ना छोड़ दिया। वह गंभीरता पूर्ण मुख बनाकर लोगों से कहता था—"लिखना पढ़ना क्या कठिन है, इच्छा करने से ही सब आदमी सीख सकता है, परन्तु गाने बजाने के लिए सरस्वती की विशेष कृपा चाहिये।" जब से उसके दिमाग़ में यह बात घुसी तब से उसने अपना जातीय व्यवसाय भी छोड़ दिया। पहले तो साँझ होने के बाद थोड़ा बहुत बजा कर अपना जी भर लेता था। जब से लाला जगतराम के यहाँ गया तब से दिन भर सारङ्गी बजाने के सिवाय गदाधर को दूसरा काम करते किसी ने नहीं देखा। उसका बड़ा भाई गांव भर की गायें चरा कर जो कुछ घर में लाता था उससे गृहस्थी चलती थी गदाधर की माता उसको कहीं नौकरी करने के लिये

बहुत कहती थी,। किन्तु वह अपनी सारंगी में ही मस्त रहता था। उसपर माता के कहने का प्रभाव नहीं पड़ता था।

गदाधर अपनी सारंगी ठीक करा कर घर लौट आया और बाहर बैठ कर बेसुरे स्वर अलापने लगा। उसके बड़े भाई ने भीतर से निकल कर गदाधर से पूछा-"तुमने फिर यह नई सारंगी कहाँ से ली।"

गदाधर बोला:-"शेख जुम्मन से मोल ली है।"

उसके भाई ने क्रोध की आरम्भिक अवस्था में पूछा-"पैसा कहाँ से लाया।"

गदाधर ने, बोलने से मौन होकर रहने में लाभ समझा। उसने मौन व्रत धारण किया।

"हमारी ही संदूक से चुराया होगा।" इतना कह कर गदाधर का भाई भीतर चला गया और देखा कि ठीक उसके संदूक मे ही पैसा उड़ाया गया था। वह क्रोध के पूर्ण आवेश में बाहर आके बोला—"नीच, पाजी, यहाँ तो घर में खाने को नहीं और लगा है नवाबी करने। जब संदूक में पैसा पाता है तब जाके नई सारंगी खरीद लाता है। कमाता तो कुछ नहीं, सारा दिन बस सारङ्गी की लिए मस्त होके पड़ा रहता है। निकल जा हमारे घर से, तेरा यह सदराग हमसे अब बरदाश्त नहीं होता।"

गदाधर बोला—"सन्दूक में रुपया सड़ रहा था हमने उसको काम में लगाया तो क्या अपराध किया है, जो ऐसी लाल पीली दिखाते हो। हमको क्या तुम्हारी परवाह पड़ी है। तुम हमारा गुन क्या समझोगे। तुमने मोटी और सोंप को बराबर समझ लिया है। हमें बस इतना ही दुख है कि कि तुम हमारे बड़प्पन को नहीं जान सके। अच्छा हम जाते

हैं कुछ ही डिनों में डेखोगे हम किटना रुपया लेकर घ
लौटटे हैं। टभी हमारे डिवार पर हजार शिर पटक क
रह जाओगे टोभी हम एक मुट्ठी चावल नहीं डेंगे।"

सचमुच गदाधर को यह दृढ़ विश्वास था कि जहाँ ह
अपना गुण दिखाएँगे रुपयों के ढेर लग जायँगे। इसप्रका
भाई से लड़ झगड़ कर उसको एक मुट्ठी भर चावल न दे
की धमकी देके, अपनी सारङ्गी उठा, गदाधर अनिच्छापूर्व
घर से निकल पड़ा। उस समय उसकी माता घर में नहीं थ
नहीं तो गदाधर को अपना आलस्यमय जीवन छोड़ने
लाचार नहीं होना पडता।

(२)

"आपका नाम क्या है।"

"हमारा नाम हैं गडाढरच्रन्ड राय, घर हमारा स्वर्ण
में है। हमारे पिता का नाम ठा श्रीमान् गोकुलचन्ड। ह
बाबू रमेशच्रन्ड की प्रजा हैं।"

काशी जाने वाली सड़क पर दो पथिक वार्ताल
कर रहे हैं। दोनों में एक तो हमारा पूर्वपरिचित घर
निकाला गया गदाधर है, दूसरा कोई अपरिचित पथि
देखने में आता था। गदाधर की बातें सुन दूसरा पथि
समझ गया कि उसके साथी को बहुत बोलने का रोग है
उसने गदाधर को अपना साथी बनाने की इच्छा रखते
कहाः—"बाबू रमेशचन्द जी कौन हैं"।

गदाधर ने आखें फाड़ कर आश्चर्य के साथ कहाः
"बाबू रमेशचन्ड कौन हैं? यह टुम नहीं जानटे"? गदा
का विश्वास था कि दुनिया में कौन ऐसा होगा जो रमेश
को न जानता होगा।

साहित्य में सुगन्ध ! हिन्दी भाषा का शृङ्गा

"मोहिनी"

सम्पादक—श्रीयुत पं० मोहन शर्मा ।

विविध विषय विभूषित उच्च कोटि की सचित्र मासि पत्रिका । इसमें प्रतिमास साहित्य, धर्म, राजनीति, समा अर्थशास्त्र, तत्वज्ञान, विज्ञान, भूगोल, कृषि, उद्योग, इतिहा प्रभृति—समस्त सर्वोपयोगी विषयों का विवेचन किय जाता है । यदि आप हिन्दी संसार के लब्ध प्रतिष्ठ प्राची और अर्वाचीन-सुलेखकों के शिक्षा पूर्ण लेखों और भाव पूर्ण राष्ट्रीय कविताओं का रसास्वादन करना चाहते हैं आप राष्ट्रीय भाषा हिन्दी की साहित्य श्रीवृद्धि के स इच्छुक हैं किम्बहुना आप अनेकानेक पत्र पत्रिकाओं पढ़ने का मजा एकही पत्रिका से उठाना चाहते हैं तो कृप अपने ढंग का बिलकुल नई-नवेली—नवजात "मोहिनी" ग्राहक बनिये । इसका वार्षिक मूल्य ४॥) रु० और एक का ।) आना है । नमूना मुफ्त भेजने का नियम नहीं, उस प्राप्ति के लिये ॥) आना के टिकट आना चाहिये ।

पता:—व्यवस्थापक मोहिनी कार्यालय,

अभाना (दमोह, सी० पी०

" अग्रवाल-बन्धु "

अग्रवाल जाति का एक मात्र सचित्र व्यापारिक मासिक पत्र ।

सुन्दर लेखों से अलंकृत । वार्षिक मूल्य डाक-व्यय स २) रु० । नमूने का अङ्क ≈)॥ का टिकिट भेजकर मंगा ली

पता—मैनेजर "अग्रवाल-बन्धु" बेलनगंज, (आगरा

"प्रणवीर"—पुस्तकमाला की दो उपयुक्त पुस्तकें।

(२) देशभक्ति मेजिनी।

लेखक—राधामोहन गोकुल जी।

इटली के उद्धार कर्ता महात्मा मेजिनी को कौन नहीं जानता ? 'प्रत्येक राष्ट्र की स्वाधीनता' मेजिनी का मूलमन्त्र है और उसके लेखों में स्वाधीनता का सन्देश कूट कूट कर भरा है। ऐसे महापुरुष के चरित्र को कौन पढ़ना न चाहेगा ? पुस्तक के लेखक श्री० राधामोहन गोकुल जी भी इस विषय के सर्वथा उपयुक्त हैं। यद्यपि हिन्दी में मेजिनी के सम्बन्ध में और भी दो एक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं पर पाठक इसमें कुछ विशेषता अवश्य पाएँगे, क्योंकि यह एक देश की दशा से व्यथित हृदय से निकले हुए उद्गार हैं। पुस्तक का मूल्य केवल १॥) है डाक। व्यय अलग।

(२) जेसिफ गैरिबाल्डी।

लेखकः—राधामोहन गोकुल जी।

गैरीबाल्डी मेजिनी का सहयोगी तथा शिष्य था। इटली के उद्धार में इन्हीं दो व्यक्तियों का खास भाग है। मेजिनी उपदेश देता था और गैरीबाल्डी उसे कार्य-रूप में परिणत करता था। गैरीबाल्डी का समस्त जीवन इटली के उद्धार के लिये युद्ध करने में व्यतीत हुआ। प्रत्येक नवयुवक को यह पुस्तक पढ़नी चाहिये और इससे सीखना चाहिये कि अपने देश के प्रति उसका क्या कर्तव्य है। इसके लेखक भी श्री० राधामोहन जी हैं और मूल्य है १।≈) एक रु० छ० आना। डाक व्यय अलग।

पुस्तकें मिलने का पताः

कटारिया सामयिक साहित्य प्रचारक एजेन्सी

'प्रणवीर' कार्यालय, नागपुर, सी० पी०

पथिक—"भाई हम तो नहीं जानते कि रमेशचन्द कौन हैं"।

गदाधर—"बाबू रमेशचन्द के हाठ में स्वर्णपुर की सारी जागीर है। हम उनकी प्रजा हैं। आपका नाम क्या है ?"

पथिक—"राजकिशोर, मैं श्री काशी जी तीर्थ करने जा रहा हूं। आप कहाँ जा रहे हैं ?"

गदाधर—"और कहाँ जायँगे, कुछ पैसा कमाने के मतलब से जा रहे हैं। हम भाई तुमको अपने दुख की बात क्या कहें। हम, दो भाई और एक महतारी हैं। वह भाई कमाता कुछ नहीं। घर में हम ही एक कमाने वाले हैं। गांव में काम तो करना पड़ता है बहुत और पैसे मिलते हैं थोर, इसलिए देश कमाने चले हैं।"

गदाधर की बात सुन राजकिशोर को जो हँसी आई उसको मन में दबा के वह बोला—"परदेश में जाके तुम क्या करोगे ?"

गदाधर ने झट से सारङ्गी निकाल कर राजकिशोर को दिखाते हुए कहा—"हम क्या योहीं परदेश निकले हैं। गुण है तब तो रुपया कमाने के लिए घर से निकले हैं। गुणी रईसों के मिलने ही से रुपयों की वर्षा होने लगेगी। हम गुणी हैं गुणी।"

राज०—"भाई हमको भी तो कुछ अपना गुण दिखाओ।"

गदाधर झट सारङ्गी निकाल कर उसकी खूंटिया को दो चार बार निष्प्रयोजन ऐंठ-उमेठ कर बजाने लगा। गदाधर खूब जोर से शिर हिलाने लगा। उसकी आँखें नाचने लगीं, उसका अंग प्रत्यंग नृत्य करने लगा। राजकिशोर को तो ऐसा जान पड़ा जैसे गदाधर को भूतों आ गई हो। गदाधर गाता था—"भज मन राम चरन सुखदाई" इत्यादि। गदाधर का हाथ

भाव और मुंह बनाना देख कर राजकिशोर दङ्ग हो गया। वह किसी प्रकार भी अपनी हसी को बंद कर न सका। गदाधर राजकिशोर को हँसता देख गाना बजाना बन्द कर के बोला—"उस्टाड जी ने पहलेही कहा ठा कि मूरख के आगे कभी न गाना, न बजाना। टुम मूरख लाग गाने बजाने का क्या मर्म जानोगे। इस समय यदि उस्टाड जी या भुवन भैया होटे टो खूब प्रशंसा करटे। लाला जगटराम ने हमको बुलाया ठा और २५) रु० देना चाहा तो भी हम उनके यहाँ नहीं गये। टुम मूरख लोग हमें क्यों पहचानोगे। बड़े २ गुनी और रईस हमारी खुशामड करटे हैं खुशामड।"

राजकिशोर—"हम तुम्हारा गाना सुनकर नहीं हँसे। तुम को वेतरह शिर हिलाते देख हंसी आ गई।"

गदाधर—"यडि टुम गाना बजाना जानटे टो ऐसी निरर्ठक बाट कभी नहीं बोलटे। टाल डेने के समय बिना टाल डिये कोई रह सकटा है? टुमको हमारी बाट का विश्वास न हो टो बड़े २ गवैयों से पूछ लो"।

राजकिशोर—"अच्छा, हम किसी गवैये से पूछ लेंगे, प... तुम कमाने के लिए निकले हो, काशी जी चलोगे? कोई ... रईस मिल जायगा। हम भी काशी जी तीर्थ यात्रा का निकले हैं। यदि हम दोनों मिलकर चलेंगे तो अच्छा होगा।"

गदाधर—"अच्छा हमको यह कबूल है। पर एक टुमको माननी पड़ेगी कि मैं जो गा बजा कर कमा लूंगा उस में से तुमको कुछ न दूंगा"।

राजकिशोर—"अच्छा हम तुमसे हिस्सा न लेंगे।"

दोनों मित्र ऐसी बातें कर काशी जी की ओर अग्रसर हुए। रेल में सफर करने में जैसे पैसे की आवश्यकता ...

है,वैसे ही पैदल सफर करने वाले यात्री को एक साथी की आवश्यकता होती है। ये दोनों एक दूसरे से मिल के आनन्दित हुए। कई दिनों की यात्रा बाद गदाधर और राजकिशोर काशी जी पहुंचे। यहां बहुत लोगों को इधर उधर आते जाते देख गदाधर को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने राजकिशोर से पूछा—"ये सब लोग कहां आ जा रहे हैं? मालूम होता है कहीं तमाशा हो रहा है!"

राजकिशोर ने हंसते हुए कहा—"अब हम काशीजी में आ गये हैं इस लिए बहुत लोग देखने में आते हैं।"

गदाधर ने देखा इधर उधर कई घोड़े-गाड़ियां दौड़ रही हैं। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अपने गांव से हीं उसको मर्खानता मालूम होने लगी। वह बोला-"राजकशोर, देखो तो यहाँ कितनी घोड़े-गाड़ियां हैं। यहां इतनी ोड़े-गाड़ियां क्यों हैं!"

गदाधर की दृष्टि रास्ते की ओर नहीं थी। वह इधर उ: देखता जा रहा था। उस समय एक गाड़ी उसके बिलक पास पहुंच गई। गदाधर दूसरी तरफ़ देख रहा था। ाचवान "हटो हटो" कहकर गदाधर की पीठ पर एक चाक जमा दिया। गदाधर "अरे बापरे" करता हुआ दूसरी ार बहुत दूर भाग गया।

राजकिशोर ने गदाधर से कहा—"तुम्हारा भाग्य अच्छा नहीं तो अभी तुम स्वर्ग में जा बैठे होते।"

गदाधर-"क्या काशीजी की सड़क घोड़ेगाड़ियों के लिए ी बनी है? अच्छा अब हम आपका हाथ पकड़कर चलते हैं।"

इतना कह उसने राजकिशोर का हाथ पकड़ लिया। राजकिशोर ने अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा-"हमारे हाथ पकड़

कर चलने से तुम आप तो डूब मरोहीगे और हमें भी अपने स[ाथ]
लिए जाओगे। तुम हमारे पीछे २ सावधान हो कर आओ।
इस समय ये दोनों दशाश्वमेध घाट पर आ पहुंचे। नह[ा]
कर दोनों मन्दिर में दर्शन के लिये गये। दर्शन, पूजन अ[ौर]
प्रणाम कर जब दोनों मन्दिर से बाहर निकले तो कहीं
एक भिक्षुक ने आके इनको यात्री जान पैसा मांगा। रा[ज]
किशोर ने इसको पैसा निकाल कर दे दिया। राजकिशो[र को]
दान करते देख इधर उधर से बच्चों और पुरुषों ने सि[न्दूर]
और चावलों की डिब्बी हाथ में लिए आ दोनों को घेर[ा।]
उनको अब किसी तरफ जाने का रास्ता न रहा। गदाधर [को]
तो अपना सिर बचाना मुश्किल हो गया। जो जिधर से आ[ता]
था उसके माथे पर सिन्दूर रगड़ता था। सब क्या [उसके]
मस्तक पर ही लगाते थे? नहीं, जिसका हाथ जहाँ पड़ा उ[स]
ने वहीं सिन्दूर पोत दिया। किसी ने गाल पर, किसी ने ना[क]
पर, किसी ने कान पर और किसी ने दाढ़ी में लगा
दक्षिणा माँगी। एक भलेमानुष ने तो उसकी आँख में ह[ी]
अंगुली घुसेड़ दी। पहले तो गदाधर ने इनकी बहुत मिन्न[त]
की कि—"हमारे पास एक कौड़ी भी नहीं। तुम हमें [क्यों]
सताते हो?" किन्तु उन्होंने न माना तब तो गदाधर ने "ह[म]
जाते हैं देखें कौन साला आता है।" इतना कह अपने सा[थी]
को छोड़ आप अपने को बचाने के लिये भाग खड़ा हुआ[।]
काशीजी के भीड़ वाले रास्तों पर दौड़कर चलना स[हज]
काम नहीं है। लोगों ने समझा कोई चोर भागा जा रहा है[।]
बस फिर क्या था। गदाधर के पीछे कितने ही लोग [दौड़]
पड़े। गदाधर भी जी जान से भागा जा रहा था [और]
उसके पीछे लोगों की संख्या बढ़ती जाती थी। आ[गे]

...उसने एक ठोकर खाई और 'पपात धरणी तले !!!' गिरने के ...समय लोग उसे चारो तरफ़ से घेर कर खड़े होगये। उनमें से ...किसी को भी पता नहीं था कि लोग उसके पीछे क्यों दौड़ आए ...। दूसरों को दौड़ते देखकर ही दूसरे लोग भी दौड़ पड़े थे। ...मरने के समय जैसा लोग माया मोह तज देते हैं वैसे ही गदाधर ...ने अपने देह की ममता त्याग कर कहा—"आओ, हम मरने के ...लिये टैयार हैं। जितना सिन्दूर लगाना हो लगा डो। एक ...आँख जा चुकी है दूसरी भी ले लो।" गदाधर की बातें सुन ...लोगों ने समझा यह पागल है। थोड़ी देर के पीछे सब लोग ...हँसते हुए चलते बने। लोगों के चले जाने बाद गदाधर भी ...उठा और राजकिशोर को ढूंढने लगा। सारा दिन इधर उधर ...बहुत ढूँढा पता नहीं लगा। सायंकाल को आखिर हताश ...होकर एक मकान के बाहर बैठ गया।

(३)

बाबू पुरुषोत्तम दास जैसे ही आफिस से लौटे तो मकान ...बाहर हमारे पूर्व परिचित गदाधर को सोया हुआ देखा। ...उसको बैठे ही बैठे नींद आ गई थी। आप सहृदय तो थे ...ही। गदाधर को भीतर ले आए और पूछा—"तुम कौन हो?" ...गदाधर—"हम गडाढर चन्ड हैं। हमारा साठी खो ...गया।" गदाधर ने सब वृत्तान्त पुरुषोत्तमदास को कह सुनाया। ...पुरुषोत्तमदास को दया आ गई। उन्होंने गदाधर को कहा— ..."जब तक तुमको कोई काम न मिल जावे तब तक यहीं रहो, ...और खाओ पीओ"। गदाधर आनन्द से रहने लगा।

एक दिन पुरुषोत्तमदास के साथ गदाधर रामलीला देखने ...। वहाँ लोगों की बहुत बड़ी भीड़ थी। गदाधर जिसको

देखता था उसीकी ओर अंगुली उठाकर उसका परिचय पूछता था। वह शायद पुरुषोत्तमदास को सर्वज्ञ समझ था। प्रश्नों का उत्तर देते २ पुरुषोत्तमदास का जी ऊब गया। कुछ देर बाद वह क्रुद्ध हो उठे। गदाधर को अपने प्रश्न बन्द करने पड़े। थोड़ी देर के बाद पुरुषोत्तम बोले-"अब उठो घर चलें। हमको काम है।"

गदाधर—"हम रामलीला में जहां एक डफा आए फिर समझपट हुए, बिना नहीं जाटे"।

पुरुषोत्तमदास ने चलते २ गदाधर से पूछा-"तो रास्ता तो न भूलोगे?"

गदाधर—"यदि भूल जायँगें टो किसी से पूछ लेंगे।"

पुरुषोत्तम—"क्या पूछोगे?"

गदाधर—"पूछेंगे बाबू का मकान कहाँ है।"

पुरुषोत्तम—"सिर्फ बाबू कहने से कोई कैसे समझेगा"।

गदाधर—"हम कहेगें जो बाबू आफ़िस में काम करटे हैं।"

पुरुषोत्तमदास ने हँसते हुए उसको अपनी मकान वाली गली का नाम बता दिया और कहा कि तुम वहां आके घर पहचान लोगे। गदाधर के सिर पर भारी आफत आगई। वह गली का नाम रटने लगा। जब गली का नाम अच्छी कण्ठस्थ हो गया, तब वह रामलीला-मण्डली का नाम जानने को उत्सुक हुआ। समीपवर्ती आदमी से दो तीन बार पूछा। वह कुछ न बोला। मानो वह सुनता ही न था। गदाधर ने उसके बदन में चुटकी काटी। चुटकी की मात्रा प्रमाण से कहीं बढ़ कर थी। चुटकी की चोट खाकर आदमी ने पीछे फिर कर कहा ओफ़, कौन है।"

गदाधर झट झुक कर अपना मुंह उसके कान के पास जाकर चिल्लाकर कहा-"इस रामलीला-मंडली का नाम क्या है?

आदमी बोला—"बिना चुटकी काटे क्या यह बात पूछी हीं जा सकती थी ? इस तरह बदन बकोटने की क्या आवश्यकता थी ?"

गदाधर—"भाई इतना नाराज़ क्यों होते हो ? यदि तुम्हें ष्ट हुआ हो तो हमारे बदन में खूब ज़ोर से चुटकी काट कर बदला चुका लो ।"

उस समय गदाधर ने रामलीला के मञ्च पर लाला जगतराम को देखा, जो किसी आदमी से बातें कर रहा था । गदाधर को बहुत खुशी हुई । उसने सोचा जगतराम शायद मण्डली का अधिकारी है । किसी तरह उनकी दृष्टि हम पर पड़नी चाहिए । वे हमें देखते ही पहचान लेंगे और पुकारेंगे तो हम सब के आगे जाके बैठेंगे । इस साले की देह पर ज़रा हाथ रख कर पूछा तो यह अफलातून का नाती बन कर खफा हो उठा । जब हम आगे जाकर बैठेंगे तो यह साला भी समझेगा कि हम ऐसे वैसे नहीं हैं, कितनी बड़ी हमारी इज़्ज़त है । यह सोच कर गदाधर कभी दाहिनी ओर, कभी बायीं ओर, झुक कर और गर्दन को ऊंची करता रहा । बड़ी देरी तक योंही कसरत करता रहा । पर जगतराम से देखा देखी नहीं हुई । उसी समय रामलीला बन्द हुई और यह जाके जगतराम से मिला ।

लाला जगतराम रामलीला मण्डली के अधिकारी का मित्र था । गदाधर को काशी जी में देख उसको बहुत आश्चर्य हुआ । गदाधर ने उसको सब वृत्तान्त सुना दिया और कहा हमको रामलीला मण्डली में नौकरी दिला दो । जगतराम ने अपने मित्र को कहकर ८) रु० मासिक पर नौकरी दिलादी ।

बहुत दिन बीत गए।

गदाधर अपनी मण्डली में तम्बाकू भरना और कभी २ गाता भी था। किन्तु इतने दिन तक उसको पात्र बनने का प्रसंग न आया था। आज मण्डली में हनूमान बनने वाला पात्र बीमार हो गया था, अधिकारी ने गदाधर को हनूमान बनने को कहा। गदाधर इसको अपना अपमान समझ क्रुद्ध हो उठा। उसने कहा—"हमसे यह न होगा। हम गुनी हैं। हम गाने बजाने के सिवाय और कोई काम न करेंगे। हमारे साथ ऐसा कौल करार नहीं हुआ था कि हम बन्दर भी बनाये जायंगे।"

अधिकारी—"हनूमान बनने में क्या है, हनूमान बनने से हनूमान तो न बन जाओगे।"

गदाधर—"हम मुंह में लाल लाल पोट कर इतने लोगों के बीच बन्दर की तरह कूद फांद करेंगे, यह हमसे न होगा। खुशी हो आप रक्खें चाहे जवाब दें।"

अधिकारी बड़े संकट में पड़ा। लाचार हो उसने गदाधर को कहा—"जो तुम आज हनूमान बनो तो तुमको १०) रु० दिया जायगा।" गदाधर ने कबूल किया।

उधर रंगमंच पर रामचन्द्रजी उच्च स्वर से "हनूमान हनूमान" पुकार रहे थे। रामजी का शरीर ऐसा कमजोर था कि हनूमान को बुलाने में उनका शरीर काँप उठता था। लक्ष्मण बेचारे शक्ति वाण के लगने से मूर्च्छित होकर पड़े और नींद ले रहे हैं। राम यह समझ मनही मन पछताते हैं कि "हमीं को शक्ति वाण क्यों न लगा। शक्ति वाण लगा होता तो पांव पसार कर क्या मजे में सो गया होता। अब भी युद्ध जल्दी छिड़ जाय तो हम किसी के वाण की चोट से मूर्च्छित हो आनंद की नींद लें। किन्तु हनूमान जी आवें तब तो युद्ध प्रारम्भ हो।" इतने में हनूमान जी आगये।

राम ने कहा—"हनूमानजी तुमने इतनी देर क्यों लगाई ।"

"प्रभो दास का अपराध क्षमा कीजिये । सेवक संजीवनी
ले गया था" गदाधर यह उत्तर देना चाहता था कि उसकी
दृष्टि एक आदमी पर पड़ गई, जो उसके गाँव का था। वह
गदाधर को हनूमान के वेष में देख मुस्कराया। गदाधर ने
मन में कहा कि इस आदमी को पता लग गया है कि मैं हनूमान
बना हूँ तो यह सारे गांव भर में हमको हनूमान कह कर
बदनाम करता रहेगा। गदाधर इन बातों को मनही मन
सोच कर राम के वचन का कुछ उत्तर न देकर समास्थित
लोगों से हाथ जोड़कर कहा—" आप लोग यह न समझें कि
हम अपनी इच्छा से हनूमान बने हैं। इन लोगों ने जबर-
दस्ती हनूमान बनाया है।"

हनूमान की बात सुन जितने समास्थित दर्शकगण थे
सब हँस पड़े। गदाधर फिर उच्च स्वर से बोलने लगा—
"क्या आप लोगों को हमारी बात का विश्वास नहीं। क्या
आप लोग हमको सचमुच हनूमान समझने लगे। हम शपथ
लेके कहते हैं कि हम हनूमान नहीं। हमारा नाम गदाधर
चन्द है। घर हमारा स्वर्णपुर में है"।

दर्शकमण्डली में चतुर्दिक हँसी की धूम सी मच गई।
गदाधर लज्जित हो एक ओर बैठ गया।

राम ने फिर पुकारा—"हनूमान जी।"

गदाधर—"कौन तुम्हारा हनूमान है? हमको हनूमान
हनूमान कहकर पुकारोगे तो हम दो चार घूँसे जड़ देंगे।"

यह वीरता दिखलाकर गदाधर चुप हो रहा। अन्त में
अधिकारी हनूमान बनकर आया और काम निकल गया।
गदाधर सोचने लगा कि हम यहां रहेंगे तो हमारे ऐसे गुणी

का अपमान होता रहेगा, घरसे निकले बहुत दिन हो गए। अब घर चलना चाहिये। गदाधर को अपनी स्नेहमयी माता का स्मरण हो आया। उसने अधिकारी को जाके कहा—"हमारी जो कुछ तनखाह हिसाब से हो वह दे डो। हम जाते हैं।" अधिकारी तो यह चाहता ही था, उसने चट पट हिसाब साफ कर दिया।

गदाधर गांव की ओर लौट पड़ा।

(४)

स्वर्णपुर के निकट एक छोटा सा बाज़ार था, वहाँ जाकर गदाधर ने एक धोती और एक कुर्ता मोल लिया। बाज़ार से निकल उसने नये कपड़े पहन लिये और बड़े शान से चलने लगा। आज बहुत दिनों के बाद उसका मनोरथ पूर्ण हुआ। वह दो चार कदम आगे जाता था फिर गर्व की दृष्टि से अपने कपड़ों को देखता था। इस तरह जाते २ सायंकाल को वह अपने घर पहुँच गया।

गदाधर को अचानक देखकर उसकी माँ और भाई दौड़ कर उसे घेर कर खड़े हो गये। माँ की आँखों से आनन्दाश्रु बह निकले। गदाधर भी आंसू न रोक सका। तीनों के आंसुओं ने एक नया प्रेम उत्पन्न किया।

गदाधर घर आके नवाबी करने लगा। दस बजे के भीतर भोजन करके पान चबाना और माँ भाई पर हुकूमत चलाना, उसने जीवन का प्रधान सुख समझा। माँ और भाई इस डर से न बोलते थे कि फिर कहीं चला न जाय।

(५)

एक दिन गदाधर किसी पड़ोसी के घर गपशप कर र

था। पड़ोसी बड़े चावसे सुन रहे थे। इतने में वहाँ वह आदमी आ गया जिसको देखकर गदाधर रामलीला-मण्डली में भड़क उठा था। उस आदमी ने गदाधर का गर्व तोड़ने के इरादे से कहा—"कहो गदाधर, तुम काशी जी में क्या बनते थे।"

यह प्रश्न सुन गदाधर का चेहरा उतर सा गया। एक ने फिर यह बात पूछी। गदाधर झिड़क कर बोला—"टुम लोगों को यह पूछने का क्या अढ़िकार है। डेहाट के आदमी जँगली जानवर से भी बड़े हुए होटे हैं।"

गदाधर को बिगड़ कर बातें करते देख वह आदमी बोल उठा—"गदाधर वहाँ हनूमान बनता था।"

गदाधर का क्रोध भड़क उठा, उसने गरज कर कहा—"टुम साला झूठ बोलटा है।" यह कह गदाधर वहाँ से उठ खड़ा हुआ। उसको क्रुद्ध होकर जाते देख चार पांच आदमी "हनूमान, हनूमान" कह उसको चिढ़ाने लगे। गदाधर चिढ़कर एक आदमी को मारने दौड़ा। वह जिसको मारने दौड़ा उसको पकड़ न सका। तब और भी अधिक क्रुद्ध हो वह अपने घर की ओर चला। इतने में दस बारह आदमी एकत्र होकर "हनूमान, ए हनूमान, तुम्हारी पूँछ कहाँ गई" कहते २ उसके पीछे २ जाते थे। क्रम से चिढ़ाने वालों की संख्या बढ़ने लगी।

गदाधर, क्रोध से भरा गाली बकता सीधा अपने घर आया। लड़के भी उसके पीछे पीछे आए और दूरसे ही हनूमान जी का नाम ले लेकर उसकी कानों में अमृत की वर्षा करने लगे। गदाधर क्रोध से पागल सा व्योहार करने लगा—किसी को मारने दौड़ता किसी को गाली देता था। उसकी यह दशा देख उसकी माँ बोली—"लोग हनूमान कह-

ते हैं तो कहने दो। दो चार चार कह आपही चुप हो रहेंगे, तुम हनूमान के नाम से इतना क्यों चिढ़ते हो ?"

गदाधर बोला—"वे लोग तो पीछे कहेंगे। पहले तो तुम ही कहने लगी। अब हम यहाँ भी न रहेंगे।"

यह कह कर गदाधर अपनी सारंगी ले घर से निकल पड़ा। उसकी माँ उसको लौटाने के लिये बहुत दूर तक उस के पीछे गई। उसे बहुत कहा सुना, पर उसने एक न मानी।

गदाधर को जाता देख फिर लड़के उसके पीछे चले। और इसी तरह चिढ़ाते २ दूसरे गांव के लड़कों को सौंप आए। फिर दूसरे गांव के लड़के भी उसे उसी तरह चिढ़ाने लगे। जिस गाँव में गदाधर जाता था वहीं के लड़के उसे चिढ़ाने के लिये जुट जाते थे।

गदाधर के बड़े भाई ने उसकी बहुत खोज की परन्तु कहीं पता नहीं चला। इस प्रकार बजरंग महाबली हनूमान के नाम से चिढ़ने वाला गदाधर अब संसार के कौन से कोने में है इसका किसी को पता नहीं।

इति।

इस अङ्क में गल्पों की सूची।

१—दुखिया—[ले०, श्रीयुत बाबू जयशङ्कर 'प्रसाद'
२—प्रेम-बन्धन—[ले०, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा
३—ईवनिंग पार्टी—[ले०, श्रीयुत दिनेश्वर प्रसाद सिंह
४—चटनी—[ले०, श्रीयुत त्रिपुरारीशरण श्रीवास्तव

गल्पमाला के उद्देश्य और नियम।

१—इसका प्रत्येक अङ्क प्रति अंगरेज़ी मास की १ ली तारीख़ को छप जाया करता है। जो सब मिला कर सालभर में ५०० से अधिक पृष्ठों का विविध गल्पों से पूर्ण एक बड़ा सुन्दर ग्रन्थ हो जाता है।

२—रानी, तथा राजा और महाराजाओं से उनकी मान, रक्षा के लिये इसका वार्षिक मूल्य २५) रु० नियत है।

३—इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से २॥) है और वी० पी० से २॥।) है (भारत के बाहर ४) है। प्रति अङ्क का मूल्य ।-) आना। नमूना मुफ़्त नहीं भेजा जाता है।

४—'गल्पमाला' में उसके गल्पों ही द्वारा संसार की सब बातों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

अक्तूबर में छपने वाले गल्प।

१—तीज की साड़ी—[ले०, श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव।
२—प्रेम पुस्तक—[ले०, श्रीयुत पारसनाथ त्रिपाठी।
३—गप्प-शप्प—[ले०, श्रीयुत 'अहिवासी'।
४—विनोद—[ले०, श्रीयुत 'विनोदी'।

दुखिया।

लेखक—

श्रीयुत जयशङ्कर 'प्रसाद'।

(१)

पहाड़ी देहात, जंगल के किनारे के गांव और बरसात का समय! वह भी उषाकाल! बड़ा ही मनोरम दृश्य था। रात की वर्षा से आम के वृक्ष तराबोर थे। अभी पत्तों पर से पानी ढुलक रहा था।

प्रभात के स्पष्ट होने पर भी धुंधले प्रकाश में सड़क के किनारे आम्र-वृक्ष के नीचे एक बालिका खड़ी कुछ देख रही थी। 'टप' से शब्द हुआ, बालिका उछल पड़ी, गिरा हुआ आम उठाकर अञ्चल में (जो पाकेट की तरह खोंस कर बना हुआ था) रख लिया।

दक्षिण पवन ने अनजान में फल से लदी हुई डालियों से अठखेलियाँ कीं। उसका सञ्चित धन अस्तव्यस्त होगया। दो चार गिर पड़े। बालिका उषा की किरणों के समान ही खिल पड़ी। उसका अञ्चल भर उठा। फिर भी आशा में खड़ी रही। व्यर्थ प्रयास जान कर लौटी, और अपनी झोपड़ी की ओर चल पड़ी।

फूस की झोपड़ी में बैठा हुआ उसका अन्धा बूढ़ा ब
अपनी फूटी हुई चिलम सुलगा रहा था। दुखिया ने अ
ही आँचल के सात आमों में से पाँच आम निकाल कर बाप
हाथ में रख दिये। और स्वयं बरतन माँजने के लिये 'डब
की ओर चल पड़ी।

बरतनों का विवरण सुनिये, एक फूटी बटुली, एक लोह
और लोटा, यही उस दीन परिवार का उपकरण था। डबरे
किनारे छोटी सी शिला पर अपने फटे हुए वस्त्र सम्भाले
बैठ कर दुखिया ने बरतन मलना आरम्भ किया।

(२)

अपने पीसे हुए बजरे के आटे की रोटी पकाकर दुखि
ने बूढ़े बाप को खिलाया। और स्वयं बचा हुआ खा पी
पास ही के महुए की वृक्ष की फैली जड़ों पर सिर रख
लेट रही। कुछ गुनगुनाने लगी। दुपहरी ढल गई।
दुखिया उठी और खुरपी जाला लेकर घास करने चल
ज़मींदार के घोड़े के लिये घास वह रोज़ दे आती थी। क
परिश्रम से उसने अपने काम भर घास कर लिया, फिर
डबरे में रख कर धोने लगी।

सूर्य्य की सुनहली किरणें बरसाती आकाश पर नव
चित्रकार की तरह कई प्रकार के रंग लगाना सीखने लग
अमराई और ताड़ के वृक्षों की छाया उस शाद्वल जल में
कर प्राकृतिक चित्र का सृजन करने लगी। दुखिया को
लम्ब हुआ, किन्तु अभी उसका घास धो नहीं गया, उसे
परवाह न थी। इसी घोड़े की टापों के शब्द
को भंग किया।

ज़मींदार-कुमार सन्ध्या को 'हवा खाने' के लिये निकले थे। वेगवान 'बालोतरा' जाति का 'कुम्मेद' 'पचकल्याण' आज 'गरम' हो गया था। मोहनसिंह से 'बेकाबू' होकर वह सरपट भाग रहा था। संयोग! जहाँ पर दुखिया बैठी थी उसी के समीप ठोकर लेकर घोड़ा गिरा। मोहनसिंह भी बुरी तरह घायल होकर गिरे। दुखिया ने मोहनसिंह की सहायता की। झरने से अञ्जली में जल लाकर घावों को धोने लगी। मोहन के पट्टी बांधी; घोड़ा भी उठकर शान्त खड़ा हुआ। दुखिया उसे टहलाने लगी थी। मोहन ने कृतज्ञता की दृष्टि से दुखिया को देखा, वह एक सुशिक्षित युवक था। उसने दरिद्र दुखिया को उसकी सहायता के बदले दो रुपया देना चाहा। दुखिया ने हाथ जोड़ कर कहा,—"बाबू जी, हम तो आपही के गुलाम हैं। इसी घोड़े को घास देने से हमारी रोटी चलती है।"

अब मोहन ने दुखिया को पहचाना। उसने पूछा—"क्या तुम रामगुलाम की लड़की हो।"

"हाँ बाबू जी।"

"वह बहुत दिनों से दिखाता नहीं?"

"बाबूजी, उनको आँखों से दिखाई नहीं पड़ता।"

"अहा! हमारे लड़कपन में वह हमारे घोड़े को जब हम इस पर बैठते थे पकड़ कर टहलाता था। वह कहाँ है?"

"अपनी मड़ई में।"

"चलो, हम वहाँ तक चलेंगे।"

किशोरी दुखिया को न जाने क्यों संकोच हुआ। उसने कहा—"बाबूजी, घास पहुँचने में देर हुई है। सरदार बिगड़ेंगे"

"कुछ चिन्ता नहीं, तुम चलो।"

लाचार होकर दुखिया घास का बोझा सिरपर

ते। एक दुष्ट नजीब इन सबों का निरीक्षक था। दुखिया
को देर से आते देखकर उसे अवसर मिला। बड़ी नीचता से
उसने कहा—"मारे जवानी के तेरा मिजाज ही नहीं मिलता।
कल से तेरी नौकरी बन्द कर दी जायगी। इतनी देर!"

दुखिया कुछ नहीं बोलती, किन्तु उसको अपने बूढ़े बाप
की याद आ गई। उसने सोचा किसी तरह नौकरी बच जाये,
कहिये, तुरन्त कह बैठी—"छोटे सरकार घोड़े पर से गिर गये
थे, उन्हें मड़ई तक पहुँचाने में देर ......"

"चुप हरामजादी! तभी तो तेरा मिजाज और बिगड़ गया है। छोड़ने
अभी बड़े सरकार के पास चलते हैं।" यह उठा, और कपड़ा
... दुखिया ने घास का बोझा पटका और चलती हुई।
... चलते चलते उसे इधर का सायंकालीन दृश्य स्मरण ...
... । वह हँसी में भूल कर अपने घर पहुँच गई। ... में ही
... चा-

इति।

कब और कैसे

हमारा रोग जड़ से जायगा? यदि आप ठीक २
जानना चाहते हैं तो अपना पूरा पूरा हाल लिख कर
आज ही पत्र भेजिये।

मैनेजर—

श्रीब्रिजराजभूषण औषधालय, बनारस सिटी।

ल्पेगा कुछ दूर हुई। उसके चेहरे की मुर्दनी, बहुत कुछ दूर हो चुकी थी। मुख-मण्डल पर रक्ताभा आने लगी थी। थोड़ी र विचार-प्रवाह में पड़े रहने के उपरान्त उन्होंने पूछा—"मैं हाँ क्यों तथा कैसे आया?" भाभी ने मुस्कराते हुए कहा,—भाग्य आपको यहाँ खींच लाया। आज प्रातःकाल कालिन्दी ट पर मेरी ननद...।" सहसा कमरे का दरवाजा खुला, सरला ने सहसा प्रवेश किया।

कमरे के एक कोने में तेल दीप जल रहा था। द्वार तक प्रकाश पूरा नहीं पहुँचता था। द्वार खुलते ही युवक तथा भा का ध्यान द्वार की तरफ़ खिंच गया। मानों तारागण-संकुल नभ के एक कोने में बादल घिरे हुए हों और सहसा बिजली चमक पड़ी हो। अपूर्व लावण्य से चमकता हुआ क मुख-मण्डल दिखलाई पड़ा। प्रवेश करते ही बिना किसी तरफ़ ध्यान दिये सरला ने कहा,—"भाभी, भइया आ रहे हैं।" कोयल कुहुक उठी। सरस्वती की वीणा आप से आप बज उठी। युवक चौंक पड़ा। उसकी आँखें उस अमित प्रकाश-युक्त नेत्रों से जा मिलीं। सरला काँप उठी। युवक को अगा ज्ञान वह बिना उत्तर दिये, उलटे पाँव कमरे के बाहर चली गयी।

त्यागी विरागी के हृदय का वैराग्य आसन डोल उठा। कुछ देर के लिये अपनी सुध बुध उस तपस्वी रतिपति को न रही। सौन्दर्य! तेरी महिमा अपार है। दृढ़ प्रतिज्ञ रतिपति का मन डांवाडोल तूने कर डाला। बड़े२ योगी तेरे पाश में फँस कर धोखा खा चुके हैं। तू अपना काम करके पीछे हट जाता है। आग लगा कर भाग जाता है, एक क्षण के प्रयत्न ने तुझे रतिपति पर आधिपत्य दिला दिया। तू सर्वथा विजयी

रहा है और रहेगा! रतिपति की माता तेरी चिर.... रहेगी।

सहसा यह सुख-स्वप्न टूट गया। सरला के गये पाँच मिनट भी न हुए थे कि पुनः द्वार खुला। आशा रतिपति ने द्वार की तरफ़ देखा, पर निराशा ने अबकी पुरुष द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया।

आगन्तुक ने सस्मित कहा—"रतिपति जी! कहिये कैसी तबियत है।"

रतिपति का निराश-हृदय कुछ क्षण के लिये आगन्तुक प्रति खिंच गया। 'यह पुरुष मेरा नाम जानते हैं' यह .... सोचकर रतिपति चौंक पड़े। नेत्र खोलकर उन्होंने .... उस आगन्तुक के प्रति देखा। धीरे धीरे उसकी नेत्रों से ...श्चर्य टपकने लगा। एकाएक रतिपति उठकर बैठ गये "मोहन! प्यारे मोहन! तुम यहाँ कैसे!" रतिपति अधिक कह सके। रुग्णावस्था के कारण उनका-जर्जरित वपुष ...शून्य हो गिर पड़ा। मोहन ने रतिपति का सिर अपनी... में ले लिया और पंखा झलने लगे। रमा पानी का ... देने लगी।

रमा०—"आपने इनको कैसे जाना?"

रतिपति—"यह तो तुम जानती ही हो कि मैं पढ़ने कितना कमज़ोर था। उस समय मेरी अवस्था २४ की और इनकी शायद १७ या १८ वर्ष की थी, जब ... इन्ट्रेन्स पास किया था। पर अवस्था में भेद होने पर हमारा इनका हृदय एक था। हम एक साथ पढ़ते, कूदते। पर कालचक्र ने मुझे गृहस्थी के झंझटों में ... और मैं अपने एक प्रिय से बिलग हो गया।

"पर ये बेहोश क्यों हो गये।" रमा ने उत्सुकता से पूछा।

"सांसारिक शिथिलता से ज्वर के बाद कमजोरी आती है, फिर एक साथ, एकबारगी किसी प्रेमी से भेंट होने पर भी भाव को बाढ़ नहीं रुक सकती—बाँध टूट जाता है। समझी! और फिर......" बात पूर्ण न हो पाई। रतिपति ने नेत्र खोले।

(४)

"अस्वाभाविक था। इतना शीघ्र! प्रेमोन्माद! हट जा! हिन्दू सभ्यता का 'सभ्य' रूप, हम कन्याओं को 'प्रेम' का 'पाठ' पढ़ाना, पाप समझता है। हमारे प्रेम की कुछ प्रतिष्ठा नहीं। हमें तो उसी की दासी बनना पड़ेगा, बड़े बूढ़े जिसकी दासी बनने की आज्ञा देंगे। मैं ने उनसे! उस देवता से! उस सौन्दर्य के देवता से, उस मधुरभाषी से, उस सर्प से डसे हुए युवक से क्यों प्रेम कर लिया। अस्वाभाविक ही उसके ज्ञान लुप्त शरीर को गोद में सुला लिया! क्या हिन्दू ललना ऐसा कर सकती है। यदि कोई देख लेता! मुँह क्या करता,......हृदयधन! तुम चाहे जिसके हो, मैं तुम्हारी हूँ। उस दिन सहसा कमरे में मैं प्रवेश कर गयी! चार आँखें हुईं। उन नेत्रों में भाव थे। सदाचार की चमक थी। सर्प को मार कर भाई से आकर तुम्हारा हाल कहना, उनका जाना, तुम्हें देख कर विस्मय प्रकट करना, सहसा तुम्हारे कण्ठ से 'रतिपति' कह कर लिपट जाना, घर पर लिया आना, औपचार में सम्पूर्ण चेष्टा लगा देना, घण्टों तुम्हारे पलंग के पास बैठे तुम्हारा मुख देखना, मुझे यह सूचित करता है कि तुम से उनसे घनिष्टता थी, पर मैं कितनी निर्लज्जा हूँ, क्यों तुम्हारे बारे में सोचती हूँ। तुम मेरे कौन, न मालूम किस जाति के हो—पर ना। शुद्ध प्रेम को जाति पाँति की पूछ

नहीं । लज्जा नहीं । कुचेष्टा नहीं । संकोच नहीं । हम विषय में स्वतन्त्र हैं, जिससे चाहे प्रेम करें । यह स्वत्व है ।

अच्छा ! तो मैं क्यों न उन्हीं ऐसी होऊँ । विवाह करूँगी—किसी पर के साथ विवाह न करूँगी, यदि उ ग्रहण किया तो ठीक ही है अन्यथा सदैव आजन्म ।। रहूँगी । पर, हृदय में आराधना करूँगी—तुम्हारे पथों अनुसरण करूँगी ।

सुना है तुम असहयोगी हो गये हो । देश के लिये कूद पड़े हो । मैं भी कूदती हूँ । पर भइया से छिपे २ । सुना असहयोगी होने के लिये खद्दर पहनना पड़ता है, अहिंसा व्रत करना पड़ता है । चाहे जो हो, मैं अनुसरण करूँगी । असहयोगी समाचार पत्र आते ही हैं, सभी मिल ही जाया करेंगे । गोपाल ! गोपाल !!"

मुग्धा सरला विचार तरङ्ग में वहती २ किनारे लगी नौकर गोपाल को बुलाकर उसने उसे चार रुपया दिया और खद्दर की धोती खरीद कर लाने को कहा । हाँ, उसने उ सचेत कर दिया था कि 'मुझी को देना' । गोपाल अच्छा कह कर चला गया ।

सरला एक कागज़ पर कोई चीज़ बनाने लगी ।

(५)

माता की छाती खुली पड़ी है । इतना वस्त्र नहीं कि ठीक तौर से ढँक ले । केवल श्वास मात्र शेष है । इस अवस्था में निर्दयियों को दया न आई । उन्होंने उसे एक और मारा । स्त्री पर हाथ उठाया । पैशाचिकता की हद्द दी । कितनों की गोद के लाल मर गये । स्वामी स्वर्ग

गये, बच्चे शहीद बना दिये गये। माता की सन्तानों पर स्पष्ट रूप से घोर अत्याचार हुआ। जलियांवाला बाग! तू भारत को जगाने के ही लिये,—माता को आह से परमात्मा को हिलाने ही के लिये—घटना रूप में सारे संसार के सम्मुख उपस्थित हुआ।

देशवासियों से माता का दुःख न देखा गया। आग जल उठी। उस समय, जिस किसी को वह भस्म कर देती। पर, माता के अनन्य उपासक ने उस अग्नि को 'भस्म' करने से मना किया, वरन् पिशाचों को न भस्म कर स्वयं अपने को, अपने पाप को, अपने दुष्कर्मों को भस्म करने की आज्ञा दी। कूद पड़े। हमारे रतिपति भी सहस्रों नवयुवकों को साथ ले इस अग्नि में कूद पड़े। असहयोग की उस पवित्र शान्त अग्नि में अपने दिल के फफोले को फोड़ने के लिये रतिपति ने अपना जीवन विसर्जन कर दिया। पर रतिपति! तुम देश का कार्य करते रहते हो। कृष्णनगर की कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष पद पर, नगर कांग्रेस कमिटी के दफ्तर में बैठे हो। पर अचानक तुम क्यों चिहुक पड़ते हो। क्यों एक ठण्ढी साँस लेते हो। तुम्हारा कलर्क तुम्हारे इस आचरण पर अचम्भित होता है। लोग कुछ दिनों में पागल कहेंगे। पर कहें! कहने दो! तुम तो शुद्ध प्रेम-प्रवाह में बह रहे हो।

रतिपति ऐसे देशभक्त की अध्यक्षता में कृष्णनगर कांग्रेस-कमिटी ने आशातीत उन्नति की। विदेशी वस्त्र व्यापारियों के यहाँ पिकेटिंग शुरू करा दिया—शराब की दूकानों पर पहरा बैठा दिया। आखिर, जो होना था वही हुआ। 'अमन' की रक्षा करने वालों ने, धन के मोल न्याय बेचने वालों ने, टके के दासों ने, रति-पति को गिरफ्तार करवा

कर २ वर्ष सपरिश्रम करावास का दण्ड दिया । स्व...
मानी सिंह रतिपति का मस्तक देश के सम्मुख और भी ...
हो गया, पर तारिणीतरण देश के शासक का ...
सदा के लिये झुक गया ।

* * * *

दूसरे दिन प्रातःकाल सरला ने समाचारपत्रों में पढ़ा
'कृष्णनगर का सिंह, प्रसिद्ध देशभक्त, माननीय रतिपति
नौकरशाही के दमन चक्र में......'

सरला ने नेत्र मूंद लिये । कुछ क्षण मौन हो कुछ स...
रही । अचानक वह उठ खड़ी हुई । "निश्चित है । भगवान
दो ।" उसने कहा ।

(६)

सूर्य के ताप का अनादर करते हुए, एक ठण्डी क...
में बैठे हुए दो प्राणी आपस में कुछ धीरे २ बातें कर रहे...

रमा ने कहा,—"कुछ सुना ! "

चकपका कर मोहन ने पूछा—" क्या ! "

अपनी अञ्चल में से एक लपेटा हुआ कागज का
निकालते हुए रमा ने मुस्कराते हुए कहा,—"मैं आज स...
के वस्त्रों के सन्दूक में से कुछ कपड़ा निकाल रही थी
मैं ने उसमें एक कागज़ का वण्डल देखा । सरला किसी ...
वश कोठे पर गयी थी । मैंने उस कागज़ के वण्डल को
कर देखा, देखते ही मैं तो अचम्भे में आ गयी । ज़रा ...
दो देखो ।"

रमा ने वण्डल को मोहन के हाथ पर रख दिया ।
...कता पूर्वक उसे खोलते हुए मोहन ने पूछा,—"...
लिखा है ।"

"सरला का ।"

मोहन की उत्सुकता और भी बढ़ गयी। बण्डल खोल र उन्होंने देखा उसमें एक 'हमारा कर्त्तव्य' शीर्षक हस्त-लिखित लेख रक्खा हुआ है और एक सुन्दर हस्त लिखित त्र भी रक्खा हुआ है। चित्र, रुग्न शय्या पर पड़े रतिपति है।

मोहन यह देख कर किञ्चित् हँस पड़े। मुस्करा कर उन्हों-अपनी पत्नी से कहा,—"मैं सब समझ गया। क्या हर्ज यह तो मैं पहले ही से समझता था। मेरे विचार सत्य फले। रतिपति धन में, ज्ञान में, सदाचार में, रूप में किस त में कम है। अपनी जाति का भी है। मेरा पुराना हृदय-त्र है। पर यह लेख किसका लिखा है। अक्षर तो सरला हैं।"

"तुम कैसी बातें करते हो। एक हिन्दू लड़की की ऐसी यायी अक्षम्य है।"

रमा इतनाही कह पाई थी के गोपाल दौड़ता हुआ ा। घबराई और भर्राई हुई आवाज़ में उसने कहाः—

"बाबूजी! दरोगा साहब और कई सिपाही द्वार पर ए हुए हैं और सरला दीदी को बुला रहे हैं।"

मोहन और रमा घबरा उठे। बाहर जाकर उन्होंने देखा ला के नाम वारण्ट था। 'पुरुषार्थ' में उसका लेख 'हमारा व्य' छपा था। लेख सरकार की दृष्टि में आपत्तिजनक रा था। अतएव पत्र के सम्पादक भी गिरफ्तार हो गये थे। सका सरला भी उसी 'महापराध' की दोषिनी समझ कर रफ्तार की जाने वाली थी।

वारण्ट सुनकर रमा ने दांतों उँगली दबाई। मोहन का था घूम गया। इसी समय खद्दर की सारी पहने भीतर से

सरला निकली। उसके मुखमण्डल पर तेज था। मुख
मुस्कराहट थी। अनुपम छटा थी। मोहन ने देखा
खद्दर पहने हुए है। खद्दर की सारी उसने कहाँ से
यह किसी ने न जाना।

सरला ने भाभी को दुःख करने से मना किया। भीड़
हुई उपस्थित जनता को, शान्ति-स्थापन का उपदेश दिया।
को प्रेमाभिवादन किया। उपस्थित जनता को देश की
श्यकता समझा कर सरला बिदा हुई। ज़िसने उस
के बाहर कभी पैर न रक्खा था वह आज इस
कड़ाती धूप में नग्न पाँव थाने को जा रही है। किसी ने स
की इस अवस्था में इस धृष्टता पर घृणा प्रकट किया,
ने सहानुभुति प्रकट किया।

प्रातः काल लोगों को ज्ञात हुआ, कि थाने में ही
कोठरी के भीतर सरला का भाग्य निर्णय हो गया।
दो वर्ष सपरिश्रम कारावास का दण्ड दिया गया।

जनता को क्रोध हुआ,—'मुक़द्‌मा इतना शीघ्र
हुआ।' सावित्री नारी के साथ 'सपरिश्रम' दण्ड की आ
लगाना क्या पाप की पराकाष्ठा नहीं है?

मोहन ने जेल में सरला से मिलकर उससे 'माफी' मां
का आग्रह किया। सरला ने प्रेमपूर्वक उत्तर दिया,—"
जिस राज्य में सत्य कहना भी पाप समझा जाता है
राज्य के वेतन-भोगी वेतन-सेवकों से क्षमा माँगना
भी कहीं दुखद है। भइया! मुझे इस कारावास
कोठरी में जितना सुख है उसका चौथाई भी मेरे घर में
कहीं भी नहीं।"

(७)

यमपुरी का सेन्ट्रल जेल इस समय निद्रा देवी के अङ्क में पड़ा सुषुप्तावस्था का अनन्य सुखानुभव कर रहा है। दिन भर के कठिन परिश्रम और क्रूरता से पिसे हुए कारागार वासी अपने सम्पूर्ण दुःखों को भूलकर मृत्यु के समान पूर्ण शान्तावस्था में हैं। क्षिति मण्डल को अपनी ज्योत्स्ना से संतप्त कराता हुआ छपाकर नभ मण्डल में विचर रहा है। दैविक बन्धन में बंधा हुआ कलाधर का भी प्रकाश अब कुछ मन्द हो चला है। पश्चिम दिशा के प्रति अग्रसर होते हुए चन्द्रमा ने कुमुदिनी को आश्वासनोत्साहित करना चाहा, पर चेष्टा व्यर्थ निकली। कुमुदिनी भी दुःख से अपना दुःख छिपाने का आयोजन करने लगी।

४ बजे होंगे। सर्वत्र शान्ति छाई हुई है। इसी समय जेल के एक कोने में से किसी के मधुर कण्ठ में से मधु वर्षा होने लगी। एक कम्बल बिछाकर उसी पर लेटे हुए एक कैदी ने अपने कण्ठ-स्वर को कोकिला के कण्ठ-स्वर से मिलाते हुए गाना शुरू किया,—

"जन्म-भू ! तेरी जय जय हो।
जय, तेरी जय, जय तेरी जय, जननि तेरि जय हो,
जन्म-भू ! तेरी जय जय हो॥

द्वार पर खड़े हुए वार्डर-के कान खड़े होगये। चोर के पैर की आहट पाकर कुत्ते के कान जिस प्रकार खड़ा होजाता है उसी प्रकार वार्डर के कान भी खड़े होगये। जब उसे निश्चय होगया कि उक्त कमरे में कोई गा रहा है तब वह हाथ

ने मुझे अपने प्रति आकर्षित कर लिया था, जिसकी धना आज मैं इतने दिनों से कर रहा हूँ, वही मानस की दिव्य प्रतिमा कितने सुन्दर-रूप में आज मेरे खड़ी है! इस समय इसका सौन्दर्य कितना भव्य है। जाने इस बीच में इसका विवाह हो गया या नहीं। क्यों और कैसे आई।"

रतिपति को अधिक सोचने का समय न मिला। की उसके प्रति एकटक दृष्टि ने उसे बतला दिया कि उसे प्रेम करती है। दोनों के नेत्र आपस में मिल गये। ने एक दूसरे से प्रेम सन्देस कह दिया और फिर लज्जा झुक गये।

वार्डर ने सरला से घुड़क कर कहा,—"खड़ी क्या हो! तुम्हें भी ऐसे ही दुःख भोगने पड़ेंगे। चलो, देर न करो" सरला आगे बढ़ी। इच्छा न होने पर भी वह आगे बढ़ी लज्जा तथा भय से उसने कुछ न कहा।

वार्डर ने उसे लेजाकर मर्दानी कालकोठरी में बन्द दिया। दो रोटी और एक तसला पानी रख आया।

दिन भर की प्यासी सरला ने रोटी न खाया। बिना ध्यान दिये उसने पानी पी लिया। रोटी पड़ी रही।

दो बजे भूखे प्यासे रतिपति का बन्धन खोला गया। से कपड़ा हटते ही उन्होंने पुनः 'जन्म-भू तेरी जय जय गाना प्रारम्भ किया। सिंह को जिद्द पड़ गयी थी। मर जाऊँ, पर जीवन रहते जननी जन्म-भूमि की प्रार्थना से कोई न रोक सकेगा।

अबकी बिचारे पुनः भूखे प्यासे पेड़ में बाँध दिये भेद इतना ही था, अबकी केवल दोनों हाथ ऊपर को गये थे। मुख पहली प्रकार के समान कस दिया गया था।

(६)

रतिपति! सर्प से तुम्हारी इतनी पुरानी शत्रुता क्यों! तुम्हारे इतने बड़े भगवद्भक्त को भी दुःख सहना पड़ता है! कलियुग में सन्तों को ही दुःख है। इसी सर्प के डसने ने तुम्हें और सरला को निर्दयी प्रेम-पाश में फँसा दिया। इसी सर्प ने तुम्हें अबकी बार पुनः धोखा दिया। माता पिता की आज्ञा तथा अनुनय की अवहेलना कर तुम देश-सेवा के कण्टक-मय मार्ग में कूदे थे, अब देखो तुम सदा के लिये उन वृद्ध माता-पिता को छोड़ कर चल बसे। बिचारी सरला की क्या दशा होगी। सोचो! निर्दय काल! वह इन्हीं के लिये इतना कष्ट सह रही है और जेल आई है।—

वृक्ष में एक सर्प चिपटा था। निशा में सभी पाप स्पष्ट होते हैं। निर्दय सर्प ने रतिपति ऐसे देशभक्त को संसार से उठा दिया।

मृत शरीर खड़ा रहा। वृक्ष में बँधा रहा।

* * * *

तीन दिन से ज्वर में आक्रान्त, दिन भर की थकी प्यासी, धूप में और भी अधिक पीड़ित सरला ने, अगर बिना कुछ खाये पीये पानी खींचकर पी लिया, और उसको यदि हैज़ा हो गया तो क्या आश्चर्य। कालकोठरी में पड़ी बिचारी की बीमारी कौन सुनता और जानता। उसे दो 'कै' हुए। "प्राणनाथ! मैं जाती हूँ!" यही कह कर बिना किसी से कहे सरला ने रतिपति का पीछा पकड़ा।

प्रेम-बन्धन! तू कैसा दृढ़ हो जाता है। सात्विकता के कारण तुझ में दैविकता भी आ जाती है। गोसाईं जी का

दोहा सत्य है । 'जापर जाको सत्य सनेहू—सो तेहि मिले न कुछ सन्देहू ।' किसी को विरहाग्नि में न जलना पड़ा । साथ स्वर्ग में भेट हुई ।

इति ।

ईवनिंग पार्टी।

लेखक—
श्रीयुत बा० दिनेश्वरप्रसाद सिंह।

(१)

अध्यापक महेन्द्र बाबू एक कालेज में विज्ञान के अध्यापक हैं, आपने छोटे मोटे बहुत से आविष्कार किये हैं, तथापि आपके आविष्कृत यंत्रों के बिना भी संसार के कार्य भलीभाँति चलते हैं। संसार को इनसे विशेष लाभ नहीं। कभी कभी क्लास में अपने आविष्कृत यंत्रों की प्रशंसा करते हुए महेन्द्र बाबू अपने आप को भूल से जाते हैं। बालकों को घर पर बुला बुला कर आप अपने आविष्कृत 'दाल दलने का यंत्र,' "घास काटने का यंत्र' इत्यादि इत्यादि दिखाया करते हैं। बालक भी आप जैसे विज्ञान-विद्या-विशारद अध्यापक को पाकर फूले नहीं समाते और अपने भाग्य को सराहते हैं। किन्तु महेन्द्र बाबू की प्रसिद्धि में उनके कतिपय मित्र ही बाधक हैं, और उनमें विशेषकर मैं हूं।

आज मित्र-मंडली में बैठे बैठे महेन्द्र बाबू बोल उठे—

"आज से चोरी बन्द हो जायगी"।

मैं०—"क्यों ? क्या फिर सतयुग आगया, या चोरों चोरी करना ही छोड़ दिया ?"

महेन्द्र—"अजी यह बात नहीं, हमने एक ऐसी घन्टी आविष्कार किया है कि जिसे घर के द्वार पर बाँध देने किसी प्रकार का डर नहीं रह जायगा, क्योंकि किसी आते ही वह स्वयं बजने लगेगी और घर वाले जग जायँगे।"

मैं—"खूब, क्या द्वार ही आने का एक मार्ग है ? चोरी करने के लिये सैकड़ों उपाय हैं-कहाँ कहाँ घन्टी ... यथा आपकी घन्टी सर्वथा अनावश्यक है।"

महेन्द्र बाबू की यह दशा थी कि जब कोई उनके यंत्रों प्रशंसा नहीं करता तो वे जलभुन राख हो जाते थे। इस मेरी इस निन्दा से वे बहुत चिढ़े और क्रोध के मारे पसीने से बिल्कुल तर हो उठे। बोले—

महेन्द्र०—"अच्छा यदि कोई चोर मेरे घर में चोरी कर ले तो मैं उसे ५००) रु० इनाम दूं। अन्यथा, मेरे यंत्र को निरर्थक कहने वाला मुझे ५००) रु० देवे।"

मैं कुछ नहीं बोला। सोचने लगा, यदि किसी तरह इनके घर से कोई चीज उठा ले जाऊँ तो ठीक हो। यदि कार्य सिद्धि हो गई तो ५००) रु० मेरे हैं। और यदि चोरी करते पकड़ा भी जाऊँ तो कह दूँगा कि आपसे मिलने आया था। किन्तु ५००) रु०, ओह! थोड़ा नहीं है—यदि मिल गया तो मित्रों को एक Evening party [सान्ध्य-भोजन] दिया जायगा। इसलिये, अन्त में महेन्द्रबाबू के घर में चोरी ही करना निश्चित कर, मैंने उनसे कहा—

"क्या आप प्रतिज्ञा करते हैं कि चोरी हो जाने पर चोर को (५००) रु० देंगे?"
महेन्द्र०—"मैं, और लोगों जैसा धतधुट नहीं हूँ। जो ता हूँ, उसे प्राणपण से पूरा करता हूँ।"
बात यहीं खतम हुई। मैं चोरी की कल्पना करता हुआ आया। और चोरी करने का उपाय सोचने लगा।

(२)

मेरे पिता जी बड़े धर्मनिष्ठ हैं। वर्ष में एक बार वे अवश्य र्थाटन के लिये जाते हैं। उनकी यह यात्रा कमसे कम २३ होने में समाप्त होती है। जब तक पिता जी घर नहीं लौटते त तक मैं ही घर का स्वामी बना रहता हूँ पिता और माता चले जाने से मेरा जीवन एक प्रकार से स्वाधीनतापूर्वक टता है। मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय का बी० ए० उपाधि- ारी एक ग्रैजुएट हूँ किन्तु घर में यथेष्ट सम्पत्ति रहने से मैं कोई व्यवसाय नहीं करता, पिता जी के उपार्जित धन को नमाना उपभोग करता हूं।

आज ही मेरे पिता जी यात्रा पर जाने वाले हैं। यात्रा की यारी हो रही है। आवश्यकीय वस्तु एकत्र की जाती है। पेता जी इस बार और देर में लौटेंगे। मैं श्री महेन्द्र बाबू के र चोरी करने के उस भावी सुयोग को सोच सोच कर फूला हीं समाने लगा। बाबू जी के चले जाने पर हमने एक दिन १ बजे रात को महेन्द्रबाबू के घर चोरी करने का संकल्प किया। रात बहुत अँधेरी थी आकाश में बादल घिरे रहने ते और कुछ अँधेरा छाया हुआ था। अपना हाथ भी नहीं ख पड़ता था। किन्तु किस गली में महेन्द्रबाबू रहते हैं।

हुए देखकर पुलिसवाले ने झुंझला कर मुझ से तलाशी ले
को कहा। तलाशी होने पर मेरे कोट के पाकेट से एक
और मनीबेग निकला। चाकू देखते ही पुलिसवाला
उठा और बोला—

"बाप रे बाप! यह तो खूनी चोर है। इसके पास
छुरा है। इसी से यह लोगों के प्राण लिया करता होगा।"

पुलिस वाले की यह विचित्र उक्ति सुनकर घर के
लोग डर गये। और भगवान को धन्यवाद देने लगे कि
लोग आज काल के ग्रास से बचे हैं। फिर मुझे साथ ले
पुलिसवाले छत पर आए, यहाँ वहाँ ढूंढ़ने लगे। वहाँ
'खनती' मिली। उसे उठाकर एक ने कहा—

"अरे, यहाँ देखो सेन्ध काटने की एक खनती भी
ज्ञात होता है कि आप [मुझे लक्ष्य कर] सब सामान से
कर आये थे। चलो, चोरी का सबूत भी मिल गया।"

खनती घरवालों की थी, किन्तु वे लोग पुलिसवालों
डर से अपनी नहीं बता सके। अन्त में मुझे बुरा भला
कर पुलिसवाले बीच में कर के थाना पर ले चले। मैं भी
मारे अपने कार्य्य पर पछताता हुआ उनके साथ चला।

(२)

भाग्य से अभी रात बहुत थी, इससे किसी ने मुझे ज
नहीं देखा। पुलिसवाले इनाम पाने की आशा में मग्न
शीघ्रता से बढ़े चले जाते थे। मेरे जी में आया कि भाग ज
तो कदाचित् प्राण बच जायँ। किन्तु, भागूँ कैसे? पुलिसव
तो दृढ़ता से पकड़े हुए थे। अस्तु, सुयोग देखने लगा। अ
तक हमलोग राज-पथ पर नहीं आये थे। गली ही में इ

घर मुड़ने फिरते थे। एक स्थान पर पुलिसवाला मुझे छोड़
कर पिशाव करने लगा और दूसरा मुझे पकड़े हुए आगे
बढ़ा। अब क्या था; मैं उसे झट लात मार कर गिरा दिया
और नौ दो ग्यारह हुआ। दोनों मेरे पीछे दौड़े, पर मुझे कहाँ
पा सकते थे—अन्त में हार कर वे चिल्लाने लगे—"असामी
भागा है, पकड़ो पकड़ो" किन्तु मैं तो एक साँस से बरा-
बर दौड़ा जाता था। अरे यह क्या हुआ, फिर पकड़े गये!
एक जमादार ने आगे बढ़ कर कहा 'हल्ट हुकुम देयर? (Hilt
who comes their) मेरा प्राण सूख गया। सच है "करम गति
टारे नाहिं टरे।" कहाँ तो आशा थी कि अब प्राण बच चुका है
और यहाँ आकर फिर फँसे। मैं निस्तब्ध खड़ा हो गया। वह
आया और मेरे डरे हुए मुखाकृति को देख कर बोला,—

जमा०—"तुम कौन हो, और कहाँ दौड़े हुए जाते हो?"
मैं क्या उत्तर देता। कुछ समझ नहीं आया। इतने ही में
दोनों राक्षस भी आगये जो मुझे पकड़े हुए थाना पर लिये
जाते थे। अब मेरी क्या दशा हुई, इसे वर्णन कर मैं अपने
पाठकों का हृदय दुखाना नहीं चाहता। मेरा भली भाँति
सत्कार कर वे मुझे थाना को ले चले। यहाँ से थाना बहुत
दूर था। बात की बात में हमलोग थाना पर पहुँच गये। रात
को एक असामी के आने से थाने में हलचल मच गई। सब
लोग पुलिस वालों की प्रशंसा करने लगे। अस्तु, उनलोगों ने
इन्स्पेक्टर साहब को जगाया। उन्होंने मुझे आफिस में ले
जाने की आज्ञा दे, आप पीछे से आने को कहा।

इन्स्पेक्टर साहब आँख मलते मलते आए। वे मुझे परि-
चित ज्ञान पड़ने लगे। मैं सोचने लगा, इन्हें कहाँ देखा
है। बहुत सोचने के अनन्तर स्मरण हुआ कि ये हमारे

विवाह में उपस्थित थे । अब तो मैं बहुत लज्जामें पड़ा । उनसे
परिचय करूँ या नहीं, कुछ समझ नहीं पड़ता । अन्त में परि-
चय न देना ही ठीक समझा, क्योंकि ये मुझे नहीं पहचा-
नते थे और यह अच्छा ही हुआ, नहीं तो मैं लज्जा के मारे
मुट्ठी भर का हो जाता ।

इन्हों ने पुलिसवालों की रपट (Report) लिखी और
पुलिसवालों की प्रशंसा करते हुए कहा—

"तुम दोनों ने बड़ी बहादुरी का काम किया है । मैं
सूचना सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब को दूँगा और तुम लोगों
इनाम दिलाने की चेष्टा करूँगा । अच्छा यह बतलावो,
लोगों में से किसीने इसे [मुझे] पहले भी देखा है ?"

सब चुप रहे । किसी ने कुछ नहीं कहा । तब एक
से एक बूढ़े पुलिसवाले [इसका नाम हरीसिंह था]
कहा "हाँ सरकार यही बहूबाजार के मारवाड़ी के घर का
है । इसे उस मोक़द्दमे में ६ महीने की सज़ा हो चुकी है।
ही तो इसे जेलख़ाना ले गया था ।"

पाठक, आप इस हरीसिंह की बात की सत्यता स्वयं
विचार लें । मेरे जी में आता था कि इन्स्पेक्टर से सब
कहूँ, पर हँसी होने के डर से चुप हो जाता था । सब के
मुझे कुवाच्य कहते थे, किन्तु मैं करता ही क्या ? मेरी
दशा "जिमि दशनन महँ जीभ विचारी" सी थी । सब सो
सुनता गया । इन्सपेक्टर साहब मुझे हवालात में रखने
लिये कह कर आप सोने चले गये ।

मैं हवालात में भेजा गया ... ने वहाँ जा...

१५ मनुष्य पहिले ही से यहाँ हैं। मैं आँखें मूँद अपनी वर्तमान दशा पर सोचने लगा। हाय! कहाँ तो मैं अपने पिता का एकमात्र उत्तराधिकारी होकर भले आदमियों के साथ दिन बिताया करता था और कहाँ इस दुर्गन्धिमय स्थान में घोर डाकू और खूनी मनुष्यों के बीच में हूँ। हे भगवन्, मारे किस उग्र पाप का यह प्रायश्चित्त है? हाय! ये डाकू और खूनी मुझे क्या समझते होंगे? अवश्य ये मुझको भी अपनी ही भाँति अत्याचारी समझते होंगे। क्या मैं अपने को इनके निकट निर्दोषी प्रमाणित करूँ? पर इससे लाभ ही क्या है? क्या ये मेरी बातों को मानेंगे? कदापि नहीं।"

यही सोचते सोचते मुझे कुछ झपकी सी ज्ञात होने लगी। जी में आया कि सो जाऊँ, किन्तु बिछावन कहाँ है? फिर घर की सब बातें स्मरण हो आईं—आँखों में आँसू भर आए। कहाँ तो घर का वह अत्यन्त कोमल फेन सा बिछावन, और कहाँ यह धूल-धूसरित-कम्बल! एक बार हृदय में घृणा हो आई। "किन्तु देवि निद्रे! तेरी महिमा विलक्षण है। मनुष्य पर गाढ़ी से गाढ़ी विपत्ति क्यों न पड़ी हो, तेरी कृपा से वह मनुष्य कुछ देर के लिये सब दुःखों को भूल जाता है। तू भी उसे दुखी देख कर अपनी शरण में ले लेती है, और उसे अपनी क्रोड़ में सुखपूर्वक आराम करने देती है। किन्तु देवी, तुम्हारी कृपा क्षणभंगुर होती है, यही एक अवगुण है। फिर भी तुझे मेरा शतशः प्रणाम है" यह कह कर मैं ज्योंही उस हवालात के कम्बल पर सोया कि न मालूम कहाँ की निद्रा मुझे आगई।

प्रातः दिन के ८ बजे मेरी आँख खुली। पहरे वाले के कहने पर मैं नित्यक्रिया से छुट्टी पाकर बैठा ही था कि मुझे आज्ञा

हुई मैं बाहर आऊँ। अस्तु,मैं बाहर आया। वहाँ एक गाड़ी प्र
स्तुत थी। मैं उसी में बैठाया गया। गाड़ी अलीपूर के प्रेसीडेन्सी
मैजिस्ट्रेट की कचहरी की ओर चली। रास्ते भर, मैं जी
सोचता गया कि सब कहानी मैजिस्ट्रेट साहब से सुनाऊँगा।
गाड़ी कचहरी पहुँच गई। पुलिसवालों ने मुझे गाड़ी से
उतार कर एक छोटे से कमरे में ले जाकर बन्द कर दिया। बैठे
बैठे बारह बज गये, किन्तु किसी ने मेरी खोज नहीं की।
१ बजे थोड़ा चबेना मिला, मैं ने उसी को खाकर थोड़ा
पिया और अदृष्ट की बात सोचने लगा। कभी जी में
कि आत्महत्या कर लूं किन्तु घर में स्त्री जो है। उस
राधिनी को कष्ट होगा। मैं ही उसके जीवनदीप का तेल
भाग्यवश वा अभाग्यवश मेरे कोई सन्तति भी नहीं थी।
पर भी किसी ने कहा है कि 'Suicide is the greatest si
(आत्महत्या एक घोर पाप है) अन्त में भूख मार कर कि
भाँति प्राण रखना ही निश्चित किया।

प्रायः दो बजे मालूम हुआ कि मजिस्ट्रेट साहब को मु
दमा बहुत है। अतः मेरा मुकदमा एक सप्ताह के लिये मु
तवी रक्खा जाता है। मेरा प्राण सूख गया। सोचा कि
महाकष्ट से शीघ्र छुटकारा नहीं होगा। मैं फिर उसी जेलख
में लाया गया, किन्तु उसी दिन मेरी बदली अलीपूर सेन्ट
जेल को हो गई।

(५)

यहाँ मुझे आज्ञा हुई कि मैं अपने सब सामान ठीक
रखूं। मुझे स्थानपरिवर्तन करना होगा। मेरे निकट था
क्या। अस्तु, कोट इत्यादि पहन लिये। जेलरसाहब ने मेरे बि

छ लिखापढ़ी कर के पुलिसवालों को दे दिया। यह सवाले सज्जन थे, उन्होंने मेरे कमर में रस्सी नहीं बाँधी। क पर आकर हमलोग एक ट्राम गाड़ी पर चढ़े और बात बात में सेन्ट्रल जेल के फाटकपर पहुँच गये। पुलिस वाले ने डिप्टी जेलर के आफ़िस में ले गये।

रात के ७ बजे का समय होगा। जेलरसाहब सरक मुंह लगाये आफ़िस का कार्य्य कर रहे थे और बीच बीच में नो पीठ खुजला लेते थे। पुलिसवालों ने उन्हें हमारे पूर्व रचित जेलरसाहब की चीठी दी।

चीठी को पढ़ कर उन्होंने उसे एक बक्स में रख लिया र आफ़िस के कार्य्य कर चुकने पर मेरा नाम लिखने के ये रजिस्टर उठाया। मैं चुपचाप खड़ा था। वे मेरे मुंह की र देख कर चौंक कर बोले—

"क्यों जी, तुम तो अम्बिका बाबू के पुत्र सत्येन्द्र हो। तुम से यहाँ आए?"

मेरी आँखों से आँसू की अविरल धारा बह चली। कुछ र के लिये मुझ से कुछ कहते नहीं बन पड़ा। हिचकी के मारे ला रुँधासा हो गया था। अस्तु मैंने आँखें पोंछ कर सारी राम कहानी उन्हें सुना दी। वे इसे सुन के हँसने लगे। अन्त ढाढ़स बँधा कर उन्होंने मेरे लिये हवालात में चारपाई त्यादि भेजवा दी। खाना भी उन्हीं के यहाँ से आने लगा। सात दिन हमने सुख से काटे। जेलरसाहब की कृपा से झे किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं हुआ। वे नित्य ही आकर मेरा जी बहलाया करते थे। कल्ह मेरा मुकदमा है— खें क्या होता है। बचने की तो कुछ भी आशा नहीं थी। थानेदार साहब ने कृपा करके ज़ोरदार रिपोर्ट लिखी थी।

मर्मानुवाद पाठकों के लिये हम अपनी टूटी फूटी हिन्दी भाषा में देते हैं। किन्तु मुझ में यह शक्ति नहीं कि मैं सम्पादक महाशय की प्रवल कटुक्तियों का साम्य, हिन्दी में ला सकूं, या उन की शक्तिशाली भाषा का ही अविकल अनुवाद कर सकूं। संपादक महाशय ने जिस तेज भाषा में दुर्बल डिप्टी साहव पर आक्रमण किया था उसका वर्णन मुझ अल्पज्ञ की बुद्धि से एक दम वाहर है। वश चलता तो कदाचित् सम्पादक महाशय बिचारे डिप्टी साहव को कलम की नोक से भोंक भोंक कर मार डालते। सम्पादक महाशय अपने सम्पादकीय कालम में लिखते हैं:—

"आज मुझे अपने एक विश्वस्त सम्बाददाता से ज्ञात हुआ है कि एक चोर को अमुक डिप्टी कलेक्टर ने दोष के प्रमाणित हो जाने पर भी छोड़ दिया है। पुलिस को चोरी का पूरा सवूत भी मिल गया था, किन्तु डिप्टी ने एक देशी (नेटिव) अध्यापक की साक्षी पर उस चोर को छोड़ दिया है। डिप्टी साहव अपने फैसला में लिखते हैं कि चोर बी० ए० परीक्षा पास है और एक सम्भ्रान्त व्यक्ति का पुत्र है। बस इन्हीं बात पर डिप्टी साहव ने उसे छोड़ दिया है। हम नहीं समझते, सरकार क्यों ऐसे अफसरों को ऐसे संगीन मुद्दकमा देखने को देती है। ऐसे अफसर आततायियों की संख्या वढ़ाते हैं और उन्हें अत्याचार करने को उत्तेजित करते हैं। पहले तो देशी (नेटिव) मनुष्यों को ऐसा वड़ा पद मिलना ही नहीं चाहिये, क्योंकि न्याय करने इन्हें आता ही नहीं और ये अपने वन्धुओं के पक्षपात करने लगते हैं। इस मुकदमें के फैसला का क्या परिणाम होगा यह किसी से छिपा नहीं रहेगा। कलकत्ता में अवश्य चोरियाँ हुआ करेंगी। फिर भी विचारी पुलिस को

गली गली में धूल छानते फिरना होगा। बड़ी कठिनाइयों से इस चोरी का पता उसने पाया था, किन्तु फिर भी डिप्टी महाशय की कृपा से उसे लज्जित होना पड़ा। ऐसे ही अफसर पुलिस की निन्दा करवाते हैं और सर्वसाधारण के हृदय से पुलिस पर से श्रद्धा हटाते हैं। पुलिस की निन्दा होने से सरकार की निन्दा है.........। मैं आशा करता हूँ कि सरकार ऐसे अफसरों पर अपनी कड़ी निगाह रखेगी।"

पाठक! आपने सहृदय सम्पादक महाशय के उच्च विचार देखे! सरकार को आपने कैसी शिक्षा दी है।

दूसरे दिन महेन्द्रबाबू ने अपने सब मित्रों को Evening party (सान्ध्य भोजन) के लिये निमन्त्रण दिया। मुझे भी निमन्त्रण था, किन्तु जाने की मेरी इच्छा नहीं थी। पर मेरे मित्र, माननेवाले कहाँ थे। अन्त में मुझे वे घसीट ही ले गये। वहाँ जेलरसाहब इत्यादि सब एकत्र थे। बड़े आनन्द के साथ भोजन हुआ। बीच बीच में मेरी कहानी स्मरण करके सब हँसने लगते थे। भोजन समाप्त होने पर गाना आरम्भ हुआ। हँसते२ लोगों के पेट में बल पड़ २ गये। उस दिन बड़ी रात को घर लौटे। लौटती बेर उस रात को घटना सोचकर रोंगटे खड़े हो आये थे। इसी भाँति बहुत दिनों तक मैं अपने मित्रों की हँसी का खिलौना बना रहा *।

इति।

---

* बंगला 'भारतवर्ष' के 'स्टीमर पार्टी' के आधार पर।

भूल-संशोधन।

गत अगस्त मास की 'गल्प-माला' में 'बहादुर नान्-सेन्स' नाम का एक प्रहसन 'आज' से प्रकाशित किया गया था। उसपर नाम कोई न रहते हुए भी, हमारे प्रूफ-रीडर की भूल धारणा से 'श्रीयुत पं० बेचनराम शर्मा उग्र' नाम छप गया है। पाठकों को यह भूल सुधार लेनी चाहिये।

—सम्पादक।

चटनी।

लेखक-
श्रीयुत त्रिपुरारी शरण श्रीवास्तव।

(१)

शरीफ़ आदमी—"तुम ऐसे बुरे कपड़े धोते हो कि फाड़ कर एक एक के दो दो कर लाते हो।"

धोबी—"लेकिन जनाब, मेरी शराफत देखिये कि जब एक कपड़े को दो करके लाता हूँ तो भी सिर्फ एक ही कपड़े की धुलाई लेता हूँ।"

(२)

मालिक खफ़ा होकर—"क्या तुम समझते हो कि मैं बेवकूफ़ हूँ।"

नया नौकर—"हुजूर मैं नहीं कह सकता। मैं तो कलही आया हूँ।"

(३)

साहेब (एक खानसामा से, जिसने अँधेरे में साहेब का बोसा ले लिया)—"नामाकूल यह क्या!"

खानसामा—"माफ़ कीजिये, मैंने मेम साहेब समझा था!"

(४)

एक दोस्त ने दूसरे कंजूस दोस्त से—"मैं ने सुना है कि

इस अङ्क के गल्पों की सूची।

१—चित्रकार-[ले०, श्रीयुत कालिकाप्रसाद चतुर्वेदी
२—किरण-[ले०, श्रीयुत पारसनाथ त्रिपाठी ... २६४
३—काल-[ले०, श्रीयुत 'अहिवासी' ... २७१
४—हा दुर्दैव-[ले०, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा ... २७८
५—खेलाड़ी श्यामू-[ले०, श्रीयुत गोपालराव देवकर... २११ २१८

गल्पमाला के उद्देश्य और नियम।

१—इसका प्रत्येक अङ्क प्रति अंगरेज़ी मास की १ ली तारीख़ को छप जाया करता है। जो सब मिला कर सालभर में ५०० से अधिक पृष्ठों का एक सुन्दर ग्रन्थ हो जाता है।

२—रानी, तथा राजा और महाराजाओं से उनकी मान रक्षा के लिये इसका वार्षिक मूल्य २५) रु० नियत है।

३—इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से २॥) है और वी० पी० से २॥।) है। भारत के बाहर ४) है। प्रति अङ्क का मूल्य ।-) आना। नमूना मुफ्त नहीं भेजा जाता है।

४—'गल्पमाला' में उसके गल्पों ही द्वारा संसार की सब बातों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

५—मौलिक गल्पों को इसमें विशेष आदर मिलता है। पुरस्कार देने का भी नियम है।

मार्च १९२४ में छपने वाले गल्प।

१—भिखारिणी-[ले० श्रीयुत प्रतापनारायण श्रीवास्तव।
२—सत् श्री अकाल-[ले०, श्रीयुत कालिकाप्रसाद चतुर्वेदी।
३—पति-पूजा-[ले०, श्रीयुत गोपालराव देवकर।
४—विनोद-[ले०, श्रीयुत 'विनोदी'।

पदक-प्राप्ति-सूचना ।

—:o:—

इस वर्ष पदक प्राप्ति-निर्णय कमेटी के निर्वाचित सदस्यों में हैं श्रीयुत पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय, श्रीयुत कृष्ण विहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०, श्रीयुत प्यारेलाल गुप्त श्रीयुत पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, श्रीयुत पं० चन्द्रमनोहर मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०, श्रीयुत अशौरी कृष्णप्रकाश सिंह बी० ए०, एल्-एल्० बी०, श्रीयुत 'एक हिन्दी प्रेमी' (आलोचक), और श्रीयुत ए० पी० गुप्त ।

समालोचक जी की इस वर्ष की संक्षिप्त आलोचना और निर्णय से समिति के प्रायः सभी सदस्य सहमत रहे। केवल दो सज्जनों का कथन है कि 'उषा' और 'ग़रीब' दोनों के लिये रौप्य-पदक ही दिये जायं। परन्तु बहुमत 'उषा' के लिये 'स्वर्ण' और 'ग़रीब' के लिये 'रौप्य' रहा। अतः नीचे लिखे अनुसार पदक देनाही निश्चय हुआ।

१—'उषा' के लेखक पं० रुद्रदत्त भट्ट को 'स्वर्ण पदक'।

२—'ग़रीब' के लेखक श्रीयुत निर्मलकान्त बी० ए०, को 'रौप्य पदक' (बा० रूपकिशोर जी जैन,रईस विजयगढ़ प्रदत्त)।

भविष्य में, नक़द पुरस्कार के सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ सज्जन 'पदक' को ही उत्तम बताते हैं, कुछ 'नगद' पुरस्कार को। इन दोनों मतों पर विचार करने के लिये श्रीयुत चन्द्रमनोहर मिश्र बी० ए०, एल्-एल्०बी० का वक्तव्य उचित प्रकाश डालता है। आपने लिखा है—"नक़दी (रुपया) संसार में व्यापारिक दृष्टि से देखी जाती है। साहित्य-रत्न का कोई

मूल्य नहीं, कीर्तिही उसका बदला है। इसलिये वास्तवि
उत्तम लेख का अल्प धन से यथेष्ठ मान नहीं होता। पद
जो क्रय विक्रय की वस्तु नहीं है—केवल मानचिन्ह है, ले
की उचित प्रतिष्ठा ही नहीं करता है, प्रतिभाशाली लेखक
वक्षस्थल पर भी शोभा पाता है, अन्यथा लेखक और पदक
दूसरे की उपहास-सामग्री हैं। इसलिये भविष्य में भी
कोई साहित्य सौन्दर्यपूर्ण लेख आजावे तो उसका स्वर्णपद
से आदर किया जाय, अन्यथा साल के उत्तम लेखकों में
कुछ को धन-भेंट पर्याप्त होगा।"

अन्ततः निश्चय यह हुआ कि भविष्य में जो लेखक सर
पुरस्कार लेना उचित समझें और उनके गल्प उस योग्य
तो उन्हें पत्र-पुष्प-स्वरूप कुछ नकद पुरस्कार दिये जा
और, ऐसे पुरस्कृत गल्पों के अतिरिक्त, वर्ष में एक प्रथम श्रे
के साहित्य-सौन्दर्यपूर्ण गल्प का 'स्वर्ण पदक' से आदर कि
जाय। और यदि प्रथम श्रेणी का न हो तो 'रौप्य पदक' से

शेष में—

श्रीयुत कुमार गङ्गानन्द सिंह एम०ए०, एम० आर०
ए०, श्रीयुत छविनाथ पाण्डेय बी० ए०, एल्-एल्० बी
श्रीयुत सूरजप्रसाद शुक्ल, श्रीयुत बा० प्रतापनारायण श्रीवास्
श्रीयुत कालिकाप्रसाद चतुर्वेदी, श्रीयुत शिवदान प्रसाद सि
बी० ए०, एल्-एल्० बी०, और श्रीयुत 'अज्ञात' बी०
को भी उनके उत्तम गल्पों के कारण हार्दिक धन्यवाद दे
निश्चय हुआ। और

श्रीयुत जयकिशोर जी जैन, रईस मिर्जापुर

अपनी तरफ से 'एक रौप्य पदक' देने के उपलक्ष में धन्यवा
दिया गया।

व्यवस्थापक।

वाय सम्बन्धी समस्त रो । दूर करने वाली एक वि-

वीर्यवर्धक।

मनुष्य के शरीर में वीर्य ही एक अमूल्य वस्तु है। इसमें घुन रूपी रोगों के लग जाने पर चाहे कुछ भी खाओ शरीर दिन दिन कमज़ोर ही होता जायगा। वजह यह है कि वीर्य सम्बन्धी कोई रोग शुरू हो जानेपर 'लकड़ी घुन की तरह वह, बलवान शरीर को भी खोखला बना डालता है। आजकल हजारों तरह की दवाइयां इस मर्ज को दूर करने की निकल रही है परन्तु मर्ज दिन दूना बढ़ता ही जाता है इसीको बिचार कर यह स्वादिष्ट औषधि 'वीर्यवर्धक' तैयार की गई है जो वीर्य को बहुत बढ़ाती है। साथ ही नवीन वीर्य उत्पन्न करके पतले वीर्यको खूब गाढ़ा बनाकर पुष्ट करती है। शरीर को कमज़ोर करनेवाले वीर्य सम्बनन्धी समस्त रोगों को जड़ से उखाड़ कर सदैव के लिये दूर कर के शरीर को हृष्ट पुष्ट बलवान बनाती है।

रक्तविकार, स्वप्नदोष, वीर्यस्राव, धातुक्षीणता, नपुंसकता, नामर्दी, दुर्बलता, शीघ्र वीर्यपतन, वीर्य 'धातु' का पानी के समान पतला होना, मूत्र के साथ सफेद गोंद सा चिकना गिरना, पाखाना होते समय वीर्य का बिन्दु निकल जाना, पेशाब करने के पहिले या पीछे तार के समान सूत के लच्छे की तरह वीर्य का गिरना आदि सबको बराबर फायदा पहुँचाता है। हर एक मौसिम में खाया जाता है। मूल्य फी वक्स २॥) किन्तु लोकोपकार हेतु अभी केवल १।) में ही देंगे। डाक खर्च एक वक्स का ॥) है, २ से ५ वक्स तक का ॥-)

वीर्य सम्बन्धी रोगोंके कारण निदान सहित बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगा लें।"

पता—वीर्यवर्धक कम्पनी, रमजू, पो० सादाबाद प्रान्त मथुरा

तन्दुरुस्ती का बीमा।

इसके सेवन से पाचन शक्ति, भूख, रुधिर बल और आरोग्यता की वृद्धि होती है। तथा अजीर्ण, उदर के विकार, खट्टी डकार, पेट का दर्द, कोष्ठ बद्धता, पेचिश बादी का दर्द, बवासीर, कब्ज, खाँसी, गठिया, यकृत ल्हीहा, आदि शर्तिया आराम होते हैं। स्त्रियों के मासिक धर्म सम्बन्धी विकार नष्ट होकर, बिच्छू भिड़ आदि के डंक में भी लाभदायक है। मूल्य १०० खुराक का १) रु०, और की बोतल जिसमें ७०० खुराक रहता है ५)

जगत् भरमें नई इजाद।

पीयूष धारा।

"पीयूषधारा"—बूढ़ों, बच्चों, युवा, पुरुषों तथा स्त्रियों के कुल रोगों का—जो कि घरों में होते रहते हैं—अचूक इलाज है। चाहे कोई भी बीमारी क्यों न हो, इसे दे दीजिये, बस, आराम ही आराम है। यह जान और माल दोनों को बचाता है। मूल्य की शीशी १।) दर्जन १६॥)

पता—पी० एस० वर्मन, कारखाना नमक सुलेमानी

पो० लहेरि (गया)

चित्रकार।

लेखक–

श्रीयुत कालिकाप्रसाद चतुर्वेदी ।

(१)

सन्ध्या समय परसी थाली पर भोजन करने बैठते हुए देवकीनन्दन ने सजल नेत्र होकर कहा—"प्यारी प्रभा, अब यह घी-चुपड़ी रोटी कब तक और मिलेगी।"

सुन्दरी ने तुरन्त ही बात काटते हुए उत्तर दिया—"आप इसके लिये इतने चिन्तित क्यों हो रहे हैं। उद्योग करना भर अपना काम है आगे भगवान की इच्छा। फिर, अभी तो मेरे आधे से भी अधिक गहने बचे हुए हैं, ऐसी अवस्था में भोजन की चिन्ता ही क्या है।"

देवकीनन्दन इस उत्तर से गद्गद हो गये। आगे और बोलने का साहस नहीं हुआ। चुपचाप भोजन समाप्त करके अपने ड्राइंग-रूम में जा लेटे।

देवकीनन्दन के पिता का नाम रामसहाय था। पटने में उनकी एक बजाजे की दुकान थी। बेचारे साधारण स्थिति के गृहस्थ थे, किन्तु फिर भी मरते समय देवकीनन्दन के भाग में पिता की सम्पत्ति में से ४, ५ हजार नगद मिल गया था। इसके अलावा देवकीनन्दन को उन्होंने बी० ए० तक पढ़ाया भी था. विवाह भी अपने सामने ही कर गये थे।

देवकीनन्दन को नौकरी से घृणा थी, पिता की दुकान में भी उनका चित्त लगा नहीं। अस्तु उसको अपने भाइयों के भाग में छोड़ कर जो कुछ मिला नगद ले कर अलग हो गये थे।

उनको चित्रकारी से प्रारम्भ ही से विशेष प्रेम था। उसी में उन्नत करना उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य था। साथ ही भोजन-समस्या भी वह उसी के द्वारा हल करना चाहते थे नामी २ चित्रकारों के जीवनचरित्र में वह पढ़ चुके थे, कि किस तरह उन्होंने इसी कला के द्वारा अमोघ धन पैदा किया था। बस, देवकीनन्दन भी इसी धुन में मस्त रहने लगे।

पिता की कमाई थोड़े ही दिनों में फोटो और पेन्टिंग के सामान खरीदने में व्यय हो गई। फ्रान्स और जर्मनी से नवीन रंग बहुत दिनों तक आते रहे। भारत के प्रसिद्ध चित्रकारों का अतिथि-सत्कार भी बराबर हुआ ही करता था। शान शौकत भी एक अच्छे चित्रकार के अनुसार बना रक्खी थी, किन्तु आमदनी का सिलसिला नाम को भी न था। भला पिता की पूंजी कब तक काम देती।

(२)

प्रभा जैसी स्त्रियाँ इस संसार में बहुत कम देखने में आती हैं। पति-भक्ति तथा उनको प्रसन्न रखना ही उसके जीवन का परम उद्देश्य था। यह, देवकीनन्दन को उनके उच्छित मार्ग से कभी निरुत्साह नहीं होने देती थी। उनके मार्ग में आने वाली बाधाओं को वह यथाशक्ति हटाने का यत्न करती रहती थी। उसकी एक मात्र यही इच्छा थी कि उसका पति प्रसन्न रहे, तथा वे जिस कार्य्य में लगे हैं, उसमें सफलता प्राप्त करें। काम बुरा है या भला—हानिप्रद है या लाभप्रद—इससे उसे कुछ मतलब नहीं। पति जो काम करें, उसी में सहाय होना, यही उसका एक मात्र कर्तव्य कर्म है।

किन्तु समय का फेर विलक्षण है। देवकीनन्दन का चित्रकारी की धुन में सब पैसा व्यय हो गया, किन्तु उनके चित्रों की कदर कहीं नहीं हुई। कोई सम्पादक अथवा प्रकाशक उनके चित्रों को पैसा देकर खरीदने को तैयार न थे। हाँ, यदि वह उनको मुफ्त ही प्रकाशित करने को भेजते तो वह उनपर अहसान दिखाते हुए झट निकालने को तैयार होते। भला ऐसी अवस्था में ऐसे पुरुष का—जिसके रोटी खाने का सहारा भी यही था—निर्वाह कैसे हो सकता था। किन्तु ऐसी अवस्था में भी प्रभा ने अपने पति को बराबर धैर्य्य दिलाते हुए उन्हें उनके उद्योग में निरन्तर तत्पर रखा। घर-खर्च भी अब उसी के गहनों से चलने लगा था, फिर भी वह यह नहीं देखना चाहती थी कि उसका पति, प्यारे उद्योग को छोड़ कर मजबूरन जीवन-निर्वाह के लिये किसी दूसरे धन्धे में लग कर अपने हृदय को कष्ट दे।

पति के साथ में वह स्वयं भी यह कला सीखती। फो
में तो उसने अच्छी योग्यता भी प्राप्त कर ली थी।

(३)

भारत में सम्पादन-कला भी एक व्यवसाय हो रहा
प्रायः पैसा पैदा करने को लोग झट पत्र निकाल बैठ
तथा थोड़े ही दिनों में ग्राहकों का पैसा हड़प कर पत्र
दिवाला निकाल बैठते हैं। स्वयं योग्यता न रखते हुए
लोग पत्र-सम्पादन करते हैं। उनके प्रसिद्ध पत्र के पन्ने ना
लेखकों के सारहीन, लेखों के भी अनुवादित अथवा उ
लेखों से भरे रहते हैं, किन्तु नवीन लेखकों के योग्यता
लेख भी इन सम्पादकों के घर से एक हास्यपूर्ण
देकर सधन्यवाद अस्वीकृत किये जाते हैं। ठीक
अवस्था चित्रकारों की भी है, फिर भला देवकीनन्दन
पूछ कहाँ से हो।

जो हो, अबकी उन्होंने बहुत कड़ा हृदय कर के प्रभ
बहुत कुछ समझाने बुझाने पर एक बहुत सुन्दर
बड़ी मेहनत से तैयार करके 'विजय' नामक पत्र में
था। सम्पादक महोदय ने उसको सधन्यवाद वापस क
हुए यह चुटकला लिख दिया था—

"महाशय जी, २२ सितम्बर को लंडन में संसार भर
चित्रकारी की नुमाइश होगी। उसमें anxiety (चि
शीर्षक सब से उत्तम चित्र पर वहाँ की Royal Societ
१ लाख रुपये का पुरस्कार देना निश्चित किया है। क्या
आशा करें कि आप भी अपना चित्र उस नुमाइश में भेज
भारत की चित्र-कला का नाम रखने की कृपा करेंगे।

चित्र के वापस आने का देवकीनन्दन को कदापि इतना
न था, क्योंकि इस बात के तो वह आदी से हो गये थे,
। सम्पादक के तीक्ष्ण कटाक्ष ने उनके हृदय को ऐसा
ल कर दिया था, जिसके मारे उनको चैन नहीं पड़तो थी।
ने अपने जीवन पर घृणा, सम्पादक के नीचतापूर्ण कटाक्ष
लिये क्रोध, तथा अपने भविष्य की चिन्ता ने एकदम
लिया; तथा वह उन्हीं विचारों में लिप्त होकर वहीं आराम-
ी पर लेट रहे। अपना भविष्य उनको अंधकारपूर्ण दीखने
। जीवन-निर्वाह की विकट समस्या ने शरीर के सब अंगों
हिला डाला, जिसके कारण वह बिचारे स्वयं ही चिन्ता
मूर्त्ति बन बैठे।

जब उन्हें बहुत देर हो गई, तो प्रभा उनको भोजन के लिये
ने उनके कमरे में गई। उनकी उस विलक्षण मूर्ति
देख कर वह भो स्तंभित सी हो गई। तुरन्त ही उसे कुछ
ा ही ख्याल आया। फोटो का कैमरा तैयार था, प्लेट
भरा था, सो उसने झट देवकीनन्दन का उसी दशा में
ा ले लिया। और मन में कहा कि वह उनसे किसी समय
र दिखला कर कहेगी कि भला तुम ऐसे चिन्तित क्यों
करते हो।

(४)

'विजय' सम्पादक की बात देवकीनन्दन को बुरी तरह
र गई थी, और उन्होंने निश्चय कर लिया था कि सुमादेश
एक चित्र अवश्य भेजेंगे। बस अब वह इसी चित्र के
े भाव अंकित करने को दिन रात घूमने लगे। शहर की
ों और कूचों में अथवा बाहर खेतों और जंगलों में वह

बराबर इसी चिन्ता में घूमा करते कि कोई सब से अधि
चिन्तित मनुष्य उन्हें देखने को मिल जाय, जिसके भाव त
Expression को वह कापी कर लें, किन्तु उनके संतोषप्र
उत्तर कहीं नहीं मिला सका। इधर नुमाइश के दिन निक
आने लगे, इससे उनको और भी चिन्ता हुई।

प्रभा ने एक दिन उनसे उनकी इस भीषण चिन्
का कारण पूछा। उसके बहुत हठ करने पर देवकीनन्द
ने सम्पादक के उत्तर से लेकर कुल कथा साफ२ क
सुनाई। प्रभा ने इसके उत्तर में बड़ी प्रसन्नता से कहा कि अ
इसके लिये विशेष चिन्तित न हों, कल मैं आपको ऐसा
मनुष्य दिखला दूंगी। देवकीनन्दन ने उसकी बात कोई
कर टाल दिया।

* * *

दूसरे ही दिन प्रभा ने देवकीनन्दन के सम्मुख एक फो
रखते हुए कहा—"संसार में इससे भी अच्छी कोई चिन्
की मूर्त्ति हो सकती है। आप इसी की रंगीन कापी नुमा
में भेजिये। ईश्वर ने चाहा तो आपको अवश्य प्रथम पुरस्
मिलेगा। किन्तु उसमें से आधा भाग मैं ले लूंगी।"

चित्र को देख कर देवकीनन्दन स्तब्ध हो गये। यह
उन्हीं का चित्र था। किन्तु सचमुच इससे अच्छी
की मूर्त्ति कहाँ मिल सकती थी। बिल्कुल स्वाभाविक
थे, बड़ो ही अच्छा 'Expression' था।

(५)

देवकीनन्दन का 'anxiety' शीर्षक तैलचित्र लंडन
नुमायश में रक्खा गया, तथा सर्वप्रथम स्वीकृत हु
योरोप के बड़े २ चित्रकार भी उस चित्र की स्वाभावि

ार मुग्ध थे। देवकीनन्दन को सोसाइटी की ओर से
। लाख का निश्चित पुरस्कार मिला, तथा उस चित्र को भी
ाहीं के एक धनी लार्ड ने अपने कमरे को सुसज्जित करने के
लेये ५ हजार रुपये में खरीद लिया।

इसके थोड़े ही दिनों बाद देवकीनन्दन के पास पेरिस
की एक कम्पनी ने इस बात की सूचना भेजी कि वह
उनको २०० रुपये मासिक सिर्फ़ इस बात के लिये देगी, कि
वह अपना प्रत्येक चित्र उसी कम्पनी के यहाँ छपवाया करें,
चित्रों की बिक्री से जो नफ़ा हो उसमें से आधा हिस्सा
उनको अलग मिलेगा। देवकीनन्दन ने इसको सहर्ष स्वीकृत
कर लिया।

इसके १०, १५, दिन बाद ही देवकीनन्दन व प्रभा
प्रसन्न मुख से अपने कमरे में बैठे आमोद प्रमोद में लिप्त
थे कि प्रभा ने मुस्कुरा कर कहा—"विजय-सम्पादक को तो
धन्यवाद की एक चिट्ठी लिख भेजो। उन्हीं की कृपा का तो
यह फल है।" देवकीनन्दन ने हँस कर उत्तर दिया—"बात
ठीक है। किन्तु उससे भी अधिक धन्यवाद तो मैं पहिले
तुम्हें दूँगा।"

ठीक इसी समय नौकर ने आकर डाक दी। देवकी-
नन्दन ने देखा कि 'विजय' सम्पादक का एक पत्र तथा 'विजय'
का नवीन अंक भी है। पत्र में सम्पादक महोदय ने क्षमाप्रार्थना
की है तथा उनके पत्र में सबसे पहिला चित्र देवकीनन्दन
का स्वयं ही है। अथवा यह कहिये कि विलायत में पुरस्कार-
प्राप्त वह 'चिन्ता' की मूर्त्ति थी।

इति।

किरण ।

लेखक—

श्रीयुत पारसनाथ त्रिपाठी ।

[गत अंक से आगे]

(५)

साँझ के समय शशि ने आकर कहा-"किरण, हमने सब प्रबन्ध कर लिया है, सब कुछ सुविधा हो गई है। नौकर चाकर का भी अच्छा प्रबन्ध है। वहाँ पर हमारे एक मित्र रहते हैं, उन्होंने, हमारे लिये अपना घर देने को कहा है। उस मकान का भाड़ा भी नहीं देना पड़ेगा। वहाँ रहने पर खाने पीने में जो खर्च होगा, उसके लिये, घड़ी, घड़ी का चैन, और हीरे की अँगूठी, आदि जो चीज़ें तुम्हारे घर से हमें विवाह के समय मिली हैं उन सब चीज़ों को वेचने का हमने विचार किया है। उन सब के वेचने से ५००) रु० मिल जायंगें। जिससे, दो तीन महीने अच्छी तरह से कट जायंगे। सब ठीक २ कर, कल या परसों ही वहाँ जाने का हमने प्रबन्ध कर लिया है। तुम्हारी इस विषय में क्या राय है ?"

आज किरण बड़े परिश्रम से अपने मन को वश में कर के ...ी है। आज उसने प्रतिज्ञा की है कि चाहे जो कुछ हो, ... आज कदापि अभिमान या क्रोध नहीं करेंगी, सहज ...व से अपने स्वामीको समझावेंगी। और जिसके लिये अभी ...लहों में इतनी आलोचना प्रत्यालोचना हुई है उस काम ...ो रोकने का प्रबन्ध करेंगी। इसी से, उसने पति से कहा-... क्या माँ और बाबूजी से पूछा है? क्या इस विषय में ...न लोगों की भी राय ले ली है?"

शशि ने कहा—"उन लोगों की राय लेने की कोई ...आवश्यकता नहीं। वे लोग इस काम के करने में अपनी ...य हर्गिज़ नहीं देंगे। और जब इस कार्य्य में हम, उन ...ोगों से एक पैसे की सहायता भी नहीं चाहते, तो व्यर्थ में ...न लोगों से पूछपाछ कर क्यों एक टंटा खड़ा किया जाय?"

किरण के मन में इस समय केवल दोपहर की पड़ोसिनों ...ी बात ही याद आरही थी। और साथ ही, किरण ...ी भी इच्छा नहीं थी कि केवल हमारे ही लिये, ये (पति-...ये) बाप-माँ की नज़रों में बुरे जँचें। इसलिये उसने कहा-... देखो, बिना माँ-बाप की राय लिये किसी काम को करना ...ीक नहीं। ऐसा करने से उनलोगों के मन में दुःख होगा, ...और तुम—"

बात काट कर शशि ने कहा—"और वे लोग यदि नास-...मझ हों?"

किरण ने कहा—"इस बात को तुम भूल कर भी अपने मन ...में ख्याल मत देना। माता पिता नासमझ हैं, ऐसी बात को ...मन में भी लाने में पाप होता है। जब उन लोगों की यह राय ... कि पश्चिम जाने पर कुछ विशेष लाभ नहीं होगा—यदि यहाँ

पर हमारी तबीयत अच्छी नहीं होती; तो वहाँ पर भी नहीं अच्छी होगी—तो ऐसा होने पर...”

इस बात को सुन कर शशि का शरीर और हृदय काँप उठा। आँख में आँसू छलक आये, किन्तु अपने को सँभाल कर उन्होंने कहा—“तथापि मनुष्य यथासाध्य उसकी चेष्टा करते ही हैं। चेष्टा करने पर यदि कुछ बुराई भी होती है, तो आदमियों को कुछ संतोष होता है कि हमने उद्योग किया था, अब यदि न हुआ, तो किस्मत ही ऐसी थी।” आँसू की धार रुक न सकी। शशि रो उठे।

किरण ने हँस कर कहा—“तुम बुरी बात ही की भावना क्यों करते हो? शायद वे लोग यही समझते हों कि यहाँ रहने से तबियत अच्छी हो जाय, तो ऐसी दशा में, इतनी तैयारी—ख़र्चा कर पश्चिम जाना, व्यर्थ है। माता पिता की तरह कोई गुरु नहीं है। क्या उन लोगों की बातों पर तुम्हें विश्वास नहीं होता? हमें तो होता है।”

शशि ने समझा किरण पागल हो गई है। क्या बिना पागल हुए ही, वह इतनी छोटी बात को तर्क से इतनी बड़ी समस्या की मीमांसा करना चाहती है? शशि ने कहा—“नहीं किरण, ये सब पागलपने की बात रहने दो। तुम इस काम में- हमें रोको मत। हमारी बात सुनो, हमारे साथ पश्चिम चलो। वहीं तुम्हारी तबियत अच्छी होगी। तुम्हें अच्छा हो जाने पर केवल तुम्हें ही लाभ नहीं है-हमें भी लाभ है, हम भी आदमी हो सकेंगे। नहीं तो—यहीं पर—सोचते २ तुम्हारे साथ ही साथ हम भी सड़ गल जायँगे।”

किरण का मन अधीर हो वेदना से जलने लगा। अपने आप को सँभालकर शशि के मुख की ओर देखकर उन्होंने

कहा—"खड़े क्यों हो? बैठो। हमारे पास बैठो। जरा स्थिर होकर हमारी बात सुनो, आप भी कुछ विचारो।"

शशि ने कहा—"तुम्हारी बातें, हमारी समझ में कभी नहीं आ सकतीं। किरण! हम डाक्टर की बात हर्गिज़ नहीं टाल सकते।"

"किरण—"हम देखती हैं कि तुम डाक्टर को ब्रह्मा समझे बैठे हो। उनकी बात एकबारगी वेद-वाक्य ही हो गई है।"

किरण ने देखा कि इन सब उपायों से स्वामी को समझाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। बिना असल बात खोल कर कहे, कल्याण नहीं। किन्तु भला, वह कैसे उन सब बातों को कह सकती है? माता पिता के विरुद्ध, भला वह कैसे, उनके लड़के से कह सकती है कि आबहवा बदलने के लिये तुम हमें पश्चिम लेकर जाओगे तो वे लोग अधिक तुम पर रंज होंगे। तुमको वे लोग छोड़ देंगे, तुम भी उन लोगों को इस बुढ़ौती में छोड़ कर अपमानित होवोगे।"

तौभी किसी न किसी उपाय से, अवश्य उन लोगों की बातों की कुछ झलक इन्हें देनी ही चाहिये। तुरन्त जरा सा सोचकर उसने कहा—"देखो, इस तरह जाने से, सब गाँव वाले तुम्हारी निन्दा करेंगे। सब यही कहेंगे कि स्त्री के सामने अपने बाप माँ को इसने कुछ भी नहीं समझा। सब तुम्हारी ही शिकायत करेंगे।"

शशि ने कहा—"करेंगे तो करें। लोगों की बातों की इतनी फ़िक्र रखने पर तो मनुष्य अपना काम भली भाँति कभी नहीं कर सकता।"

किरण ने फिर भी उनसे आग्रह किया, परन्तु जब देखा कि किसी प्रकार हमारी दाल नहीं गलती, तब वह (आगे

बोल न सकी। स्वामी के गाल पर अपने गाल को रख रोने लगी।

(६)

दीपक बुझ गया है। घर में केवल अन्धकार है। शशि सोये हुए थे। सहसा किरण ने, उन्हें जगाया—"अजी!"

बड़ी फुर्ती से शशि ने उठकर कहा—"क्या है किरण!"

हाँफते हाँफते किरण ने कहा—"जँगले को खोल दो, हमें बड़ी गर्मी मालूम हो रही है।"

शशि ने उठकर सिरहाने की खिड़की खोल दी। बाहर से उषा की सुनहली किरण की एक रश्मि ने वायु के तरंग से, उस अन्धकार-गृह में प्रवेश किया। किरण ने कहा-"आह!"

मसहरी को हटाकर शशि, किरण के सिरहाने बैठ गये। यह क्या! उसके मुखपर मानो किसी ने रोशनाई गिरा दी हो, पसीने से उसके सब बाल भींग गये हों। सारी देह से मानों जल की धारा बह चली।

शशि ने पूछा—"क्या रात को नींद नहीं आई थी?"

धीमे स्वर से किरण ने कहा—"नहीं, सारी रात तो इधर से उधर उधर से इधर करवट बदलते ही बीती है। कलेजे में न जाने एक कैसी कपकपी सी हो रही है।"

"किरण, तुमने हमें पुकारा क्यों नहीं?" कहकर गमछे से उसकी देह के पसीने को पोंछने लगे। इसके बाद वे दरवाजे की ओर बढ़े।

उन्हें दरवाजा खोलते देख किरण ने पूछा—"कहाँ जाते हो?"

"डाक्टर के यहाँ।"

"अह, रहने दो। डाक्टर के यहाँ जाने को कोई आवश्यकता नहीं। यहाँ—मत—जाओ।"

उसकी बात को अनसुनी सी कर शशि डाक्टर के लिये चले।

उस समय केवल एक दो कौओं की बोली सुन पड़ती थी। झाड़ू वाले, सड़क पर झाड़ू दे रहे थे सड़क के किनारे कुछ दूर पर एक गाड़ी खड़ी थी। शशि दौड़कर, उस गाड़ी को भाड़े पर कर, डाक्टर को लाने चले गये। अपने हृदय से वह भगवान से प्रार्थना करते जाते थे कि—"हे भगवान! अच्छा कर दो, हमारे किरण की तबियत को अच्छा कर दो। हे भगवती।"

* * * *

डाक्टर को लाकर जब शशि घर पहुँचे, तो उस समय घर की दाई केवल झाड़ू से घर को साफ कर रही थी, और किसी की नींद नहीं टूटी थी।

ऊपर उठते ही शशि के शरीर काँप गये। पैर भारी मालूम होने लगा। आगे बढ़ नहीं सकता था।

डाक्टर के यहाँ जाने के समय, वे जिस दशा में किवाड़ को छोड़ गये थे, उसी दशा में था। दरवाजे को भली भाँति खोलकर डाक्टर आगे गये। शशि, ठीक उनके पीछे २ जा रहे थे।

चारपाई के सामने आकर डाक्टर ठमक कर खड़े होगये उनके पीछे से मुँह बढ़ाकर शशि ने देखा, बिछौने में अपना मुँह छिपाकर किरण कुण्डल के आकार की होकर सोई पड़ी है। उसका सिर तकिये से नीचे खसक पड़ा है, दोनों बाँह चारपाई की दोनों ओर लता की तरह, झूल रही है। किसी

अङ्ग का सञ्चालन नहीं, कोई शब्द नहीं। मानों, खिलता हुआ कमल, मनुष्य के हाथ से छू जाने पर सूखकर झर पड़ा हो।

"किरण"—कह, चिल्लाकर, पागल की तरह दौड़कर, किरण के प्राणहीन शरीर से खूब मिलकर शशि, बिछौने पर लोट पड़े *।

इति।

---

* यह आख्यायिका, बंगभाषा के सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'प्रवासी' की एक आख्यायिका से अनूदित है।

काल

लेखक—
श्रीयुत अहिवासी।

(१)

उस दिन जब सब लोग केवल मेरे ही कारण से बकने लगे, तो मैंने सोचा—"मेरा ही यहाँ ऐसा कौन सा काम अटका पड़ा है। एक यह 'पियम्बदा' का ही झगड़ा है सो उसमें रक्खा ही क्या है। चार फर्मे की पत्रिका है, महीने में एक दिन बैठ जाऊँगा, तो सब को लिख डालूँगा। अब नहीं जाता तो इसके मानी यही होंगे, कि अपने सब मित्रों को असन्तुष्ट कर रहा हूँ। फिर गर्मी का समय है, पहाड़ी प्रदेशों का भी तो आनन्द लूटना चाहिये। ऐसे स्थान के लिये १०—५ मित्रों का मिल जाना यह भी तो एक सौभाग्य की ही बात है। वैसे कौन किसके साथ जाता है। छुट्टी बीत जाने पर गोविन्द देहली चला जायगा, अमरनाथ सहारनपुर, योगेश बाबू कचहरी खुलते ही वकालत के झंझट में लग जायँगे। सब तीन के तेरह हो जायँगे, फिर कौन, कहाँ जाता है। फिर अगले छुट्टी ही किसने देखी है। इन संसारी झंझटों से तो

कभी छुटकारा ही नहीं। जब तक जीना, तबतक सोना यह तो लगा ही रहता है।"

यह सब सोच समझ कर मैंने भी चलने की हाँ सम्मति दे दी। अब क्या था, वे सब लोग तो चलने को मूंछ पैनाये तैयार ही बैठे थे। मेरी ही देर थी। सो भी ठीक हो गया। बस, कलही चलने का निश्चय हुआ।

चलने का निश्चय तो हो गया, अब एकही बात करने की रही कि चला कैसे जाय। सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि यहाँ से हरिद्वार तक रेल में चला जाय और हरिद्वार से धीरे २ मन्सूरी तक पैदल चलेंगे। योगेश बाबू ज़रा कमज़ोर मनुष्य थे, पहिले तो उन्होंने पैदल चलने की बात पर आनाकानी की। किन्तु जब देखा कि सब लोग इसके पक्ष में हैं तो उन्होंने भी पैदल ही चलना स्वीकार किया।

दूसरे दिन सब लोगों ने अपना थोड़ा थोड़ा सामान ले चलने की ठानी। गोविन्द, चलने में और बातें बनाने में खूब तेज़ था, परन्तु नौकर से ही काम कराने का आदी था। उसने कहा—"चार आदमियों के बीच में एक नौकर अवश्य होना चाहिये।" मैंने यों ही दिल्लगी में नौकर ले चलने को खंडन किया। योगेश बाबू भी उस समय शान में आगये। उन्होंने भी मेरी बात का समर्थन किया। नौकर ले चलने का प्रस्ताव रद्द हो गया। सब लोग मोटर पर चढ़ कर मुरादाबाद आये, और वहाँ से हरिद्वार के लिये चल दिये।

(२)

दो दिन तक तो हम लोग हरिद्वार में घूमते घामते रहे। कांगड़ी गुरुकुल भी गये, ऋषिकुल भी देखा, हरि

पर स्नान भी किया। तीसरे दिन सब लोगों ने अपना
। सामान बाँधकर हृषीकेश को प्रस्थान किया।
उहरे में बड़ा आनन्द आया, जिस समय सब लोग
ी २ गठरी ले कर चलने लगे उस समय की शोभा देखने
थी। एक छोटा-मोटा सम्पादक उसका वर्णन कर ही
सकता है। हाँ, उस समय यदि कोई चित्रकार वहाँ
। तो चित्र बहुत उत्तम खींच सकता था।

जिस समय कि पढ़े लिखे, सुफेद कपड़े वाले आदमी
ी २ गठरियों को बगल में दबाये पैदल चल रहे थे
समय का दृश्य देखनेही योग्य था। लोग हमें देखकर हँस
थे। यह हम लोगों में तय हो चुका था कि न तो कोई
े पर चढ़ सकेगा, न कोई किसी की गठरी लेने में दूसरे
मदद ही करेगा। वैसे तो ये सब बातें मज़ाक में हुई
परन्तु आखिर व्योहार में आ गईं।

मैं तो घर से केवल एक चद्दरा, एक कम्मल, दो तीन
के और एक लोटा लेकर चला था। प्रायः सबके ही
इतनाही सामान था। परन्तु योगेश्वर बाबू के पास
विशेष था, वे साथ में एक कूकर भी लेते आये थे।
बचारे बहुत परेशान थे। सबसे अधिक कमज़ोर, और
से अधिक सामान। उनकी चाल देखने योग्य थी। एक
बंगाली' वैसेही दुबले होते हैं, तिसपर योगेश बाबू
ल थे। कभी भी इतनी दूर पैदल चलने का सौभाग्य
या दुर्भाग्य प्राप्त न हुआ होगा। दुबला पतला आदमी,
ी हुई कमर, सिर पर गठरी, हाथ में कूकर, ऐसे चलते थे
े किसी भारी बोझ से लदी हुई बैलगाड़ी।

गोविन्द कभी २ योगेश बाबू की चुटकी ले देता था,

इससे योगेश बाबू चिढ़कर कुछ का कुछ कहने लगते थे। गोविन्द बड़ाही मसखरा था, जब योगेश बाबू जोश में आकर कुछ कहने, तो गोविन्द कह देता बाबू साहब रोते क्यों हैं। इससे बिचारे और आग बबूला हो जाते।

धीरे २ चलकर हृषीकेश के स्टेशन पर पहुँचे। सब लोगों ने यहीं रात्रि काटने का प्रस्ताव किया। अब खाने की बात रही, अन्त में यही निश्चय हुआ कि खाना बनना चाहिये। मैं ज़रा बाजार के खाने से परहेज़ करता था, दूसरे वहां जंगल में पूड़ियों का भी मिलना कठिन था, इसलिये मैंने रोटी करने पर ही ज़ोर दिया। कहावत है, जो कहे वही पानी भरने जाय। रोटी का भार मेरे ही ऊपर पड़ा। मैंने कहा—"भाई सब को योग देना चाहिये।" गोविन्द ने झट कह दिया—"भाई हमतो कायस्थ ठहरे, भला हम कैसे चौके में जा सकते हैं आप ब्राह्मण हैं आपका ही यह काम है।" मैं उसकी चालाकी समझ गया और रोटी बनाने लगा।

स्टेशन के पास एक दूकान है, उससे सामान लिया। धर्मशाला से बर्तन माँग कर मैंने रोटी चढ़ा दी। जब दाल गई और मैं दो चार रोटी बना चुका, तो गोविन्द धीरे मेरे पास आ बैठा। और इधर उधर की बातें बनाकर वह अपनी असली बात पर आगया, और कहने लगा "पंडित जी! एक एक आदमी ताजी ताजी रोटी खाता तो क्या हानि है।"

मैं उसका अभिप्राय समझ गया। मैंने कहा—"कायस्थ की खोपड़ी बड़ी चालाक होती है। पर यहाँ तुम्हारी दाल न गलेगी। जब सब रोटी बन जायगी तभी खाना मिलेगा।" गोविन्द अपनी दाल गलते न देख वहाँ से नौ दो ग्यारह होगया।

जब रोटी बनकर तैयार होगई तो हमने पत्तों की पत्त

...चनाकर उन पर रोटियाँ रक्खीं और कूकर की कटोरियों में ...दाल परस कर, खाने लगे। इन लोगों में से इतनी मोटी रोटी ...और बिना साक के शायद ही किसी ने कभी खाई हो। परन्तु ...उस दिन उन मोटी रोटियों को दाल से खाने में जैसा आनन्द ...आया वैसा हमें अपनी उम्र भर में कभी भी नहीं आया था। ...योगेश बाबू को घर पर सदा ही कब्ज़ की शिकायत रहती ...थी। किन्तु आज मालूम नहीं उनकी कब्ज़ कहाँ कूच कर गई। ...वे रोटी पर रोटी माँगने लगे।

... खाने से निश्चिन्त होकर सब लोग उठ गये। अब बर्तन ...माँजने का भार गोविन्द पर पड़ा। एक तो नौकर का आदी, ...दूसरे थका हुआ, उसके प्राण निकल गये। पर कुछ कह भी ...नहीं सकता था, क्योंकि उसने कुछ भी काम नहीं किया था, ...दूसरे वह हम सब में छोटा भी था, इसलिये वह बर्तन मलने ...लगा। सब बर्तन तो उसने माँज लिये किन्तु दाल की बटलोई ...से नहीं मजती थी, अब लगा अपना रोना रोने— ...भाड़ में गई ऐसी रोटी, हमें यह मालूम होता कि बर्तन ...मलने पड़ेंगे तो हम तो चनेही चबाकर रह जाते। हमने पहिले ...कहा था कि नौकर ले चलो।" अबकी योगेश बाबू की बन ...ली। वह बोले—"गोविन्द बाबू, रोते क्यों हो।"

... गोविन्द को गुस्सा आगया। वह बोला सब लोग तो ...खाकर लेट रहे हैं। हमें ये बर्तन देदिये। मुझसे यह ...लो न मजेगी। यह कह कर वह उठ पड़ा। मैंने बात ...देख कहा—"रहने भी दो गोविन्द जी, देखली तुम्हारी ...ताकत। लाओ मैं माँज दूं।" यह कह कर मैंने पतीली ...माँज दी।

... बर्तन इत्यादि मलने में १० बज चुके थे। कार्य से निवृत्त,

होतेही धर्मशाला की छत पर कम्बल बिछाकर पड़ रहे। रास्ते के थके हुए तो थेही, पड़ते ही नींद आगई।

(२)

प्रातःकाल उठे, योगेश बाबू हिम्मत हार बैठे। उन्होंने कहा—"भाई, तुम लोग पैदल जाओ चाहे जैसे जाओ। मैं तो रेल में बैठकर जाऊँगा।"

उनकी यह बात सुनकर अमरनाथ ने कहा—"हाँ भाई पैदल चलने का तो झंझट ही है। चलो देहरादून तक रेल में ही चलें, आगे देहरादून से मंसूरी चलने में देखा जायगा।"

मुझे प्राकृतिक शोभा बहुत प्यारी लगती थी। वनों में, जंगलों में, पर्वतों और चट्टानों में जहाँ कहीं मैं देखता हरे२ वृक्ष ही देखता। चारों ओर नीला २ आकाश दृष्टिगोचर होता उस समय मेरा मन किलोलें करने लगता। मैं स्वर्गीय सुख का अनुभव करता। इसी लिये मैंने पैदल चलने का प्रस्ताव किया था, किन्तु चौबीसों घंटा गन्दी वायु के सेवन करनेवाले, सवारी के मौताज निर्जीव बाबू लोग इस सुख का अनुभव कैसे उठाते। उनके भाग्य में ही ये सब बातें नहीं हैं। यही सोचकर मैंने दृढ़तापूर्वक कहा—"जिसे रेल में जाना हो, वह जाय। बन्दा तो मन्सूरी तक पैदल ही जायगा।"

अमरनाथ और योगेश बाबू अपने निश्चय से तिलभर भी विचलित न हुए, गोविन्द मेरे साथ चलने को तैयार हुआ। हम दोनों योगेशबाबू और अमरनाथ को वहीं छोड़कर पैदल चल दिये। हाँ, गोविन्द ने योगेशबाबू से यह कह कर 'तुम तो शाम को देहरादून पहुँचही जाओगे। और वहाँ कर तो परमेश्वरीप्रसाद बाबू के यहाँ ठहरोगेही, अब को कूकर की क्या आवश्यकता है' उनसे कूकर ले लिया

हम दो आदमी थे, साथमें इकमिक कूकर भी था। जहाँ रात्रि होजाती वहीं टिक रहते। कूकर में दो आदमियों का खाना भली भाँति बन जाता था, इसलिये हम कूकर में खाना बना लेते थे। इस यात्रा में हमें बड़ा ही आनन्द आया। जंगलों के सुन्दर सुन्दर दृश्य देखते हुए, परस्पर में वार्तालाप करते हुए दोनों चले जाते थे। रास्ते की थकावट बिलकुल मालूम नहीं पड़ती थी। रास्ते में सैकड़ों कृषक अपने धानों के खेतों को बो रहे थे। उनकी स्त्रियाँ उन्हें रोटी खिलाने आती थीं, पास ही में छोटी २ उम्र के बच्चे खड़े प्रतीत होते थे। वहाँ के बदन शहरके बच्चों से हृष्ट पुष्ट थे,उनका ढांचा मजबूत था। किन्तु यथेष्ट खाना न मिलने के कारण उनका मुख कुम्हलारहा था।

कहीं कहीं रास्ते में हमें बगीचा भी मिले। बहुत से बाग केवल केला ही केला के मिले। और बड़ी २ मोटी केला की फली होती थी। मैंने तो कभी केला के इतने बड़े २ बाग और इतनी मोटी फली नहीं देखी थी। माली लोग हमें कोई मुजीवही जीव जान कर हमारा सत्कार करते, फल खिलाते। हम उनका आतिथ्य ग्रहण करते।

इसी प्रकार हम रास्ते का दृश्य देखते हुए और मार्ग के लोगों का आतिथ्य ग्रहण करते हुए आनन्द से चलने लगे।

अब हम पहाड़ों के बीचों बीच पहुँच चुके थे। इधर उधर ऊँचे २ पहाड़ और बीच में हम धीरे २ जा रहे थे। ऊपर के जानवर मनुष्य, मक्खी-मच्छड़ों की भाँति हमें दीखते थे। मंसूरी हमें दीखने लगी। हमें हर्ष हुआ कि चलो बहुत जल्दी आगये। लेकिन जब हमने एक आदमी से पूछा कि मंसूरी यहाँसे

कितनी दूर है ? तो उसने उत्तर दिया १२ कोस। हम आश्चर्य में रह गये। देखने से एक कोस भी मालूम नहीं पड़ती थी।

आज हम एक छोटी सी पहाड़ी के पास पहुँच गये। वहाँ से एक छोटा सा झरना बह रहा था। पासही हरसिंगार (परिजात) के बहुत से कुदरती पेड़ लगे हुए थे। एक पहाड़ ने मुड़कर पथिकों के लिये एक छोटा सा घर भी बना दिया था। हरसिंगार के मनों फूल टूटे पड़े थे। मैं वहाँ की शोभा देखकर मुग्ध हो गया। मेरे मुहँ से सहसा निकल पड़ा—"वे दोनों अभागे थे।" गोविन्द ने भी मेरी बात का समर्थन किया। मैं बैठ कर हरसिंगार के फूल चुनने लगा। मैंने बहुत से फूल चुन लिये किन्तु मैं उनका करता क्या ? वहाँ वे इतनी अधिकता से थे कि यदि कोई चाहे तो मनों इकट्ठे कर सकता था।

यद्यपि अभी थोड़ा २ दिन था, परन्तु यहाँ का ऐसा रमणीक दृष्य देखकर मेरा मन मुग्ध हो गया और आज रात यहीं रहने का निश्चय किया। हमसे थोड़ी ही दूर पर एक सुन्दर झरना बह रहा था। हम दोनों उसी में से पानी लेकर शौच गये। फिर स्नान करने की ठहरी। सुन्दर और स्वच्छ जल एक ऊँचे पर्वत से गिर रहा था। जिस स्थान में वह गिरता था वहाँ दूध के सदृश शुभ्र झाग उठ रहे थे। वे झाग इतने सुन्दर थे कि मैं अपने को भूल गया। मैंने सोचा, इन्हें बाँधकर घर ले चलना चाहिये। किन्तु यह मेरी इच्छा आकाश के पुष्प तोड़ने के समान थी। हम दोनों घंटों उस जल में खेलते रहे। जब देखा कि भगवान मरीचिमाली अब अस्त हुआ ही चाहते हैं तो हम दोनों निकले और उसी

र्वत के निकट आये। गोविन्द ने कुकर में दाल भात चढ़ा दिया। और ऊपर चाय होने को रख दी।

उस समय मेरी विचित्रही दशा थी, मैं वहाँ की प्राकृतिक शोभा देखकर पागल सा होगया था। चित्त चाहता था कि सदा यहीं रहा जाय। थोड़ी देर तो मैं गोविन्द के पास बैठा रहा, किन्तु यकायक मेरे मनमें आया कि गोविन्द तो खाने को बनाही रहा है तबतक मैं चल के इस पार्वतीय दृश्य का अवलोकन ही करूँ। यह सोच कर मैंने गोविन्द से कहा— "गोविन्द ! भाई, तुम कहो तो मैं तब तक थोड़ी दूर घूमही आऊँ।"

" गोविन्द ने कहा—" हाँ जाओ, किन्तु शीघ्रही लौटकर आना। चाय में अब कुछ देरी नहीं है और भोजन भी शीघ्रही तैयार होजायगा।"

"हाँ, मैं अभी लौट कर आता हूँ" यह कह मैं चल दिया।

(४)

झरने के किनारे २ स्वच्छ वायु का सेवन करता तथा पक्षियों का कल कल नाद सुनता हुआ मैं जाही रहा था कि मुझे बहुत से वृक्षों का एक समूह सा देख पड़ा। मैं उसी ओर चला। क्या देखता हूँ कि एक हींस के पेड़ में से धीरे २ धुआँ निकल रहा है। वह वृक्ष इतना घना था कि उसमें बरसात में पानी भी नहीं पहुँचता होगा। उसकी शाखायें ज़मीन से सटी हुई थीं। मुझे ऐसे निर्जन वन में धुआँ देखकर कौतूहल हुआ। "यह क्या बात है" इसका निर्णय करने के लिये मैं उस वृक्ष के भीतर जाना चाहता था, किन्तु चारों ओर घूमा, रास्ता न मिला। मैं बड़े फेर में पड़ा।

थोड़ी देर खड़ा सोचता रहा, फिर मुझे एक अच्छी युक्ति सूझी। मैंने पास ही की एक मोटी डाली को ज़ोर से उठाया, वह उठ गई, और मैं भीतर चला गया।

थोड़ी देर तक तो मुझे कुछ भी न दीखा, किन्तु थोड़ी ही देर में मुझे एक पुरुष बैठा दीखने लगा। वह लम्बाई में साधारण आदमी से ड्योढ़ा होगा। उसके दाढ़ी के बाल पृथ्वी तक लटके हुए थे और केश के बाल सम्पूर्ण शरीर के वस्त्र का काम दे रहे थे। मैं अब समझा, यह कोई महात्मा हैं, मैंने उन्हें प्रणाम किया और वहीं बैठ गया।

कुछ क्षण के पश्चात् महात्मा की समाधि भंग हुई। उन्होंने मुझे अपने लाल लाल नेत्रों से बारबार निहार कर कहा—"बच्चा, तुम यहाँ कहाँ ?"

मैंने बड़ी नम्रता से कहा कहा—"भगवन्, वैसेही दर्शनार्थ चला आया हूँ, मेरे अहो! भाग्य थे जो दर्शन होगये।"

महात्मा ने गम्भीरतापूर्वक कहा—"हरिहर नाथ! मैं सब जानता हूँ, तुम मंसूरी की सैर करने जा रहे हो।"

यकायक एक अपरिचित महात्मा के मुख से अपना नाम सुनकर आश्चर्य का ठिकाना न रहा। ये कैसे जानते हैं। ओह समझा, ये सच्चे साधु हैं। साक्षात् ईश्वर हैं। इनसे क्या छिपा रह सकता है ये भूत भविष्यत् और वर्तमान के ज्ञाता हैं। मैं कुछ भी न कह सका। थोड़ी देर ठहरकर मैंने पूछा—"भगवन् आप कितने दिनों से यहाँ वास करते हैं ?

महात्मा जी ने कुछ रुखी हँसी हँस कर कहा—"समय क्या ?"

मैंने कहा—"भगवन् समय यही साल, महीने, दिन, घंटा।"

उन्होंने कहा—"यह तो सब तुम लोगों की कल्पना है। समय कभा बीतता भी है, यह तो सदा एक रूप बना रहता है। तुम जिसे साल कहते हो ब्रह्मा का वह एक पल भी नहीं है। जिसका तुमने क्षण नाम रक्खा है बहुत से जीव ऐसे हैं कि उतनी देर में उनके सैकड़ों वर्ष बीत जाते हैं। समय कोई वस्तु थोड़ाही है।"

मैं सम्पादक था, किन्तु यहाँ पर मैं अपनी सब सम्पादकी भूल गया। सोचने लगा, महात्मा सच तो कह रहे हैं अपने देखते ही देखते हजारों जीव उत्पन्न होते हैं और मर जाते हैं। सुनते हैं जब कलियुग, द्वापर, त्रेता, सतयुग, ऐसी सैकड़ों चौकड़ियाँ बीत जाती हैं तब ब्रह्मा का एक दिन होता है।' मैं इन्हीं विचारों में पड़ा था कि फिर महात्मा जी ने कहा—"तुम वैसे न समझोगे, लो इस फल को खाओ।"

यह कह कर उन्होंने, मुझे एक छोटा सा लाल फल दिया। मैंने उसे खाया। अहा! उसमें जो स्वाद था उसका वर्णन करना मेरी बुद्धि के बाहर है। फल खाने के पश्चात् उन्होंने कहा—"आँख मूँद लो।" मैंने वैसा ही किया। अब मैं एक नवीन संसार में आगया। मैं एक हिरण का छोटा बच्चा बन गया, मुझे अपने मनुष्य-जन्म की स्मृति थी। मैं मृग का बच्चा होकर अपनी माँ के साथ घूमने लगा; फिर मैं जवान हुआ, ४ संतानें हुईं, मैं अपने लड़कों से प्यार करने लगा था, मेरे लड़कों के भी लड़के होगये और फिर उनके भी लड़के। एक दिन मैं जा रहा था, वृद्धावस्था थी ही, एक शिकारी ने बंदूक मारी, मैं मर गया। आँख खुली तो देखता क्या हूँ कि महात्मा जी के पास बैठा हूँ। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही।

इतने ही में बाहर से गोविन्द की आवाज़ सुन पड़ी। वह नाराज़ होकर मुझे ज़ोर २ से पुकार रहा था—"मुझे ऐसी बात अच्छी नहीं लगती है। कहाँ चले गये ? चाय ठंडी होरही है।" मैं बड़े फेर में पड़ा कि मामला क्या है। अभी गोविन्द चाय ही बना रहा है और मेरे बेटा, नाती, पोते सब होगये।"

महात्मा ने मुझे आश्चर्य में देखकर कहा—"जाओ, तुम्हारे साथी तुम्हें खाने को बुलाते हैं।"

मैंने कहा—"भगवन् आपके पास से जाने की मेरी इच्छा नहीं होती।"

महात्मा—"जाओ भी, तुम्हारे साथी बुला रहे हैं।"

मैंने कहा—"अच्छा भगवन् मैं फिर दर्शन करूंगा। मेरी एक और उत्कट इच्छा है, वह यह कि हमने भोजन बनाया है यदि आप आज्ञा करें तो थोड़ा आपको भी लेते आवें।"

महात्मा—"अच्छा जाओ लेते आना।"

मैं वहाँ से निकल कर चल दिया। क्या देखता हूँ कि शिकारी मेरे हरिन के शरीर को लिये जा रहा है। मेरे झुंड के लोग शोक में खड़े रो रहे हैं। मैं उन सब को पहिचानता था। यह देख मुझे और भी अधिक आश्चर्य हुआ।

गोविन्द ने मुझे बहुत बुरा भला कहा, परन्तु मैंने एक भी न सुनी। मैं जल्दी से कुछ दाल भात लेकर महात्मा जी के पास पहुँचा। वहाँ जो मैंने देखा उसे देख कर तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा। न तो वहाँ महात्मा जी हैं न उनकी धूनी ही। मैंने चारो ओर देखा, परन्तु कहीं भी पता न चला। अन्त में हताश होकर लौट आया।

* * * *

ये सब बातें मैंने गोविन्द से कहीं। गोविन्द ने मेरी बातों की उपेक्षा की। मैंने शपथ तक खाई। परन्तु उसे कब विश्वास होने लगा। उसने कहा—"कहीं सो गये होगे, वहीं स्वप्न देखा है।" परन्तु मैं कैसे विश्वास करूँ कि स्वप्न है।

दूसरे दिन प्रातःकाल, हमने मंसूरी को प्रस्थान किया। उसी दिन मंसूरी पहुँचे। वे दोनों हमसे बहुत पहिले पहुँच चुके थे। हम २५—२६ दिन मंसूरी रहे, परन्तु मैं उन महात्मा जी की बात को न भूला।

आज इस बात को १० वर्ष होने हैं, मुझे वह बात कल की सी मालूम पड़ती है। मैं उम्र भर इसे न भूलूंगा। लोग जब कहते हैं इस बात को १० वर्ष बीत गये। यह लड़का २० वर्ष का होगया, तो मुझे उन महात्मा की बात याद आ जाती है, और भर्तृहरि का यह पद स्मरण हो उठता है "कालो न यातः वयमेव याताः" अर्थात् काल नहीं बीता—वह क्या बीतता वह तो नित्य वस्तु है—परन्तु हम बीत चुके।

इति।

हा दुर्दैव !

लेखक—

श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा ।

(१)

उसका ध्यान उस सुन्दर मूर्ति की तरफ़ न था। वह किसी और को देख रही थी। पर जिसको वह देख रही थी वह तो ध्यान में मग्न था। उसके बड़े २ नेत्र सामने की सुन्दर चतुर्भुजी विष्णु-मूर्ति की सुन्दरता का पान कर रहे थे। उसके विशाल बाहु आपस में जुटे हुए उस देव का अभिवादन कर रहे थे। बड़े प्रेम से सुरीली राग में वह स्तुति कर रहा थाः—

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं,
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णम् शुभाङ्गम्.
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगभिर्ध्यानि गम्यं,
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैक नाथम् ॥

स्तुति समाप्त कर वह लौट गया। बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति से उसने उस सुन्दर मूर्ति के चरण कमलों पर अपना मस्तक

रख दिया। चरणों पर नाक रगड़ कर वह उठा। झुक कर पुनः अभिवादन किया। चरणों पर हाथ रख कर अपने पापों के लिये क्षमा माँगी। जेब से कुछ द्रव्य निकाल कर भगवान के चरणों पर रक्खा। फिर चला गया। साथ ही साथ कुछ लेता भी गया, वह और कुछ नहीं था, केवल एक शिक्षित सुन्दरी भोली बाला का युवा हृदय था। उस निष्ठुर को क्या मालूम कि उसकी सहज सुन्दरता ने, श्रद्धा के स्रोत ने, ब्रह्मचर्य के तेज ने तथा गम्भीरता मिश्रित सुखद हाव भाव ने किसी नवोढ़ा का हृदय आकर्षित कर लिया है। वह भोली थी। सीधी थी। अज्ञात थी। प्रेम का मूल्य, उससे उत्पन्न होने वाले सुख दुःख से अनभिज्ञ थी। अपनी शिक्षिता माता से उसने अच्छी शिक्षा पाई थी। वह लेखिका थी, पत्र पत्रिकाओं में उसकी कोमल उँगलियों द्वारा लिखित सुन्दर भावमय

पर्याप्त था। अधिक धन पूजा-पाठ में व्यय होता था। प्रतिदिन संध्या समय ये विष्णु भगवान का दर्शन करने के लिये आते। पर्दा-प्रथा रूपी ज़हर ने इनके कुल में स्थान न पाया था। जो पर्दा-प्रथा को इस वास्ते भला कहते हैं कि उसमें रहने से 'स्त्री' की कुलटा जात भ्रष्ट होने से बची रहती है वे आकर इस सुन्दरी, लावण्यपूरित बाला के घर जाकर देखें। चन्द्रमा के ज्योत्स्ना समान श्वेत इनके गृहवालों का चरित्र था। स्वयं सुलोचना का चरित्र-बल इतना उच्च था कि दुराचारियों की आँखें उसके सामने न उठ सकती थीं। वह कुमारी थी। पर उस निष्ठुर विष्णु के दूसरे भक्त ने, अपनी

सुन्दरता, श्रद्धा तथा गम्भीरता द्वारा उसके युवक हृदय को मोह लिया।

बाला—नहीं उस समय वह १४ वर्ष की थी—सुलोचना पूर्ण यौवना तो नहीं पर हो रही थी। जीवन के नये स्तंभ में वह पदार्पण कर चुकी थी। बाल्य-सुलभ चंचलता का विनाश हो रहा था। सांप किचुला बदल रहा था—पर सर्प में दुष्ट बुद्धि होती है, वह परम सुशीला थी। सुन्दरता-बालकपन की सुन्दरता बदला कर अब नये तपाये सोने की भांति सुन्दरता ग्रहण कर रही थी। सुन्दरता के उपासक उसके समान उपासना योग्य और कोई देवी न पाते। वह सुन्दरता की अवतार थी-रूप थी-प्रतिबिम्ब थी-प्रतिमा थी-प्रतिभा थी। उसके मधुर मुसकानमें सारा संसार आकर्षित हो सकता था। पर अधिक लिखना व्यर्थ है। वह सब कुछ थी सुन्दरताने उसे अपने हाथों रचा था। अस्तु, युवावस्था का हृदय चञ्चल होता है। प्यासा होता है। वह इस प्यास का अनुभव करती थी। पर व्यक्त न कर सकती थी। उसको व्यक्त करनेके लिये उसके पास शब्द न थे। जिस दिन उसने उस युवा श्रद्धालू को देखा, न जाने क्यों उसका मन उसके प्रति खिचता दीख पड़ा। लाख चेष्टा करने पर भी वह उसके प्रति नेत्र किये हीं रही। हटा न सकी। जब वह चला गया तो उसने अनुभव किया कि उसकी वह अव्यक्त प्यास अधिक बढ़ गयी है।

(२)

दूसरे दिन सुलोचना ने माता से आग्रह पूर्वक विष्णु भगवान के दर्शन के लिये चलने का अनुरोध किया। माता ने स्वीकार कर लिया। वह फूल उठी। सुलोचना बड़े उत्साह

जाने को उद्यत हुई। क्या भक्ति वश ? ना। उसे प्यास गी थी, उसे बुझाने के लिये। पर परिणाम क्या होता ? ह और बढ़ जाती। हुआ भी यही। उसने पुनः उस युवक ो उसी प्रकार श्रद्धावनत पाया। पुनः उसकी आँखें टिक यीं। पर वह युवक क्या जाने कि वह किसी का कुछ चुरा हा है। वह बिचारा तो भक्ति में मग्न था।

तीन चार दिन योंहीं लगातार वह आकर उस युवक का पूजन सतृष्ण नेत्रों से देखा करती। जब वह प्रति दिन मन्दिर में चलने को माता से अनुरोध करती माता उसे स्वीकार कर लेती। उसका अनुरोध वह अपने पति से कहती। वे हँस देते। युवक समय पर मन्दिर में आता था—समय पर सुलोचना की आँखें भी उसे ढूंढती पहुँच जातीं।

आज पाँचवा दिन है। आज सृष्टि का अकट नियम पालन हुआ। हृदय ने बेतार के तार द्वारा श्रद्धावनत उस युवक को संदेश दिया कि कोई तुम्हें देख रहा है। उसकी आँख ऊपर उठीं। उसने देखा (क्या देखा !) अनिर्वचनीय सौन्दर्य-युक्त एक दिव्य प्रतिमा उसकी ओर देख रही है। देखने वाले तथा देखने वाली दोनों ने चाहा कि आँख नीची करें पर वे अटल रहे। अपना २ सन्देशा एक दूसरे को सुना कर मारे लज्जा के गिर पड़े।—पाश में बँध गये, प्रेम-नाट्य का सूत्र-पात—दूसरा अङ्क प्रारम्भ—तथा प्रथमाङ्क समाप्त हुआ।

(२)

मन्दिर में प्रतिदिन जाना होता है। प्रति दिन नेत्र मिलते हैं। सङ्कोच वश बोलते नहीं। नेत्र सब कुछ कह देते हैं।

सुलोचना के पिता माता सब जानते हैं पर जान बूझ कर अनजान बने हुए हैं।

(४)

प्रातःकाल का समय है। पिता जी ने अपने कमरे में से पुकार कर कहा—'वेटी! पान ले आ।' माता ने कहा—'बैठक में कोई आया है। तुम्हारे पिता ने पान माँगा है। ले जाओ।' उसने एक तश्तरी में सजाकर पान रखा। पान लेकर चली। पर कमरे की ड्योढ़ी पर पहुँचते ही वह हड़बड़ा पड़ी। उसका ज्ञान लुप्त हो गया। वह घवड़ा उठी, उसने जो कुछ देखा आश्चर्य में डूब गयी। घवड़ाहट में उसके हाथ से तश्तरी छूट पड़ी। पान गिर पड़ा। पिता ने,आगन्तुक दो सज्जनों ने, जिनमें से एक ४५ वर्ष के लगभग का था तथा दूसरा वही मन्दि का नवयुवक था। वही आराशध्य देव था। उसकी घवड़ाह को देख लिया। इसेही देख कर सुलोचना घवड़ा उठी। पित ने मुसकराते हुए कहा—"वेटी! पान क्यों गिरा दिया। ठीक से चला करो।" पुनः आगन्तुक ४५ वर्ष वाले सज्जन से कहा "आपकी पुत्रवधू यही है। अभी निरी अवोध वालिका है।' सुलोचना यह सुनकर सन्न हो गयी। आश्चर्य में डूब गयी फूल भी उठी। उसे अपनी प्यास कुछ अधिक मालूम पड़ी अपनी कृतिपर उसे लज्जा आई। वह मारे शर्म के घर में भा गयी।

युवक के हृदय पर इस घटना का क्या असर पड़ा? य वही जाने!!! पर उसके लिये यह घटना आश्चर्य, उत्साह प्रसन्नता तथा घवड़ाहट में कम न थी।—दूसरा अङ्क समाप्त हुआ!!!

(५)

१२ बज गये हैं। घोर अँधेरी रात्रि है। बदली छायी हुई है। दुर्भेद्य अन्धकार का साम्राज्य है। इसी समय जब कि सारा संसार नींद में मस्त पड़ा रहता है, एक कुमारी युवती बिस्तरे पर पड़ी धीरे २ कराह रही है। अभी २ उसने एक [illegible]। उसी की भयङ्करता ने उसे इतना [illegible] भय के वह कराहने लगी। पासही में [illegible] माता उसका कराहना सुन कर जाग [illegible] उसने पूछा—"बेटी, क्यों कराह रही है?" [illegible]—जो अभी तक उस स्वप्न को याद कर काँप रही थी—धीरे से कहा—"कुछ नहीं, एक बुरा स्वप्न देखा है।"

इसी समय किसी ने द्वार पर धक्का दिया। कड़ा खटखटा कर सुलोचना के पिता को बुलाने लगा। रात को कौन आया? पिता ने आकर द्वार खोला। देखा कि एक नाऊ खड़ा है। उसने सलाम कर के कहा—"हुजूर! बाबू रामप्रसाद जी के [illegible] लड़के विष्णुप्रसाद जी का आज दस बजे रात को हैजे में देहान्त हो गया। ५ बजे शाम को ही उन्हें हैजा [illegible]। शव-संस्कार में आपको चलने के लिये कहने [illegible] वह चला गया। पर सुलोचना के पिता इस समाचार को सुनते ही "हाय" कह कर बैठ गये। उनसे [illegible] कुछ न बोला गया। वे रोने लगे। माता भी दौड़ आईं। [illegible] भी सुना। वे भी शोक से विह्वल होकर चिल्ला पड़ीं। [illegible] भी नीचे उतर आई। उसने सुना कि वही युवक [illegible] आज प्रातःकाल आया था, वही युवक जिसने इसका [illegible] स्थिर हुआ था, वही युवक जो इसके हृदय का

स्वामी था, निर्दय निष्ठुर काल के पञ्जे में पड़ गया। अब वह इस संसार में नहीं है। कौन जानता था कि अभी प्रातःकाल जो मिहमान बनकर आया है रात्रि में अचानक कालकवल-ग्रसित होगा। सुलोचना कुछ न बोली। वह उठ कर अपने बिस्तरे पर चली गयी। हाथों से मुंह ढांप कर वह बिस्तरे पर पड़ गयी। उसके मुख से केवल इतनाही निकला,—"हा! दुर्दैव!"

इति।

—:***:—

पाठक! आप यह जानने के लिये अवश्य उत्सुक होंगे कि सुलोचना ने पीछे विवाह किया या नहीं, यदि किया तो उसका जीवन सुखमय बीता या नहीं। यदि नहीं किया तो उसके जीवन की नौका किस धार में बही। इसको जानने के लिये 'गल्पमाला' के किसी दूसरे अङ्क की प्रतीक्षा कीजिये। लेखक।

खेलाड़ी श्यामू।

लेखक—

श्रीयुत गोपाल राव देवकर।

(१)

संध्या के पाँच बजे वसंतकुमार कचहरी से वापिस घर आये। श्यामू दौड़ता हुआ आया, वसंतकुमार से लिपटकर फूट२ रोने लगा। वसंतकुमार ने पूछा "श्यामू, क्यों रोता है, क्या माँ ने मारा है?" पर श्यामू का रोना बन्द न हुआ। वह फुसकर कर रोता ही गया—"बाबूदी, माँ ने अमें माला ऐ।"

"क्यों मारा है। जाओ उसे यहाँ बुला लाओ, मैं उसे अभी देखता हूँ।" कह कर वसंतकुमार पलंग पर बैठ गये।

श्यामू झटपट दौड़ता हुआ माँ के पास गया। और मुस्कराता हुआ कुछ बुरा सा मुँह बनाकर बोला—"चलो अभी तुमें बाबूदी ने बुलाया ऐ।"

माँ से कुछ उत्तर न पा श्यामू जोर से बोला—"चलती की कि नहीं।"

माँ ने गुस्से से श्यामू का हाथ पकड़ कर धीरे से कहा—"चुप कहीं का, चल कहाँ लिये चलता है।"

श्यामू ज़ोर से चिल्ला पड़ा—"देखो वावूदी, जे अॅं मालती ऐं। आउती एँ नईं।"

वसंतकुमार ने गुस्से में कहाँ—"क्यों, क्या मामला है इधर आओ।"

श्यामू ने कोठरी में रक्खा हुआ बेत लाकर पिता को दिया। यह देखकर माँ को हँसी आगई। पिता की तरफ देख श्यामू ने कहा—"देखोर वावूदी ओ कुकीर अँसती ऐं।"

वसंतकुमार ने पूछा—"क्यों इसको आज क्यों मारा था।" कमला ने क्रोध से कहा—"जैसा तुम लड़के को सिखाते हो और लाड़ करते हो वैसाही वह सीखता है। और सिर पर चढ़ता है। कल रात को आप नाच देखने कहाँ गये थे? मैंने तो बहुतेरा कहा था कि इसको न लेजाओ। आज सबेरे मुझसे कहा था कि माँ कल जहाँ मैं नाच देखने गया था, वहाँ एक तुम्हारे समान गोरी २ औरत नाचती थी और गाती भी थी, उसे बाबूजी ने एक रुपया दिया था। तो क्या मैं रंडी हूँ जो वह मुझे रंडी की उपमा दे?" कमला के आँखों में आँसू डबडबा आये। वसंतकुमार ने कहा—"तू भी निरी पागल है। अरे अभी तो वह........"

इसी समय श्यामू हाथ में गेंद लिये दौड़ता हुआ आया और माँ को रोते देख खूब हँस पड़ा। यह देख वसंतकुमार तथा कमला से भी हँसी न रोकी गई और दोनों हँसने लगे।

(२)

श्यामू को खेलता देख कमला ने पूछा—"श्यामू, आज तू अभी तक पढ़ने क्यों नहीं गया?"

"हूँ, आज तो छुट्टी है।" कह कर श्यामू फिर खेलने लगा।

संध्या के समय गुरुजी को अपने घर आते देख श्यामू माँ के पास छिप के जा बैठा। और माता के गले से झूमर कर कहने लगा—"माँ, मेरी एक बात मानेगी ?"

"क्या, कहता भी है कुछ कि मैं तेरी बात मानही लूँ।"

श्यामू—"तो पहिले यह कह दो कि तुम मेरी बात मानोगी के नहीं।" इतना कहकर वह रोने लगा। यह देख कमला को बड़ा आश्चर्य हुआ।" बोली—"बेटा, तुझे क्या चाहिये। रोता क्यों है।" कमला इतना कहही न पाई थी, कि श्यामू बोल उठा—"माँ मैं आज गैरहाजिर रहा हूँ सो गुरुजी यहाँ आ रहे हैं। तुम कह देना कि आज उसको बुखार चढ़ा था।" कमला सब मतलब समझ गई। और पूछा—"क्यों रे तू तो कहता था, कि आज छुट्टी है। बदमाश कहीं का। मैं झूठ काहे को बोलूंगी। मैं तो उनसे सच २ कहे देती हूँ।"

"माँ तुझे मेरी ही कसम है।" कह कर श्यामू रोने लगा।

गुरू जी ने आकर पूछा—"बसतकुमार कहाँ हैं ?"

कमला ने उत्तर दिया—"अभी तो वे कचहरी से नहीं आये। क्यों, क्या कुछ काम है ?"

"हाँ कचहरी संबंधी कुछ काम है।" कहकर वे चले गये। श्यामू छिपा २ सब सुन रहा था। गुरू जी के चले जाने के बाद हँसने लगा। 'अरे उनको तो मालूम ही नहीं हुआ' कहता हुआ खेलने भाग गया।

(३)

श्यामू की अवस्था इस समय ८ वर्ष की है। और प्रायमरी स्कूल की चौथी कक्षा में पढ़ता है। पर अभी भी श्यामू में चालाकियों की कमी नहीं है। इसी से श्यामू की कक्षा के लड़के श्यामू को खेलाड़ी श्यामू कह कर पुकारते हैं।

होली के दिन श्यामू को अपने सहपाठियों के साथ होली के लिये लकड़ी कंडे एकत्रित करने में लगा हुआ देख कमला ने कहा—"श्यामू देख, बाड़े में कण्डे रक्खे हुए हैं देखते रहना, कहीं कोई हमारे ही कंडे न उठा लेजाये।"

"नहीं माँ किसी की दम नहीं है जो अपने यहाँ के कंडे उठा सके। सालों के पैर तोड़ दूँगा। अच्छा मैं अब कहीं नहीं जाता। मैं बाड़े में छिपकर बैठता हूँ। जो कंडा लेने आवेगा, उनकी चटनी बना दूंगा।" इतना कह कर श्याम बाड़े में छिप कर बैठगया।

श्यामू के साथियों को जब यह मालूम हुआ, कि श्याम घर से ही नहीं आया। तो सब साथी मिलकर श्यामू के घर बुलाने को गये। श्यामू झट बाड़े में से निकल कर धीरे से बोला—"हल्ला मत करो. इधर आओ। ये कंडे रक्खे हैं, सो सब के सब ले जाओ और होली में रख दो।"

यह सुन, वे सब प्रसन्न मुख हो सब कंड़े उठा लेगये श्यामू घर में आकर कहने लगा—"माँ हमारे यहाँ कोई भी कंडे उठाने का साहस नहीं कर सकता। देखो, बारह बज चुके अभी तक कोई नहीं आया। मैं होली जलाने जाता हूँ।" यह कह कर श्यामू बाहर चला गया।

श्यामू अपने साथियों के पास आकर कहने लगा,—"कहो यार क्या हाथ दिया। पर देखो, मेरी माँ से मत कहना।" सब एक स्वर में बोल उठे—"नहीं नहीं।"

अच्छा चलो अब होली जलाओ।

दूसरे दिन जब कमला ने बाड़े में आकर देखा कि कंडे एक भी नहीं बचे, तब बड़ा क्रोध आया। और श्यामू से पूछा—"क्यों रे कंडे तो सब चोरी चले गये।"

"नहीं माँ, यह क्या कहती हो, चलो देखो। माँ, तुमने कहीं छिपा के रख दिये होंगे—"

इतना कहने ही न पाया था कि पास में छिपा हुआ लल्लू बनियाँ बोल उठा—"हूँ, कल तो सब कंडे होली में उठवा दिये हैं।"

यह सुन कमला ने श्यामू को खूब पीटा, और संध्या तक खाने को नहीं दिया।

(४)

श्यामू की सालाना परीक्षा हुई। और श्यामू सब लड़कों में पहला नंबर आया। इस पर पाँच रुपये स्कालरशिप (छात्र वृत्ति) मिली। यह देख श्यामू के साथी अचंभे में आये। श्यामू ने अङ्गरेजी मिडिल स्कूल की प्रथम कक्षा में पदार्पण किया। श्यामू सब लड़कों में प्रथम रहने लगा। और बराबर हर वर्ष पास होता रहा। अब बसंतकुमार तथा कमला को कुछ २ श्यामू के गुणों का परिवर्तन मालूम होने लगा।

*   *   *

श्यामू की अवस्था अब २५ वर्ष की है। इसी वर्ष श्यामू ने एम० ए० और बी० एस-सी० की परीक्षा दी है। बसंतकुमार कमला तथा श्यामू परीक्षा-फल के लिये अत्यन्त उत्सुक हो रहे थे कि सी० पी० न्यूज़ पेपर में परीक्षा-फल भी निकल आया। श्यामू प्रथम नंबर आया है। यह सुनकर बसन्तकुमार तथा कमला के हर्ष का ठिकाना न रहा। श्यामू ने आकर माता के चरणों को छुआ। माता ने आशीर्वाद दिया।

(५)

आजकल श्यामू हिन्दू-विश्व-विद्यालय काशी के अध्यापक हैं। और तीन सौ रुपये मासिक पारिश्रमिक पारहे हैं। वसंतकुमार के पास श्यामू के जितने पत्र आते हैं, उनपर भवदीय श्यामलाल, एम० ए०, बी० एस-सी० के बजाय केवल 'खेलाड़ी श्यामू, लिखा आता है।

माता पिता दोनों, खेलाडी श्यामू से अपने को धन्य समझते हैं।

इति।

विनोद ।

लेखक ।

श्रीयुत गुरुशिक्षक ।

(१)

एक मौलवी की स्त्री बड़ी कर्कशा थी । जब वह बहुत बीमार हुई तो अपने पति से कहने लगी–"मियाँ, मैं मर जाऊँगी तो तुम कैसे जीओगे ।" मौलवी ने उत्तर दिया—"बीबी, मुझे तो इस बात की फिक्र लग रही है कि यदि तुम बच जाओगी तो मैं कैसे जीऊँगा ।"

(२)

एक बनिये की दूकान पर बहुत सी मक्खियाँ उड़ रही थीं। एक ने आकर कहा—"क्यों सेठ जी आपकी दूकान पर तो बहुत सी मक्खियाँ उड़ रही हैं ?" सेठ ने कहा—"अरे भाई, मक्खियाँ नहीं उड़ेंगी तो क्या घोड़े गधे उड़ेंगे ।"

(३)

गंगा जी के किनारे एक यात्री ने पंडे से पूछा कि–"कहो पंडाजी, हम किस तरफ मुँह करके नहायँ जिससे हमें अधिक पुण्य मिले ।" पंडा जी कहने लगे—"हमारे यहाँ तो यह नियम है कि जिस तरफ अपने कपड़े रखे हों उसी तरफ मुंह कर के नहाय, क्योंकि यहाँ उचक्कों का बहुत डर रहता है ।"

(४)

एक शख्स प्रति दिन छः रोटियाँ खरीदता था । एक रोज

दूकानदार ने पूछा क्यों भाई तुम छः रोटी क्या करते हो! उत्तर मिला कि—"दो रोटी मैं उधार देता हूँ। दो रोटियों से चुकाता हूँ। एक फेंक देता हूँ और शेष एक को अपने पास रखता हूँ।" दूकानदार बोला—"भाई मैं तो कुछ भी नहीं समझा, साफ २ कहो।" उसने कहा—"दो रोटी बेटा बेटियों को, दो माँ बाप को, एक स्त्री को और एक मैं खुद खाता हूँ।"

(५)

मुसलमानी राज्य में एक काजी जी थे। आपने एक तेली से इस शर्त पर बैल लड़ाया कि जिसका बैल जीते वही दोनों बैल ले ले। अन्त में काजी जी के बैल की हार हुई। जब काजी जी ने देखा कि बैल देना पड़ेगा तो झट से लाल किताब मंगाई और यह हुकुम निकाला—

लाल किताब उठ बोली यों, तेली बैल लड़ावे क्यों।
खली खिलाय किया मुष्टंड, बैल का बैल पच्चीस दंड॥

बस आपने तेली का बैल छीन लिया और २५) जुर्माना भी कर दिया।

(६)

एक लड़का मन्दिर में बैठा कह रहा था—"मास्टर मर जाँय तो अच्छा है। हत्यारा रोज ही बहुत मारता है।"

यह बात कहीं मास्टर साहब ने सुन ली, तो उसके पास जाकर कहने लगे—"भाई ऐसा मत कहो कि मास्टर मर जाँय वरन् यों कहो कि ईश्वर करे हमारे बाप मर जाँय, क्योंकि हम मर जाँयगे तो तुम्हारा बाप दूसरे मास्टर साहब के पास पढ़ाने बैठाल देंगे, परन्तु यदि वह मर जायगा तो तुम्हें अच्छी तरह छुट्टी मिल जायगी।"

इस अङ्क के गल्पों की सूची।

—भिखारिणी-[ले०, श्रीयुत प्रतापनारायण श्रीवास्तव ३०६
—सत् श्री अकाल-[ले०, श्रीयुत कालिकाप्रसाद चतुर्वेदी ३३०
—पढ़ो और हँसो-[ले०, श्रीत्रिपुरारीशरण श्रीवास्तव ३४८

गल्पमाला के उद्देश्य और नियम।

१—इसका प्रत्येक अङ्क प्रति अंगरेज़ी मास की १ ली तारीख़ को छप जाया करता है। जो सब मिला कर सालभर में ७०० से अधिक पृष्ठों का एक सुन्दर ग्रन्थ हो जाता है।

२—रानी, तथा राजा और महाराजाओं से उनकी मान-रक्षा के लिये इसका वार्षिक मूल्य २०) रु० नियत है।

३—इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से २॥) है और वी० पी० से २॥।) है। भारत के बाहर ४) है। प्रति अङ्क का मूल्य ।-) आना। नमूना मुफ़्त नहीं भेजा जाता है।

४—'गल्पमाला' में उसके गल्पों ही द्वारा संसार की सब बातों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

५—मौलिक गल्पों को इसमें विशेष आदर मिलता है। पुरस्कार देने का भी नियम है।

अप्रैल १९२९ में छपने वाले गल्प।

—दानपत्र-[ले०, श्रीमान राय कृष्णदास जी।
—माँ-[ले०, श्रीयुत व्रजनाथ रमानाथ शास्त्री।
—क्षमाभिक्षा-[ले०, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा।
—पतिदेव-[ले०, श्रीयुत गोपालराव देवकर।
—पढ़ो और हँसो-[ले०, श्रीयुत 'होलिकानन्द'

भिखारिणी।

लेखक-
श्रीयुत प्रतापनारायण श्रीवास्तव।

(१)

एक रुक्ष-केशिनी, मलिन वसनावृता पथ की भिखारिणी ने यह गीत गाया—

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।
मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई॥"

भिखारिणी ने गान समाप्त कर अपना भिक्षाञ्चल फैलाते ए दीनता से कहा—"घर की मालकिन के बहू बेटे बने रहें, म भला करें, हमहूँ का कुछ मिल जाय।"

किन्तु भिखारिणी की प्रार्थना को किसी ने नहीं सुना। नने फिर एक गीत शुरू किया।

"मुखड़ा क्या देखे दरपन में, दया धर्म नहिं मन में
मुखड़ा क्या देखे दरपन में॥"

भिखारिणी ने गुनगुना कर
गाना शुरू किया।

गीत छोटा था, शीघ्रही सम
अब भी गूंज रही थी।

चन्द्रकिशोर की माँ ने पूछा-

भिखारिणी ने उत्तर दिया—

चन्द्रकिशोर की माँ—"न
की हो ?"

भिखारिणी—"मथुरा जी।

चन्द्रकिशोर की माँ—"यह

भिखारिणी ने उत्तर दिया-

चन्द्रकिशोर की माँ—"दो

भिखारिणी ने उत्तर में क
लड़की ६ बरस की।'

चन्द्रकिशोर की माँ—"ज
हो तब वे क्या करते हैं ? खेल

भिखारिणी—"हाँ मालि
रख आती हूँ, जब भूख लगती
दोनों भाई बहिन खेला करते
उनको नहला धुला कर रोटी
पहर फिर भीख माँगने निकल
जायेगा, उसे ले जाकर खा
उठ कर फिर वही भीख माँग

चन्द्रकिशोर की माँ—
कितने दिन हुए ?"

न जाने क्यों भिखारिणी यह सुन कर लज्जित हो गई। के पीले गालों पर एक लालिमा की रेखा दौड़ गई, किन्तु त ही वह अन्तर्हित हो गई। भिखारिणी ने धीमें स्वर में र दिया—"पाँच वर्ष।"

चन्द्रकिशोर की माँ ने भिखारिणी का भाव परिवर्तन लिया था। उन्हें मालूम हो गया कि भिखारिणी ने झूठ ा है। फिर पूछा—"तुम्हारे कुल में क्या और कोई है?"

भिखारिणी ने उत्तर दिया—"नहीं।"

चन्द्रकिशोर की माँ—"तुम्हारे स्वामी क्या कुछ भी ड़ न गये थे।"

भिखारिणी—"नहीं, एक कौड़ी नहीं।"

चन्द्रकिशोर की माँ चुप रही। भिखारिणी ने उठते हुए हा—"अच्छा मालकिन जी, तो अब मैं जाऊँ न। दोपहर तो आ रही है।"

चन्द्रकिशोर की माँ बगैर कुछ कहे हुए अन्दर चली गई र एक डलिया में बहुत सा आटा लेकर भिखारिणी की ोली में डाल दिया। भिखारिणी की झोली भर गई। वह शीर्वाद देती हुई चली गई। ग्रीष्म काल था, सूर्य तप रहा । पृथ्वी जल रही थी। भिखारिणी चन्द्रकिशोर की माँ भिक्षा लेकर एक सब से दरिद्र, मैली गली में व्यस्तता से ही और एक साफ सुथरे झोपड़े के द्वारपर पुकारा—"श्यामू श्यामू! राधा ओ राधा।"

श्यामू और राधा दोनों आकर माँ से लिपट गये। भिखा- णी ने अपनी झोली से दो आम निकालकर एक श्यामू और क राधा को दे दिया। श्यामू और राधा बड़े आनन्द से

भिखारिणी ने गुनगुना कर फिर तीव्र कोमल स्वर में गाना शुरू किया।

गीत छोटा था, शीघ्रही समाप्त हो गया। केवल ध्वनि अब भी गूंज रही थी।

चन्द्रकिशोर की माँ ने पूछा—"तुम्हारा घर कहाँ है।"

भिखारिणी ने उत्तर दिया—"नीलगली में।"

चन्द्रकिशोर की माँ—"नहीं ! तुम रहने वाली कहाँ की हो ?"

भिखारिणी—"मथुरा जी।"

चन्द्रकिशोर की माँ—"यहाँ तुम्हारे कौन कौन हैं ?"

भिखारिणी ने उत्तर दिया—"एक लड़का और लड़की

चन्द्रकिशोर की माँ—"दोनों की क्या उम्र है ?"

भिखारिणी ने उत्तर में कहा—"लड़का दस बरस का लड़की ६ बरस की।"

चन्द्रकिशोर की माँ—"जब तुम भीख माँगने चली आती हो तब वे क्या करते हैं ? खेलते हैं।"

भिखारिणी—"हाँ मालकिन जी ! सुबह उनके खाने रख आती हूँ, जब भूख लगती है तब खा लेते हैं और दोनों भाई बहिन खेला करते हैं। जब यहाँ से जाऊँगी उनको नहला धुला कर रोटी बना कर खिलाऊँगी। त पहर फिर भीख माँगने निकलूंगी, जो कुछ शाम तक जायेगा, उसे ले जाकर खा पी कर तीनो सो रहेंगे। उठ कर फिर वही भीख माँगना !"

चन्द्रकिशोर की माँ—"तुम्हारे स्वामी को म कितने दिन हुए ?"

न जाने क्यों भिखारिणी यह सुन कर लज्जित हो गई। इसके पीले गालों पर एक लालिमा की रेखा दौड़ गई, किन्तु रन्त ही वह अन्तर्हित हो गई। भिखारिणी ने धीमें स्वर में र दिया—"पाँच वर्ष।"

चन्द्रकिशोर की माँ ने भिखारिणी का भाव परिवर्तन लिया था। उन्हें मालूम हो गया कि भिखारिणी ने झूठ ा है। फिर पूछा—"तुम्हारे कुल में क्या और कोई ं है?"

भिखारिणी ने उत्तर दिया—"नहीं।"

चन्द्रकिशोर की माँ—"तुम्हारे स्वामी क्या कुछ भी ड़ गये थे।"

भिखारिणी—"नहीं, एक कौड़ी नहीं।"

चन्द्रकिशोर की माँ चुप रही। भिखारिणी ने उठते हुए ा—"अच्छा मालकिन जी, तो अब मैं जाऊँ न। दोपहर ती आ रही है।"

चन्द्रकिशोर की माँ बगैर कुछ कहे हुए अन्दर चली गई र एक डलिया में बहुत सा आटा लेकर भिखारिणी की ोली में डाल दिया। भिखारिणी की झोली भर गई। वह शीर्वाद देती हुई चली गई। ग्रीष्म काल था, सूर्य तप रहा ा। पृथ्वी जल रही थी। भिखारिणी चन्द्रकिशोर की माँ विदा लेकर एक सब से दरिद्र, मैली गली में व्यस्तता से सी और एक साफ सुथरे झोपड़े के द्वारपर पुकारा-"श्यामू े श्यामू! राधा ओ राधा।"

श्यामू और राधा दोनों आकर माँ से लिपट गये। भिखा-णी ने अपनी झोली से दो आम निकालकर एक श्यामू और क राधा को दे दिया। श्यामू और राधा बड़े आनन्द से

क्योंकि तुमने आते ही आते उमा के बारे में प्रश्न पर प्रश्न करना शुरू कर दिया ।"

आगन्तुक ने पूछा—"वह उमा काशी में है, इसका मतलब यह कि तुम्हारा नाम भी उमा है, और तुमने मुझसे झूठ कहा है।"

भिखारिणी ने हँस कर कहा—"मेरा नाम उमा वास्तव में है नहीं, किन्तु जन साधारण मुझे इसी नाम से पुकारते हैं। वास्तव में मेरा नाम है गंगा।"

आगन्तुक कुछ देर तक मौन रहा।

भिखारिणी ने पुनः कहा—"क्या तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं होता?"

आगन्तुक ने कहा—"नहीं।"

भिखारिणी उमा ने कहा—"तो मैं क्या करूँ।"

इसी समय श्यामू और राधा दोनो खेलते हुए घर में आए। वहाँ एक अपरिचित को देख कर श्यामू ने पूछा—"तुम कौन हो?"

आगन्तुक श्यामू की ओर देखने लगा।

श्यामू ने पुनः पूछा—"तुम कौन हो। हमारे घर क्या करने आए हो।"

आगन्तुक ने कोई उत्तर नहीं दिया। भिखारिणी ने श्यामू को पुकारा—"बेटा श्यामू तुम यहाँ तो आओ।"

श्यामू अपनी माँ के पास चला आया। राधा भी एक विचित्र भाव भंगी से आगुन्तक की ओर देखती हुई चली गई। आगुन्तक ने एक ठंडी निश्वास ली, और धीरे धीरे कुटीर से बाहर हो गया।

भिखारिणी ने श्यामू और राधा को हृदय से लगा लिया, और बारी बारी से दोनों के कपोलों को चूमा।

भिखारिणी ने श्यामू से कहा—"बेटा आज ही तुम्हें चलना होगा। चलो आओ आजही इस शहर को छोड़ कर चल दें। शत्रुओं का अब यहाँ भी भय हो गया है।"

श्यामू ने व्यग्रता से पूछा—"कहाँ चलोगी ?"

भिखारिणी ने उत्तर दिया—"अयोध्या जी।"

श्यामू ने कहा—"अच्छा तो मैं जाकर चमेली, गुलाबी, किशना से कह आऊँ कि हमलोग अयोध्या जी जा रहे हैं।" यह कह माँ की गोद से उतर कर एक ही साँस में घर से दौड़ कर अपने मित्रों के पास पहुँच गया।

राधा भी "श्यामू भैय्या, श्यामू भैय्या, अम्मा बुलाती है" कहती हुई श्यामू के पीछे दौड़ती हुई घर से बाहर होगयी।

भिखारिणी भी वैसे ही निष्कर्मा बैठी रही। वह चिन्तासागर में निमज्जित हुई जारही थी। उसने अस्फुट स्वर में कहा—"हा! दैव! तुमने क्या नहीं किया। मुझे पथ की भिखारणी बनाकर भी तुम्हें कल नहीं है। यहाँ भी, 'राजेन्द्र बाबू' का दूत आ पहुँचा। भगवन्! मुझे बल दो, कि मैं उसके मोह को हृदय से निकाल कर पैरों से कुचल दूँ! मुझे यह शक्ति दो, कि उसकी मनोहारीमूर्त्ति को अपने स्मृति-मन्दिर से निकाल कर चकनाचूर कर दूं। मन! जिसने तुम्हारा सर्वनाश किया, उसी की मूर्ति अब भी तुम अपने वक्ष में रक्खे हुए हो। भूल जाओ 'राजेन्द्र' को, भूल जाओ उसके रूप को, भूल जाओ उसकी स्मृति को। किन्तु कैसे उसे भूलूँ। उसके दो चिन्ह तो अभी तक मेरे सामने हैं। वे दोनों मेरी आखें हैं। मेरे प्राण हैं। श्यामू और राधा को

देख कर ही मुझे राजेन्द्र की याद आती है। यही दानों उसकी भेंट हैं। उसके प्रेमोपहार हैं। 'राजेन्द्र' तुम मुझे अब पाओगे नहीं। मैं माँगते माँगते मर जाऊँ, किन्तु अब तुम्हारा आश्रय ग्रहण न करूँगी। तुम्हारे धनको, ठुकरा दूँगी, तुम्हारी सहायता पर लात मार दूँगी।''

भिखारिणी की आँखों से आँसू निकलने लगे। कुछ अभिमान के कारण, कुछ दुःख के कारण, और कुछ क्रोध के कारण। मनुष्य जब, निरुपाय हो जाता है, तब आँसू ही निकल कर उसकी ज्वाला शान्त करते हैं?

(३)

मनुष्य-जीवन में प्रत्येक घटनाएँ कुछ महत्व रखती हैं। कोई उन्हें देखता है लेकिन विचार नहीं करता, कोई देखकर भी नहीं देखता, और कोई कभी न देखते हैं और न देखने तथा विचारने की आवश्यकता ही समझते हैं। किन्तु घटनाएँ हुआ करती हैं अवश्य। और उनके साथ महत्व भी जड़ित रहता है। शायद ठीक इसी प्रकार की महत्वमयी घटनाएँ बाबू राजेन्द्रनाथ के जीवन में भी हुई थीं। बाबू राजेन्द्रनाथ एक धनी सुपुरुष थे। शिक्षित थे और गुणवान भी थे। थोड़े से शब्दों में ही कह देना ठीक होगा कि बाबू राजेन्द्रनाथ ने अपने प्रथम यौवन की प्रथम तरंग में घर के पास रहने वाली एक सुन्दरी बालिका से प्रेम किया। बालिका भी इनसे प्रेम करती थी। बालिका का नाम था कान्ति! कान्ति और बाबू राजेन्द्रनाथ में विवाह-सम्बन्ध समाज के अन्तर्गत रह कर नहीं हो सकता था। किन्तु दोनों एक दूसरे से प्रेम करते थे।

बाबू राजेन्द्रनाथ ने अपना सब कुछ कान्ति के चरणों में अर्पण कर दिया, और कान्ति ने भी अपना सर्वस्व बाबू राजेन्द्रनाथ को भेंट कर दिया। बात छिपी न रही। कान्ति गर्भवती हो गई। कान्ति ने रोते २ सारी कहानी बाबू राजेन्द्रनाथ को कह सुनायी। बाबू राजेन्द्रनाथ ने भी आसन्न विपत की सम्भावना देख कर कान्ति को माता पिता त्याग कर किसी सुदूर स्थान में चलने का अनुरोध किया। कान्ति! बेचारी कान्ति ने पहले अपनी असम्मति प्रकाश की, किन्तु पाप छिपाने का कोई और उपाय न था। कुल त्यागने से माता पिता की बदनामी की हद नहीं रहती, और यों भी बदनामी तो फैल ही रही है और भी फैलेगी ही। यही सब विचार कर एक रात को कान्ति ने अपने जीवन की बागडोर बाबू राजेन्द्रनाथ के हाथों में सौंप दी और उस समय राजेन्द्र बाबू ने अपने को बड़ा भाग्यशाली समझा। भविष्य की कोई भी चिन्ता न की। भविष्य गर्भ में छिपी हुई आपत्तियों की चिन्ता न की। वे कान्ति को लेकर प्रयाग में आगये। एक निर्जन स्थान में एक बँगला लेकर वे कान्ति के साथ जीवन व्यतीत करने लगे। नगर के लोगों ने जाना यह एक सुखी दम्पति है पर किसने जाना यह संसार में होने हुए नित्य पापों की असुखी दम्पति है।

कुछ दिनों बाद कान्ति के एक लड़का हुआ। और फिर दोनों के जीवन सुखसे व्यतीत होने लगे। कलह और अशान्ति का नाम न था। सुख, प्रेम, आशा की उज्वल रेखाओं से घर देदीप्यमान हो रहा था। कान्ति ने एक दिन के लिए भी अपने बाप के घर छोड़ने का अनुताप न किया।

घड़ियाँ सुख की कटती ही गईं। क्रम से पाँच वर्ष

और व्यतीत होगये। इसी बीच में राजेन्द्र बाबू के एक लड़की और हुई। दोनों ने बड़ी साध से नाम रक्खा राधा-रानी। राजेन्द्र बाबू ने कभी भी कान्ति के संसर्ग को भार स्वरूप अनुभव न किया, किन्तु वे पूर्ण रूप से सुखी भी न थे। मनुष्य की और खास कर पुरुष जाति की यह दैवी प्रेरणा हुआ करती है कि वह एक वस्तु पाकर कभी अपने को सन्तुष्ट नहीं समझता। एक इच्छित वस्तु मिल जाने से वह और वस्तुओं की ओर हाथ बढ़ाता है। हमारे राजेन्द्र बाबू भी मनुष्य ही थे, देवता नहीं। जब उन्होंने कान्ति-रूपी सुपुष्प को रौंद कर नष्ट भ्रष्ट कर डाला, जब उसके यौवन में वह आकर्षण न रह गया जो राजेन्द्र को अपनी ओर खींच लेता, वे धीरे धीरे एक ऐसे पुष्प की खोज में लग गये जो उनकी क्षणिक उत्तेजना को शान्त करे। कान्ति उनकी पत्नी थी नहीं। उन्होंने धार्मिक रीति से उसका पाणिग्रहण किया भी नहीं था। न मालूम वैवाहिक मन्त्रों में कितनी शक्ति है जो दो अपरिचित पुरुष और स्त्री में एक विचित्र तरह का प्रेम उत्पन्न कर देती है और पुरुष को उस अपरिचित रमणी का भार भी नहीं खलता और रमणी तो अपना सर्वस्व ही उसके चरणों में समर्पण कर देती, है, किन्तु असमाजिक विवाह में यह बात नहीं होती। राजेन्द्र बाबू मारे लज्जा के, भय के कोई बात कान्ति को कहते न थे, और कान्ति भी अपनी निर्बुद्धिता पर पछताती थी, किन्तु प्रकाश रूपमें वह भी कुछ राजेन्द्र से कह न सकती थी। दोनों अपराध स्वीकार करते थे, किन्तु दोनों में वह शक्ति न थी जो अपनी स्थिति को साफ २ प्रगट कर सकने में समर्थ हो सकते। दोनों एक दूसरे को प्यार करने का यत्न करते किन्तु दोनों कृतकार्य न होते।

दोनों के हृदय में एक विचित्र प्रकार का परदा पड़ गया था और वह धीरे२ अधिक मोटा पड़ा जा रहा था। अंत में राजेन्द्र बाबू ने इस वेदना को छिपाने के लिए शराब की शरण ली। वहाँ उन्हें कुछ शान्ति मिली। और फिर अन्य दुर्गुणों ने भी अपना अधिकार जमाना शुरू किया। निदान राजेन्द्र बाबू एक सुन्दरी वेश्या की मोहजाल में फँस गये, और अपना समय वहीं व्यतीत करने लगे। कान्ति ने कई बार प्रयत्न किया, किन्तु वह कृतकार्य नहीं हुई। राजेन्द्र बाबू पहले तो टालते रहे अन्त में एक दिन कह दिया—"देखो, तुम मेरी पत्नी तो हो नहीं, और न मैंने तुम्हारा पाणिग्रहण किया है जो तुम मेरे पीछे पहरा दिया करती हो। मैं स्वतंत्र हूं, तुमसे मेरा जी ऊब गया। मुझे जो अच्छा लगेगा करूँगा। तुम्हें बाधा देने का कोई अधिकार नहीं है।"

कान्ति ने रोते हुए कहा—"मैं जानती हूं कि तुमने मेरे साथ विवाह नहीं किया है किन्तु मुझे फुसला कर घर से निकाल ले आने वाले तो तुम्हीं हो।"

राजेन्द्र बाबू ने उत्तर दिया—"किन्तु तुम तो आयी अपने मन से। मैं तुम्हें जबरदस्ती तो ले नहीं आया। तुम्हारा मन था चली आयी और अब तुम जहाँ चाहो जा सकती हो।"

कान्ति ने रोते हुए कहा—"जब मुझे किसी काम का न रक्खा तब जाने को कहते हो। मैं कहाँ जाऊँ।"

राजेन्द्र बाबू ने कहा—"तो बस फिर मेरी बात में बाधा न दिया करना।"

कान्ति ने उस दिन प्रण कर लिया कि वह कभी भी राजेन्द्र बाबू के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेगी। और न उसने किया। उसने उस दिन अपनी भूल समझी और उसी दिन उसको

अनुताप हुआ। उसी दिन उसने जी भर रोया। वही दिन उसके लिये महत्व का था। क्योंकि उसी दिन उसने अपनी भूल समझी।

इधर राजेन्द्र बाबू उस वेश्या के यहाँ आने जाने लगे। यहाँ तक कि उन्होंने उसे मासिक वेतन पर नौकर रख लिया उस वेश्या का नाम था राजेश्वरी। राजेश्वरी ने भी रंग ढंग देख कर अपने पैर फैलाना शुरू किया। एक दिन उसने मचल कर रूठ कर कहा—"मुझे यहाँ अकेले क्यों रखते हो, मुझे अपने घर क्यों नहीं ले चलते। वहाँ तुम्हारी स्त्री तो है ही नहीं। वह जैसे, वैसे ही मैं भी। फिर तुम उससे इतने डरते क्यों हो।"

राजेन्द्र बाबू उसी दिन उसे अपने बँगले में ले आये। कान्ति ने उसे भी सहा। उसने जिसके चरणों में अपना सर्वस्व भेंट कर दिया था, वह विश्वासघाती हो गया, यहाँ तक वह किसी तरह बरदाश्त कर सकती थी, किन्तु वही उसके सामने पापलीला करने में कोई संकोच न करे, यह एक रमणी के लिए असह्य है, किन्तु उसे उसने भी सहा। परन्तु राजेश्वरी ने और भी पैर फैलाना आरम्भ किया।

एक दिन उसने कान्ति से साफ साफ कह दिया कि यहाँ उसका गुजर न होगा। वह कोई दूसरा यार ढूंढ़े। कान्ति ने सुन कर भी नहीं सुना। एक दिन राजेश्वरी हठ ठान कर ही बैठी कि कान्ति जब तक घर छोड़ कर चली नहीं जायगी तब तक वह अन्न जल ग्रहण न करेगी। प्रेमी भला कब अपनी प्रेमिका को भूखे रख सकता है। उन्होंने आकर कान्ति से कहदिया कि वह घर छोड़ कर चली जाय। कान्ति ने कुछ ध्यान न दिया। उसी रात को राजेश्वरी ने [illegible] कान्ति को एक वस्त्र से निकाल

बाहर किया। राजेन्द्रबाबू देखते रहे। कुछ भी आपत्ति न की। कान्ति ने रोते-रोते राजेन्द्र बाबू की ओर देखकर कहा—"मेरी ओर देखकर दया न करिये, लेकिन श्यामू और राधा की ओर तो देखकर पसीजिये। इसका क्या परिणाम होगा, ज़रा इसको सोचकर तो भुझपर दया करिये।" किन्तु राजेन्द्र बाबू ने कुछ ध्यान न दिया। कान्ति को उसी दिन घर छोड़ देना पड़ा और वह दर दर की भिखारिणी होगई। पास में कुछ था भी नहीं, केवल पैर की बिछिया और हाथ में सोने के दो कड़े थे, वह भी पोले। उसे बेचकर, किसी भाँति भूख की ज्वाला शांत की। कान्ति उसी दिन रोई और जी भरकर रोई। इसके बाद किसी ने न जाना वह कहाँ चली गई।

इधर वेश्या ने भी जो कुछ बन पड़ा वह नोचा खसोटा। राजेन्द्र बाबू भी उसके प्रेम में अन्धे हो रहे थे, सब कुछ दे डाला। राजेन्द्र बाबू को मित्रों की कमी न थी। एक मित्र का नाम था प्रेमबिहारी। प्रेमबिहारी बड़ा ही सुन्दर नवयुवक था। राजेश्वरी और प्रेमबिहारी में कुछ सम्बन्ध हो गया। राजेन्द्रबाबू राजेश्वरी को अपनी ही समझते थे, जानते थे कि राजेश्वरी उन्हीं की है और वह भी उन्हीं से, केवल उन्हीं से प्रेम करती है। एक दिन दोपहर के समय उन्होंने राजेश्वरी और प्रेमबिहारी को एकही पलंग पर देखा। देखकर उनको बड़ा क्रोध आया और उन्हों ने राजेश्वरी को जाकर कहा—"पापी-यसी, अपना सब कुछ अर्पण कर देने पर भी तेरी इच्छा न भरी और तू एक दरिद्री को लिये पड़ी हुई है।"

प्रेमबिहारी भाग गया था। राजेश्वरी ने अपने को पकड़ा देखकर उत्तर दिया—"बाबू साहब यह अपनी आँखें किसी और को दिखलाइयेगा, मैं सहने की नहीं हूँ। अगर आप ने सर्वस्व

भेंट कर दिया था तो मैंने भी आपकी इच्छा शान्त की थी। क्या जानते नहीं, मैं रण्डी हूँ। यह तो सबको मालूम है रण्डी कभी अपनी नहीं होती। फिर मैं क्या कान्ति हूं, जो आपकी बनी रहूं। जो मेरा मन होगा वह करूंगी, आप कौन हैं चालनेवाले। जो मनुष्य एक बाजार की रण्डी के लिए अपनी अनुगता कान्ति तक को भी छोड़ सकता है उस से मैं क्या आशा रख सकती हूँ। जाइये बाबू साहब, यहाँ लाल पीली आखें सहने वाली नहीं हूँ।"

राजेन्द्र बाबू चुप हो रहे। उसी दिन संध्या को राजेश्वरी राजेन्द्र बाबू का धन बटोर कर चल दी। वह फिर अपने पुराने मकान पर चली आई। और राजेन्द्र बाबू फिर अकेले रह गये। उन्हें अपने पर घृणा होगई। अपने प्रिय शराब से भी घृणा हो गई। मित्रों से घृणा होगई। वे कान्ति को पाने के लिये छटपटा उठे। उन्होंने कान्ति को फिर पाना चाहा। किन्तु कान्ति न मिली। उसकी तलाश में आदमी शहर शहर में भेजे, किन्तु कान्ति कहीं न मिली। अब उन्हें पश्चात्ताप होने लगा किंतु अब निरर्थक पश्चात्ताप से होना है क्या? कान्ति खोगई जन्मभर के लिए। वे कान्ति की कातर प्रार्थना याद कर रो पड़ते। वे अब स्वयं नहीं समझ सकते कि उन्होंने किस हृदय से कान्ति की उस कातर प्रार्थना की अवहेलना की थी? कैसे उन्होंने अपने पुत्र और पुत्री की ओर नहीं देखा था। उन्हें अब आश्चर्य होता। हाय रे अंध मनुष्य जाति!

कई महीने बाद उन्हें पता लगा कि बनारस में एक भिखारिणी है, नाम उसका है उमा। साथ में उसके दो बालकबालिका हैं। एक बालक का मिलान राजेन्द्र बाबू के दिये हुए फोटो से मिल गया। वे उसी दिन

रस को रवाना हो गये। बनारस के सारे घाट, ढूँढ डाले
तु उमा कहीं न मिली। वह अन्तर्ध्यान हो गई, न जाने
ँ। उसके वासस्थान पर जाकर दर्याफ्त करने से मालूम
ा कि वह न जाने कहाँ चली गयी। वहाँ कई लोगों से उमा
खारिणी के बारे में पूछा।

पूछने से मालूम हो गया कि उमा भिखारिणी ही उनकी
ति है। वे हताश होकर बनारस से लौट आए। और घर
कर जी भर रोए। जिस कांति को वे कभी प्राणों से अधिक
ार करते थे वही आज पथ की भिखारिणी है और वह भी
री के कारण।

नुष्य को वस्तु के खो जाने पर उसका यथार्थ मूल्य
त होता है, तभी तो मनुष्य-जाति आँख रहते भी अन्धी
। हताश न हुए और फिर खोज करने लगे।

(४)

रेमी को क्या चाहिये—अपनी प्रेमिका। अशान्त को
त। प्यासे को—पानी। अंधे को—आंख। और योगी
श्वर। जितने मनुष्य हैं उतनी ही आकांक्षाएँ हैं। क्या
की कामनाएं पूर्ण होती हैं? हाँ होती हैं, लेकिन कब
लगन सच्ची हो। मनुष्य को सभी मिलता है, जो भी
चाहता है, यदि वह तन मन धन से पाने का यत्न करे।
राजेन्द्र ने कान्ति के पाने का यत्न किया और कहा तक
ार्य भी हुए। किन्तु कान्ति का जब समाचार मिला कि
कानपुर में है, राजेन्द्र बाबू दौड़े हुए कानपुर आए। वे
गलों में गये, किन्तु वहाँ उन्हें हताश होना पड़ा। उन्हें
ूम हुआ, कान्ति उपनामा उमा यहाँ से भी चल दी है।

बड़ी खोज के बाद पता लगा कि वह 'अयोध्या जी गयी है। वे स्वयं अयोध्या जी को रवाना हो गये।

अयोध्या जी में वे हर एक आश्रम में, हर एक गुलाई खेड़े में, पथ में, घाट में, बाट में सब कहीं खोजा, लेकिन कान्ति न मिली। कान्ति न मिली और उनके श्यामू, और राधा भी न मिली। वे निराश हो गये, पिता का हृदय अपनी संतान को देखने के लिये रो उठा। पुत्र-वात्सल्य जोश मारने लगा। उनके नेत्र श्यामू और राधा को देखने के लिए आकुल हो उठे। उनका वक्षस्थल श्यामू और उमा को अपने से लगा लेने के लिए उत्सुक हो उठा। उनके कान श्यामू और राधा की तोतली भाषा सुनने के लिए व्याकुल हो उठे। वे सुख साज से ढके रहे, वे आमोद प्रमोद में अपने दिन काटे, और उन्हीं के श्यामू और राधा पथ के भिखारी हैं! जिसको कभी अपने हृदय-सिंहासन पर बिठाया था, वही पथ की भिखारिणी है! इसी तरह की चिन्ताएँ उनके हृदय को छेदने लगीं। वे उसका—उस पाप का—प्रायश्चित्त करना चाहते थे। वे अपने अपराधों की क्षमा कान्ति से माँगना चाहते थे। लेकिन उनको कान्ति कहाँ थी, कौन जाने? वे रोते हुए इलाहाबाद की ओर चल दिए।

(५)

भिखारिणी कहाँ गई? भिखारिणी अयोध्या जी को जाकर परतापगढ़ चली गयी थी। उसका इरादा था कि कई दिन बाद अयाध्या जी को जायगी, क्योंकि उसे विश्वास था कि राजेन्द्र बाबू के दूत वहाँ भी पहुँचेंगे। इसी

यह परतापगढ़ चली गई थी। कुछ दिन परतापगढ़ में रह कर वह अयोध्या के लिए रवाना हो गई।

गाड़ी चली जा रही थी। आस पास गावों की शोभा देखते ही बन पड़ती थी। संध्या काल था। गाड़ी में लोग बैठे हुए, कोई बातें कर रहे थे, कोई गा रहा था, और कोई हारमोनियम बजा रहे थे, सभी अपने आमोद प्रमोद में मग्न थे, लेकिन उसी में एक कोने में भिखारिणी चुपचाप बैठी हुई थी। श्यामू और राधा की सारी शैतानी न मालूम कहाँ चली गयी थी। दोनों बड़े भोले लड़के बने बैठे थे। दोनों शान्त और गम्भीर थे।

अचानक बड़ी ज़ोर से धक्का लगा, लोगों के मुँह से निकल पड़ा, गाड़ी लड़ गई। एक धक्का लगा, फिर दूसरा, और फिर तीसरा। गाड़ी पटरी से उतर गई। दोनों इञ्जन भी भयानक दानवों की भांति टकरा कर टूट फूट गये। मेल और पैसेञ्जर दोनों लड़ गये थे। गाड़ियों की गैस के डब्बे फट गए और आग लग गई। बहुत से बेहोश होकर गिर पड़े। बहुतों का सर फट गया, बहुत मर गये और बहुतों के अङ्ग क्षत विक्षत हो गये। कान्ति भिखारिणी भी बेहोश हो गई। बालक श्यामू और राधा माँ से चिपटे हुए बेहोश थे। सभी जगह कोलाहल, हाहाकार, रोना और गर्जन तर्जन था। रेल के कर्मचारी असहाय मुसाफिरों को लेजाकर इञ्जिन में झोंक रहे थे। क़ब्रें खुदवा खुदवा कर गाड़ रहे थे। सभी ओर एक प्रलय मचा हुआ था। भाग्य से कुछ स्वयंसेवक पास के गावों से आ पहुँचे। उन्होंने बहुत लोगों को जीते गोरदफ़न से बचाया, बहुतों को जीवित सता होने से बचाया, और सभी बेहोश, लँगड़े, लूलों को कन्धे पर लाद लाद कर पास के अस्पतालों में ले गये।

भिखारिणी को और साथही श्यामू और राधा को भी ले गये। भिखारिणी का मस्तक फट गया था। खून की धार जारी थी; किन्तु श्यामू और राधा दोनों बचे हुए थे किन्तु बेहोश थे।

* * * *

भिखारिणी ने होश में आकर आँखें खोलीं। पहले पुरुष पर नज़र पड़ते ही चीख़ मार कर बेहोश हो गई। वह पुरुष और कोई न था—वह थे हमारे राजेन्द्र बाबू! डाक्टरों ने कहा—"राजेन्द्र बाबू अब आप हट जायँ, रोगी आपको पहि- चान गया है। आपको देख कर ही वह बेहोश हो गई है इसी लए अब उससे तब तक न मिलें जब तक वह स्वस्थ न हो जाय।"

राजेन्द्र बाबू भिखारिणी की ओर माया भरी चितवन से देखते हुए हट गये।

डाक्टरों ने बहुत यत्न किया, लेकिन किसी तरह भी भिखारिणी की मोह-निद्रा उस दिन न टूटी। उसके अगले दिन भी न टूटी। तीसरे दिन कहीं जाकर होश हुआ। सब लोग उसके जीवन से निराश हो गये थे किन्तु तीसरे दिन जब वह होश में आई तब कहीं जाकर उन्होंने शान्ति की एक गहरी साँस ली।

भिखारिणी ने नेत्र खोलकर देखा। राजेन्द्र को न पाकर एक आराम की निश्वास ली। वह बहुत ही दुर्बल थी। उसने बहुत धीमे कण्ठ में पूछा—"वह बाबू कहाँ हैं जो अभी बैठे थे।"

भिखारिणी क्या जाने वह कितनी देर तक बेहोश रही

उसने जाना कि अभी वह बेहोश हुई थी और फिर होश में आई है। डाक्टर ने कहा—"वह चले गये हैं।"

भिखारिणी ने कहा—"मेहरबानी करके ज़रा बुलवा दीजिये, क्योंकि मैं उनसे दो बातें करना चाहती हूँ।"

डाक्टर ने राजेन्द्र बाबू को बुलवा दिया।

राजेन्द्र बाबू अपनी नज़र नीची किये हुए धीरे धीरे आकर कांति के पास खड़े हो गये। कान्ति ने एक नज़र देखा। उनके नेत्रों में आँसू छलछला आए। राजेन्द्र बाबू ने सस्नेह उन्हें अपने रूमाल से पोछ दिया।

उसने उनसे बैठने का इशारा किया।

राजेन्द्र बाबू बैठ गये। उनके नेत्रों में आँसू भर आए।

कान्ति ने धीमे स्वर में कहा—"मैंने जो प्रतिज्ञा की थी वह पूरी होगई, और जो मन में साध थी वह भी पूरी होगई। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं जीते जी फिर कभी तुम्हारा अन्न जल ग्रहण न करूँगी, और साध यह थी कि मैं अन्त समय तुम से मिल जाऊँ तो अपने जिगरके टुकड़ों को—राधा,और श्यामू को-तुम्हारे हाथों में सौंप जाऊं, क्योंकि पिता की हैसियत से यह तुम्हारा धर्म है कि तुम उन्हें मनुष्य बनाओ। भगवान् की कृपा से दोनों साध पूरी होगई। अब मैं सुख से मरूँगी।"

राजेन्द्र बाबू के नेत्रों से आसुओं की धार बह चली, और [उ]नके गालों को साफ करती हुई बिछौने में गिर कर उसमें [अ]पने का यत्न करने लगी। उन्होंने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—[का]न्ति! मुझे क्षमा करो, मैंने बड़ा घोर पाप, अपराध किया [है] जिसका प्रायश्चित्त है ही नहीं, लेकिन तौभी तुम मुझे क्षमा [कर]ो। तुम अच्छी हो जाओ, तो मेरे साथ चलो। हम तुम दोनों [प्या]र से सुख से रहेंगे। कान्ति, क्या मुझे क्षमा न करोगी?"

कान्ति के चेहरे पर हँसी की एक मलिन रेखा दौड़ गई। उसने हँसते हुए कहा—"रमणी का हृदय पुरुषों जैसा नहीं होता। रमणी अपने जीवन में एक वारही प्यार करती है—वह प्रथम बार ! वह जिसे पहले पहल, यौवन के प्रथम ज्वार में प्यार करती है, उसी को जन्म भर प्यार करती है। वह पहले पहल जिसके चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है, वह जन्म भर सदा उसी की रहती है, वह अपने अत्याचारी को कभी नहीं भूल सकती। वह उसके सब अपराधों को, चाहे वे कितने बड़े हों, नहीं समझती। वह उन्हें भूल जाती है। मैंने उसी दिन तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर दिये थे, जिस दिन उस वेश्या ने तुम्हारे सामने मुझे निकाला था और तुम कुछ बोले न थे। मेरे श्यामू और राधा को देख कर भी न पसोजे थे। खैर जाने दो वह बातें ! मैं तुम्हारी धरोहर अभी तक रक्खे रही, अब तुम्हें सौंपती हूं, तुम जानो। देखो, उनपर सदा दया करना। उन्हें यदि हो सके तो कभी दुख न मिले। और क्या कहूं, वे भी भिखारियों की तरह तुम्हारे यहाँ से दो रोटी खाने को पा जाया करें। यद्यपि मैंने अभी तक भीख माँगी है, किन्तु कभी उन्हें किसी भांति का कष्ट होने नहीं दिया है। जो वस्तु उन्होंने माँगी है, वही दी है, जैसे कपड़े, खिलौने चाहे हैं सभी दिये हैं। मैं उन्हें देती हूँ तुम जानो अब से।"

कान्ति कहते कहते थक गई। उसे क्षणिक मोह आगया। उसके नेत्र अपने आप खिंच गये। वह निश्चेत पड़ी रही। और राजेन्द्र बाबू रो रहे थे। कान्ति के एक एक शब्द उसके हृदय में बिच्छू की भाँति डंक मार रहे थे !

उन्होंने उत्तेजित होकर कहा—"कान्ति प्राणप्रिये ! ..."

तुम्हें मरने न दूँगा। बड़े परिश्रम से पाया है, मैं भी उसी ट्रेन में था जो तुम्हारी गाड़ी से लड़ गई थी, लेकिन मैं बच गया, और मैं तुमको भी बचाऊँगा। अपने पापों का प्रायश्चित्त करूँगा और अवश्य करूँगा।"

कान्ति ने धीरे धीरे अपने नयन-पटल खोलते हुए उत्तर दिया—"यदि प्रायश्चित्त करना चाहते हो तो मेरे श्यामू और राधा को कभी दुख न देना। बस! यही मेरी आखिरी अभिलाषा को पूर्ण करो।"

राजेन्द्र ने कहा—"कान्ति तुम नहीं जानती, मैं कितना श्यामू और राधा को हृदय से लगाने के लिये छटपटाया हूँ, कलपा हूँ। श्यामू और राधा दोनों मेरी दोनों आँखें हैं। मैं अब इन्हीं से देखूँगा। आज मैं भगवान् की, तुम्हारे चरणों की क़सम खाकर कहता हूँ कि श्यामू और राधा दोनों सुख से रहेंगे। यही मेरे सब कुछ होंगे, और कोई कुछ भी नहीं—हाँ—एक और होगा—और वह तुम।"

कान्ति ने हँसकर कहा—"मैं तो अब चली।"

राजेन्द्र ने कहा—"ऐसा न कहो कान्ति!"

कान्ति ने हँसते हुए कहा—"नहीं, यह बिलकुल ठीक है। श्यामू और राधा कहाँ हैं बुलादो।"

राजेन्द्र ने श्यामू और राधा को बुला दिया।

कान्ति ने दोनों को अपने हृदय से लगा लिया। उसने फिर श्यामू से कहा—"बेटा, यही तुम्हारे पिता हैं, इन्हें प्रणाम करो, आज से तुम इन्हीं के साथ रहना। मुझे भूल जाना।" यह कहते कहते उसकी आँखों में आँसू भर आए।

राजेन्द्र भी रो रहे थे। उन्होंने सप्रेम राधा और श्यामू को हृदय से लगा लिया।

इति।

सत श्री अकाल।

लेखक—

श्रीयुत कालिकाप्रसाद चतुर्वेदी।

(१)

सूवेदार रणमर्दन सिंह ने एक ढीला पंजाबी पैजामा पहिना, सफेद अल्पाके का नीचा सा कोट पहिन कर, नीले मखमल के म्यान वाली जिस पर सुन्दर रुपहला काम हो रहा था कृपान डाली, और एक वड़ा सा काला साफ़ा बाँध कर तैयार हो गये। इसके वाद उन्होंने अपने वक्षस्थल पर क़ावुल की लड़ाई में मिला हुआ अपनी वहादुरी सूचक स्वर्णपदक लगा लिया। जिसको देखते ही कुछ काल के लिये वहाँ पुरानी घटनायें सजीव चित्र की नाईं सन्मुख नाचने लगीं। कावुल के दुर्गम मार्ग, असहनीय शीत, सिक्ख सेना की वीरता इत्यादि।

अन्त में जव साईस ने आकर कहा–'हुजूर! गाड़ा तैयार है' तो उनका विचार-वन्धन टूटा। उन्होंने अपनी वड़ी मोछों पर हाथ फेरा और तत्काल वाहर चल दिये।

सरदार रणमर्दन सिंह गण्यमान्य पुरुषों में से हैं। जन समुदाय तथा सरकार दोनों ही में उनका बहुत मान है। फौज में लगभग ३० वर्ष नौकरी करके सूबेदार के उच्च पद को प्राप्त हो कर, अपने पेन्शन लेकर शान्ति के साथ जीवन व्यतीत कर रहे हैं। सरदार जी उन महान पुरुषों में से हैं जो धर्म को जीवन से अधिक प्यार करते हैं, तथा साथ ही ब्रिटिश-सरकार को धर्म-रक्षक मानते हुए हृदय से उसके भक्त हैं।

गाड़ी में सवार होकर सरदार जी सीधे डिप्टी-कमिश्नर साहब के बँगले पर पहुँचे। चपरासी के हाथ उन्होंने अपना विजिटिंग कार्ड भेजा और तत्काल ही स्वयं साहब बाहर आकर उनको अपने साथ लिवा लेगये।

इधर उधर की बातें होने के थोड़ी देर बाद साहब ने सरदार जी के आने का कारण पूछा।

सरदार जी ने उत्तर दिया—"हमने सुना है कि हमारी सरकार और जर्मनी में युद्ध छिड़ गया है।"

डिप्टी कमिश्नर साहब ने कहा—"ठीक है।" और फिर उन्होंने लड़ाई छिड़ने का कुल हाल बतलाया। किस तरह जर्मनी ने असहाय बेल्जियम पर एकाएक चढ़ाई कर दी और किस तरह ब्रिटेन ने धर्म-रक्षा के लिये असहाय का पक्ष ग्रहण करके जर्मनी से लड़ाई छेड़ दी इत्यादि।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि सरदार जी धर्म के कितने प्रेमी थे। उस पर उन्होंने सुना कि सरकार धर्म के पीछे ही जर्मनी से लड़ने जा रही है। अस्तु थोड़ी देर पश्चात् बोले।

के अन्दर की यह आवाज बाहर आकाश में निकल कर यूरोप में और वहाँ से समस्त विश्व में फैल गई।

इस पताका को उठाने वाले केवल १५ भारतीय वीर सिक्ख सिपाही ही थे। जिस समय स्वयं बेलजियम सिपाही अपने देश को शत्रु के हाथ सौंप कर अपने तुच्छ प्राणों को लेकर किले से भाग चले थे, उस समय भी यह वीर जो कि रणभूमि से लौटना तो जानते ही नहीं थे, एक दूसरे मुल्क के लिये बलि होने को तत्पर थे। शत्रु ने उनको आत्मसमर्पण करने का अवसर दिया, किन्तु यह क्यों कर हो सकता था। देखते २ सब लोग धराशायी हो गये। केवल रणमर्दन सिंह को बेहोशी की हालत में कुछ अन्य सिपाही बाहर निकाल ले गये।

(३)

परम पिता ने भी मनुष्य को कैसा विलक्षण बनाया है कि उसको दुःख के दिन बड़ी शीघ्रता से भूल जाते हैं। उस मनुष्य की वह अवस्था स्मरण करो जब वह पानी में डूब ही रहा था। ठीक उसी समय जब हमारा हाथ उसे सहारे को मिला था तो उसको हमारे इस हाथ का मूल्य मालूम था, किन्तु घाट पर आने के साथ ही वह हमें और ही दृष्टि से देखने लगता है, कैसी कृतघ्नता है।

बेलजियम के बाद ही फ्रान्स का नम्बर आया। जर्मन दल-बादल बराबर बढ़ता ही गया। फ्रान्स के लगभग एक तिहाई देश पर शत्रु का झण्डा लहराने लगा। कैसरी नक्कारे की आवाज़ पेरिस शहर को डावाँडोल करने लगी। वह सम

अंग्रेजों के लिये कैसे संकट का था यह हम आज किस तरह बतला सकते हैं।

किन्तु वह देखो पेरिस शहर में फ्रान्स निवासियों की कैसी भीड़ है, नर नारी बालक और वृद्ध के सिर ही सिर दृष्टि आ रहे हैं। सबके मुखों पर भावी संकट का आतंक छाया हुआ है, अपने देश की विपत्ति के लिये सभी विशेष चिन्तित हो रहे हैं। किन्तु इनके यहाँ इकट्ठे होने का क्या कारण है? यह भी अभी मालूम हुआ जाता है।

अहा वह देखो। सड़क के बीच में होकर वह थोड़े से बहादुरों की सेना जा रही है। फ्रान्स के वह नेत्र जो यूरोप अमरीका अफरीका और आस्ट्रेलिया के बड़े २ जवांमर्दों के सुसंगठित शरीर देख चुके थे, आज इन भारतीय वीर सिक्ख सिपाहियों के सुन्दर वदन पर मुग्ध हो रहे हैं। यही वीर अपना जीवन अर्पण करने जा रहे हैं, अपने लिये नहीं अपने देश के लिये भी नहीं, किन्तु उन्हीं असहायों के उद्धार के लिये, जिनकी भीड़ में होकर वह गुजर रहे हैं अपनी सरकार की आज्ञा पर, जो सदा विश्वास दिलाती रही, कि उसका अस्तित्व ही धर्म-रक्षा के लिये है।

भीड़ में कोलाहल मच गया। गुरुगोविन्दसिंह की जय भारतमाता की जय इत्यादि शब्द से पेरिस के मकान गूंजने लगे। इन शब्दों से पेरिस वासी मानों भारतीय सेना को युद्ध क्षेत्र में जाते हुए विदाई तथा प्रोत्साहन दे रहे थे।

अभी कल ही पेरिस शहर में इसी सेना ने गुरु गोविन्द सिंह का जन्मोत्सव मनाया था। गुरु ग्रन्थ साहब की पूजा शहर के टाउनहाल में हुई थी, वहाँ पर लेफ्टीनेन्ट कर्नल शमशेर सिंह ने पेरिस की जनता को सिक्खों का इति-

हाल बतलाया था। बस उसी दिन से पेरिस वासियों ने गुरुगोविन्दसिंह नाम तथा भारतमाताका नाम इतना स्मरण कर लिया था कि अब वह, सभी भारतीय सेनाओं का स्वागत इन्हीं शब्दों से करती है।

पेरिस से इस तरह बिदा हो कर यह सिक्खों की नं०५ रावलपिंडी डिवीज़न सेना उस मैदान में पहुँची जहाँ पर विश्व की बडी २ सेनायें भी शत्रु की भयकंर अग्निवर्षा के सामने अपना पैर जमाने में असमर्थ प्रमाणित हो चुकी थीं।

लैसले नामक ग्राम की नं० ५, ३ तथा ७ खाइयों में यह फौज लेट रही। इनके आसपास की सभी खाइयाँ शत्रु छीन चुका था. केवल नं० ११,१२ खाई, स्काटलेण्ड के कुछ बहादुर अभी तक घेरे बैठे थे। यदि यह पांचों खाई भी शत्रु छीन लेता तो पेरिस का बचना बड़ा ही कठिन होता।

इसी समय भारतीय सेना के कप्तान जनरल'ब्रे'को बेतार के तार से नं० ११, १२ खाइयों से सूचना मिली कि उनलोगों के पास रसद व गोला बारूद २४ घंटे से ज्यादा के लिये नहीं है। इस बीच में यदि सहायता न मिली तो वह आत्मसमर्पण करने को बाध्य होंगे।

चारों ओर शत्रु-दल। खाई में से अगर एक अँगुली भी ऊपर उठती तो शत्रु की गोली उसको पार कर देती। दोनों ओर की सेना पेट के बल लेटे २ अपनी दिन रात व्यतीत कर रही हैं. ऐसी अवस्था में यह सामान वहाँ कैसे पहुँचे ? कैसी विकट समस्या है।

अन्त में तै हुआ कि उन्हीं खाइयों में लेटे २ सिपाही लोग सामान के सन्दूकों को रस्सी से अपनी कमर में बांध कर खींचते २ ले जांय। कप्तान ने पूछा कि कौन २ लोग इस काम

के लिये तैयार हैं। उनको आशा थी कि उस काम को सिपाही ढूंढने में उनको सख्ती से काम लेना होगा। किन्तु इधर दूसरा ही हाल था, फौज की फौज ही जाने को तैयार थी। कमान ने सब कुछ समझाया कि सामान लेकर जाना या मौत के मुख में जाना एकही बात है, किन्तु उधर से उत्तर मिलता कि यह सबक तो हम उसी दिन सीख चुके थे, जब सिक्ख मजहब में पैदा हुए थे।

अन्त में कमान ने स्वयं फैसला किया, और २५ आदमी चुन लिये गये। इनमें रणमर्दन सिंह का नाम भी था। एक एक के भारी २ सन्दूकों को अपनी कमर से बाँधे यह लोग उन्हीं खाइयों में रेंगने लगे। भारतमाता के उन सच्चे सपूतों ने-पंजाब के नररत्नों ने-गुरु गोविन्द सिंह के सच्चे अनुयाइयों ने—अपनी छाती की रगड़ से फ्रान्स की रणभूमि में अपने देश जाति और धर्म को रेखा अंकित कर दी। वहाँ की हवा के एक २ झोंके से, मकानों की एक२ ईंट से तथा पेड़ों के एक२ पौधे से गुरुगोविन्द सिंह की जय निकलने लगी।

(५)

हाथ से गिरा हुआ पासा फिर पलट गया। शत्रु विजय-द्वार तक पहुँच कर भी मुंह की खाकर लौटा। अन्त में विजयलक्ष्मी ने ब्रिटेन को ही जयमाल पहिनाई। भारत ने भी बड़ी २ आशायें बाँधी, तथा उसके उन पुत्रों को जो यूरोप के रणक्षेत्र में जूझे थे खूब इनाम मिले।

सूबेदार रणमर्दन सिंह को भी Victoria Cross मिला, तथा उनकी एक टाँग लड़ाई में जा चुकी थी उसके बदले में उनको १००० रुपये साल की जागीर भी मिली।

यह सब तो मिला, किन्तु जो चीज़ भारत को उसकी सेवाओं के पारितोष में मिली वह थी रौलेट ऐक्ट। लेकिन चूंकि भारत में भी पंजाब विशेष साम्राज्य-सेवा कर चुका था अस्तु उसको इनाम भी विशेष मिला और वह था पंजाब हत्याकाण्ड।

जो बहादुर पंजाबी किसी दिन फ्रान्स के रणक्षेत्र में अपनी छाती के जोर से विश्व में सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित हो चुके थे, उनको अपने ही देश में अमृतसर की गलियों में छाती से रिंगवा कर नीचा दिखलाया गया। उन भारतीय रमणियों का जिनको साम्राज्य-सेवा के लिये यूरोप के रणक्षेत्र में जूझे हुए अपने प्रिय सम्बन्धियों का शोक अभी तक नहीं भूला था, उनका छोटे २ पुलिस कर्म्मचारियों द्वारा अपमान किया गया। जिन भूखे भारतीयों ने धर्म-रक्षा के लिये सरकार को शत्रुदल भस्म करने के लिये गोला बारूद बनाने के लिये स्वयं आधे पेट रह कर अपना धन दिया था। जब शत्रु पराजित हो गया तो वही बचा खुचा गोला बारूद जलियान वाला बाग में उन्हीं के ऊपर बरसा दिया गया।

यह तो था पंजाब का पारितोष किन्तु चूंकि सिक्ख लोग पंजाबियों में भी विशेष सरकार के कृपाभाजन उसकी सेवायें कर के बन चुके थे, इसलिये उनको इन सब से भी अधिक इनाम मिलना शेष था।

सरदार रणमर्दन सिंह ने यह सब दृश्य देखे। उनका चित्त एक क्षण को सरकार की ओर से विचलित भी हुआ। किन्तु फिर भी जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, सरदार जी उन मनुष्यों में से थे जो केवल धर्म को अति प्यार करते हैं, तथा जो सरकार में इसी धर्म के कारण अगाध विश्वास

३ दीनमें

'अरुणोदय'

सम्पादक—बा० शिवदान प्रसाद सिंह, बी०ए०, एल०

'अरुणोदय' हिन्दी भाषा का एक सार्वजनिक ... है। इसका मुख्य उद्देश्य देश की (राष्ट्रीय) शान्ति, और समृद्धि को बढ़ाना है। लेख ज़ोरदार, गम्भीर, उपयोगी होते हैं और प्रायः सबके पढ़ने योग्य होते ... कानून और अर्थशास्त्र के विषय भी रहते हैं। प्रत्येक ... भाषी प्रेमी को ग्राहक बनना चाहिये। नमूने का एक ... मुफ्त। वार्षिक मूल्य ३) रु० अग्रिम।

विज्ञापन दाताओं और क्रोड़पत्र बँटाने वालों को ... पत्र व्यवहार करना चाहिए।

मैनेजर—'अरुणोदय' मिर्जापूर।

अरुणोदय आफिस की पुस्तकें।

Personal Magnetiom Re. 1/4; Developement of power Re. 1; Art of Advertising Re. 1; Memory C... ture As. 12; Success in examinations As. 12; Evils ... Cigarette Habit As. 4, Postage exclusive.

नवीन उत्तम व्यवसाय (रियायती मूल्य) २) रु०, परीक्षाओं में सफलता ।≈), सफलता की प्रथम व द्वितीय सीढ़ी प्रत्येक ।); पार्क की सैर ≈), परिवर्तन ≈), राष्ट्रीय झंडा ... स्वदेशी का स्वराज्य ≈)॥ डाकव्यय अलग।

पता—अरुणोदय आफ़िस, मिर्जापूर।

श्री भारत धर्म महामंडल की एक मात्र
सचित्र मासिक मुख पत्रिका—

"निगमागम चन्द्रिका"

इसका सन् १९२४ का विशेषाङ्क बड़ेही महत्व का है। यह स्तम्भ वद्ध किया गया है। इस प्रकार अलग अलग स्तम्भ युक्त कोई भी हिन्दी का पत्र नहीं निकला। इसमें ८ स्तम्भ हैं। धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक और ऐतिहासिक इन चारों स्तम्भों में हिन्दी के प्रसिद्ध २ विद्वानों के लेख तथा कवितायें हैं। शेष चार स्तम्भ सम्पादकीय हैं। लीजिये, शीघ्रता कीजिये, नहीं तो पीछे पछताना होगा। इस ८ सारे रंगीन सब मिलाकर साल भरके ग्राहक बनेंगे उन्हें यह अंक अन्य अंकों की ही भाँति मिलेगा।

२॥) भेज कर ग्राहक बनने से आपको क्या २ सुविधायें होंगी।

१—अनेक धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक लेखों तथा सुन्दर २ कविताओं से परिपूर्ण पत्रिका आपको प्रति मास मिला करेगी।

२—आप महामंडल के सदस्य समझे जायँगे।

३—आपको समाज हितकारी कोष से विपुल धन की सहायता मिल सकेगी।

४—पंच देवताओं का दर्शनीय चित्र 'प्रमाण पत्र' स्वरूप मिलेगा।

५—महामंडल से प्रकाशित सम्पूर्ण ग्रन्थ पौनी कीमत में मिल सकेगी। कहिये इस से अधिक आप और क्या चाहते हैं। महामंडल के फार्म, नियमावली, कार्ड लिख देने से मुफ्त भेजी जाती है।

व्यवस्थापक—
"निगमागम चन्द्रिका" कार्यालय, बनारस कैण्ट

हथेली पर सरसों

ताकत की अपूर्व दवा।

यह दवा डाक्टर फ्रांस ने बनाई है जो मानि
इस दवा की दो बूंद मलाई या शहद में मिल
आध घन्टे के बाद वह ताकत पैदा होती है कि
मुश्किल हो जाता है। आदमी कैसाही नामर्द
क्यों न हो फौरन मर्द बन जाता है इस दवा की
एक बूंद खून को पैदा करके आदमी को सा
बना देती है। और पेशाब के साथ सफेद स
गिरना, धातु का पतला हो जाना, धातु का श
जाना, पेशाब का बार बार आना, दिमाग की
दर्द का रहना, चेहरे का रंग पीला पड़ जाना
धुन रोग जिसमें स्त्रियों का सूखकर कांटा सा
औलाद का न होना, गर्भ का गिर जाना, सफेद
का आना इन सब रोगों के दूर करने में
है। कीमत एक शीशी १॥) रुपया ३ शीशी के
मुफ्त डाक महसूल ॥)

पलंगतोड़ गोलियाँ।

एक गोली खाकर बरसों आनन्द उठाइ
र्जन ३)

पता—एस० एल० उस्मान एण्ड को, पोस्ट नं०

द अर्क के
कर खाने
इसका क
कमजोर बुड्ढ
एक बूंद द
द फौलाद
फेद धातु
पने में नि
कमजोरी स
और स्त्रियां
हो जाना,
सफेद पा
दवा अ
करीदार को
८। सूख
२१०, आगरा

बिजली के बल से क्या नहीं हो सकता !

बिजली लँगड़े को चला सकती है, बहरे को सुना सकती है, निर्बल के शरीर में बल पैदा कर सकती है। बहुत दिनों से डाक्टर लोग बिजली के बल से शरीर के दर्द को आराम कर रहे हैं। पर हाल ही में एक ऐसी अँगूठी तैयार की गई है कि जिसके बीच में बिजली बैठाई हुई है। अँगूठी को हाथ में पहनते से इसकी बिजली शरीर में इस तरह प्रवेश कर जाती है कि जरा भी मालूम नहीं होता। शरीर में प्रवेश कर खून में मिले हुए रोग फैलाने वाले कीड़ों को मार देती है। जिससे रोग जल्द आराम हो जाता है इसको बाईं हाथ की किसी उँगली में पहनना चाहिये। इससे दमा हैजा, प्लेग, महामारी, बवासीर, बावनजूल स्वप्नदोष कमर का दर्द, स्त्रियों के प्रदर रोग, प्रसूत रोग, धातु क्षीणता सुजाक, आतशक, गर्मी और इन्फ्लुएन्जा इत्यादि रोग शीघ्र आराम हो जाते हैं। इस अँगूठी को बूढ़ा, जवान, बच्चा, स्त्री, सभी को अपने हाथ में एक रखना चाहिये। मूल्य १ अँगूठी को १।) डा० खर्च १ से ८ तक ।=) आना।

इनाम भी पाइयेगा—१ मँगाने से १ जर्मन बायस्कोप, ४ मँगाने से १ सेट असली विलायती सोने का कमीज बटन, ४ मँगाने से १ सुन्दर जेबघड़ी, ८ मँगाने से १ सुन्दर सौन्दौला आठ कोना हाथ घड़ी गारण्टी ४ वर्ष। सोल एजेन्ट—

टी० एच० टी० कम्पनी पोस्ट बक्स नं ६११० कलकत्ता।

नामी एजेण्टों की जरूरत है।

झण्डू की

शुद्ध, सुन्दर, सुघड़ सलामत, सुगमता भरी, अचूक, सस्ती

आयुर्वेदिक दवाओं

के लिये।

सोने का मेडल और उत्तम प्रशंसापत्र

मिले हैं

जिन शहर या गाँव आदि में हिन्दी भाषा बोलने का प्र
है उन प्रदेशों में से झंडू के दवाओं का माँग पर
दिन प्रति दिन एक सी आ रही है। दूर देशों के मँ
वाले ग्राहकों का

समय और पैसा का बचाव

जिसमें हो जाय, और झंडू की दवाओं का प्र
अधिक प्रमाण से हो जाय, यह उमीद करके हम हर
हिन्दी प्रदेशों में हर जगह एजेन्सी स्थापन करने
इच्छा कर रहे हैं।

एजेन्सी के लिये आज ही लिखें:—

पता:—झण्डू फर्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड,

बम्बई नं० १२

आयुर्वेदिक दवाओं का सूचीपत्र आजही मँगाने को लिं

लिखे हुए हैं। जो इतने पढ़े लिखे नहीं हैं कि देश-दशा को स्वयं अनुभव कर सकें, ऐसे भोले भाले भाई अब भी भारत के ग्रामों में अधिकता से पाये जाते हैं।

अस्तु, एक दिन जब सरदार जी डिप्टी कमिश्नर से मिले तो कुछ शंका उनको हुई थी वह भी जाती रही। डि० क० ने उनको समझा दिया कि किस प्रकार भारत के थोड़े से झगड़ालू पढ़े लिखे मनुष्य अपने स्वार्थ के पीछे यह सब झगड़ा मचाये हुए हैं। तथा भोले भाले मनुष्यों को फँसा कर स्वयं दूर रहा करते हैं।

(७)

उन दिनों भारत में असहयोग का खूब ही दौर दौरा था, इधर सरकार का भी दमनचक्र चल रहा था। अमृतसर में सभाओं की जबानबन्दी करने को १४४ दफ़ा लग चुकी थी, उसी का उल्लंघन करने को आज जनता की ओर से सभा होने वाली है।

सरदार रणमर्दन सिंह भी जेब में पिस्तौल डाले तैयार होकर बाहर निकलने ही को थे कि उनकी स्त्री रतन-देवी ने उनका हाथ पकड़ लिया और पूछा,—"कहाँ जा रहे हो?"

सरदार जी ने उत्तर में बतलाया कि किसप्रकार यह कानून भंग करने वालों को दण्ड देने के लिये आज पुलिस कमिश्नर के साथ सभामंडप को जा रहे हैं।

रतनदेवी ने कहा,—"तुमको ही क्या पड़ी है जो झट सरकार के साथ चल देते हो, भला यह भी तो देखो कि संसार तुमको क्या कहता है।"

सरदार जी,—"मुझे इसकी क्या परवा कि कोई मुझे
क्या कह रहा है मुझे तो केवल साम्राज्य-सेवा करनी है।"

र०,—"बहुत तो सेवा कर चुके, उसी की बदौलत
यह लकड़ी की टाँग लगाये फिर रहे हो, अब कुछ चा
भाइयों के भी तो कहने को मानो, कुछ उनकी भी तो से
कर लो।"

स०—"देखो, यह थोड़े से पढ़े लिखे लोग सीधे सा
आदमियों को सरकार के विरुद्ध भड़काते फिरते हैं।
अगर वह उनको दंड नहीं देगी तो वह न्यायशीला अ
धर्मरक्षक सरकार जिसके राज्य में हम सब इतने सुखी
रहे हैं किस प्रकार कायम रह सकती है।"

र०,—"बस तुम्हारी सरकार का धर्म और न्याय
खूब देख लिया। उस बिचारी भिन्दर कुंवर का ८ वर्ष
बच्चा जालियान वाला में गोलियों से मार डाला,
खिलती हुई कली को तोड़ डाला, बिचारी का घर ही
बाद कर डाला।"

स०—"वह सब बुरी सोहबत का असर है, सरकार
दोष नहीं। उसे ऐसी जगह जाना ही नहीं था।"

र०—"और जब किसी अङ्गरेज ने तुमको गाड़ी में
उतर कर अपने को सलाम करने को कहा था तब क्या

स०—"वह जरा सी भूल थी, उस समय उसने मुझे प
चाना नहीं था।"

जो हो, सरदारजी वहाँ से चलकर Police Commissio
के साथ सभामंडप में पहुँचे। उस समय वहाँ पर सर
शमशेर सिंह वक्तृता दे रहे थे।

उन्होंने कहा—"यह नौकरशाही सरकार किसी

स्त नहीं है, हम अभी तक भूले रहे जो इसको अपना रक्षक [illegible] स्वामी मानते रहे। किन्तु इसने तो हमको हमारी सेवाओं [illegible] पूरा ही फल दिया। हमारा पीड़ित पंजाब दुःख से आज [illegible] कैसा कराह रहा है। क्या हमारे महाराज पंचम जार्ज [illegible] उन अत्याचारियों की करतूतें मालूम हैं जिनको उन्होंने [illegible]पनी रक्षा के लिये रक्खा हुआ है तथा जिनका पेट भी [illegible]रे ही पैसे से पल रहा है। किन्तु नहीं, महाराज को तो [illegible] यह लोग धोखे में डाले हुए हैं उनसे उनकी प्रजा की [illegible] अवस्था छिपायी जाती है। अस्तु, अब हम लोगों को [illegible] हो जाना चाहिये कि ऐसी सरकार को जड़ मूल से नष्ट [illegible] देंगे। अपने और महाराज पंचम जार्ज के बीच में अड़चन [illegible]लने वाली इस ऊँची दीवाल को खोद कर फेंक देंगे और [illegible]की सच्ची प्रजा बन कर आत्म-सम्मान के साथ जीवन-[illegible] भोग करेंगे।"

इतना कहना था कि पुलिस कमिश्नर ने उनको और [illegible]गे बोलने से रोक दिया। डंडों की मार पड़ने लगी, [illegible] २ सभामंडप तत्शून्य हो गया। सरदार शमशेर सिंह [illegible]पने १५ साथियों के साथ गिरफ़्तार कर लिये गये।

शमशेर सिंह ने रणमर्दन सिंह को देख कर कहा-" मुझे [illegible] होने का अफ़सोस नहीं है लेकिन इतना अफ़सोस अव-[illegible] है कि आप सदृश उच्च हृदय पुरुष भी अभी तक सरकार [illegible] चालों को नहीं जान पाये, और आज भी उसी की अँगु-लियों पर नाच रहे हैं।"

" रणमर्दन सिंह ने उत्तर दिया—"और मुझे आश्चर्य है कि आप ऐसे पढ़े लिखे लोग भी न जाने क्यों उस सरकार से घृणा विद्रोह कर रहे हैं जो सब प्रकार से हमारी सच्ची

शुभचिन्तक है। अगर फिर भी आपको कोई शिकायत हो तो साहब लोगों से कहो, देखो उसका तुरन्त ही इन्तज़ाम होता है अथवा नहीं, इस प्रकार व्यर्थ झगड़ा बढ़ाने से क्या लाभ।"

शम०,—"यही तो आपका भोलापन है। जो वैद्य स्वयं ही रोग को बढ़ा रहा है, उससे मरीज़ अच्छे होने की क्या उम्मेद कर सकता है? आज माँगते २ इतने दिन तो हो गये, किन्तु मिला क्या? सरदार जी, आप तो स्वयं होशियार हैं कुछ विचार कर भी तो देखिये।"

रण०,—"मैंने खूब विचार कर देखा। पंजाब हारने के पश्चात् ही सिक्ख लोग सरकार का साथ देने की एक प्रकार से कसम भी खा चुके हैं, मैं उसको भूल नहीं सकता। मैं तो केवल धर्म को मानने वाला हूं, तथा सरकार भारत में सब धर्मों को उनके कार्य्यों में पूर्ण स्वतन्त्रता देती हुई सब प्रकार से उनकी रक्षा करती है, हम लोगों का कैसा आदर सत्कार करती है। बस, मैं ऐसी सरकार का साथ छोड़ कर पाप में लिप्त नहीं हूँगा।"

पुलिस कमिश्नर ने भी सिर हिला कर कहा—"ठीक है, किसी के धर्म के काम में तो हम कभी गड़बड़ नहीं मचाता।"

इस पर शमशेर सिंह ने कहा—"यह सब बातें भी तभी तक ठीक हैं, जब तक अपने स्वार्थ में धक्का नहीं लगता। सूबेदार जी, किसी दिन आप भी देख लेंगे कि मेरा कह कहाँ तक ठीक है। एक दिन मैं भी आप ही की तरह इ सरकार का भक्त था, उसकी रक्षा में खून बहाने मैं भी का पेरिस गया था।

पुलिस ने ज्यादा बातचीत नहीं होने दी। वह प्रतिष्ठि

व्यक्ति हथकड़ी पड़े हुए अमृतसर की सड़कों में ही कर पैदल ही जेल को ले जाये गये।

(६)

सिक्खों ने भारत-सरकार की बड़ी २ सेवायें की थीं। १८५७ के गदर के समय जब यहाँ पर सरकार का सिंहासन डोल गया था, लग भग सभी देशी फौजें उनके विरुद्ध तलवारें उठा चुकी थीं उस समय केवल सिक्खों ही ने उनका साथ दिया था, तथा हम तो यहाँ तक कहने को तैयार हैं कि जब सरकार भारत से कूच करने को तैयार हो चुकी थी, उससमय सिक्खों ही ने इनको अपनी छाती और तलवार के ज़ोर से भारत में रोक रक्खा था। योरोपीय समर में तो उनकी बहादुरी की प्रशंसा स्वयं महाराज पंचम जार्ज तथा प्रिन्स-आफ़-वेल्स ही कर चुके थे। किन्तु फिर भी सिक्खों को अपनी सेवाओं के बदले में सरकार से सिवाय निराशा के और क्या मिला।

गुरु के बाग का अमानुषिक दृश्य प्रारम्भ हो गया, सिक्ख लोग अपनी सेवाओं का पुरस्कार पाने लगे। जो शरीर साम्राज्य सेवा में अर्पण होने को सदा ही प्रस्तुत रहे थे, उनको आज वह सरकार स्वयं ही उनके धर्म के कारण पैरों तले रौंदने लगी। कैसा भयंकर दृश्य है।

अमृतसर से ५ मनुष्य लंगर के लिये लकड़ी काटने को गुरु के बाग को जाते हैं उनके साथ में हजारों मनुष्यों की भीड़ है। बाग के चारों ओर हथियार बन्द पुलिस का पहरा है। स्वयं डि० क० पुलिस कमिश्नर के साथ उपस्थित हैं।

पाँचों मनुष्य निडर भाव से जहाँ से सदा लकड़ी काया करते थे। काटने को बढ़े। उन्होंने अपनी २ कुल्हाड़ी ऊपर उठायी, इधर पु० क० ने अपनी अँगुली उठायी। पुलिस के धक्के पड़ने लगे। पांचो मनुष्य धड़ाम २ पृथ्वी पर गिरने लगे। वृद्ध जवाहर सिंह को तो ऐसा धक्का लगा कि उनकी कुल्हाड़ी उन्हीं के सिर में घुस गई, खून की नदी बहने लगी। उसके बाद ही डंडों की मार शुरू होगई।

इसी समय दलगञ्जन सिंह ने जोर से 'गुरु गोविन्द सिंह की जय' की आवाज़ लगाई। एक अधिकारी ने झट आगे बढ़ कर उनके मुहँ में बूट की एक ठोकर देकर कहा, और जय बोलो। उस पर तो वह पांचो ही मनुष्य लगातार जय २ चिल्लाने लगे, इधर से उनकी प्रत्येक आवाज़ पर लात घूंसे और डंडे पड़ने लगे। यहाँ तक कि सब के सब बेहोश हो कर गिर पड़े।

इस अवस्था में पुलिस ने उनके सब कपड़े उतार कर उनको नंगा करके उनके पवित्र केशों द्वारा खींच कर उनको बाग के बाहर सड़क पर फेंक दिया।

सामने खड़ी जनता ने यह सब दृश्य बड़ी धीरता से देखा। लोगों की आँखों से खून बह रहा था, फिर भी सब लोग शान्त थे, यह महात्मा गांधी के अहिंसात्मक असहयोग का प्रभाव था।

किन्तु दूर पर भीड़ में खड़ा एक मनुष्य इन सब दृश्यों को और ही भाव से देख रहा था। उसके हृदय में क्रोध न था, पश्चात्ताप था सब लोग जब वापस लौटने लगे तो व्यक्ति भी चुपचाप विचार-सागर में गोता खाता हुआ

उनके पास पहुँच कर धीरे से कहा—"सूबेदार जी ! यह क्या है ?"

सूबेदार रणमर्दन सिंह ने उत्तर दिया—"कुछ नहीं, जिस प्रकार धर्म-रक्षा के लिये अभी तक सरकार की ओर से लड़ा था आज उसी धर्म के पीछे उसी सरकार से लड़ूंगा तथा अपनी सेवाओं का आप लोगों से पुरस्कार प्राप्त करूंगा ।"

डि० क० ने कुछ क्रोधित होकर कहा,—"किन्तु इसकी सज़ा भी मालूम है । तुमको फौजी कानून के अनुसार एक Traitor की तरह से गोली मार दी जा सकती है।"

सूबेदार जी ने भी इस पर कुछ उत्तेजित होकर कहा—"आपका कहना ठीक है, इसको मैं भली भाँति समझता हूँ। किन्तु आपको यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिन फौजी कानूनों के अनुसार Traitor को गोली मार दी जाती है, उन्हीं के अनुसार वह पूरी फौज की फौज जो अपने देश का द्रोह करती है, जिनके पैसे से पलती है उन्हीं पर अत्याचार करने का हौसला करती है, तोप के गोलों से उड़ा दी जाती है।" इतना कह कर सूबेदार जी ने ज़ोर से गुरु गोविन्द सिंह की जय की आवाज़ लगायी।

डि० क० ने क्रोधित होकर पास में खड़े एक पुलिस कर्म्मचारी से कहा—"तुम खड़ा २ देखता क्या है।"

बस क्या था, ६० वर्ष के वृद्ध जीवनपर्य्यन्त सरकार के अनन्य भक्त रहने वाले सूबेदार रणमर्दनसिंह का स्वागत ठोकरों और डंडों से होने लगा। कल जो दृश्य आँखों से देखा था आज उसको भली भाँति अनुभव कर लिया।

बेहोश हो जाने के पश्चात् वह भी जेल में भेज दिये गये।

हां उनको पाठकों के पूर्वपरिचित सरदार शमशेरसिंह मिले। सूबेदार जी को जेल में देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ, तथा उसका कारण पूछा।

सूबेदार जी ने उत्तर दिया—"कुछ नहीं, पश्चात्ताप करने जेल में आया हूं।" इतना कहते २ उनका गला भर आया, आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। उन्होंने शमशेरसिंह को छाती से लगा लिया और प्यारे से कहा—"शमशेरसिंह! सचमुच मैं अभी तक भ्रम के समुद्र ही में डूबा था।"

इति।

पढ़ो और हँसो।

लेखक—

श्रीयुत त्रिपुरारीशरण श्रीवास्तव।

(१)

एक दूकानदार ने अपनी दुकान पर बड़ा सा आईना लगा रखा था। लोगों ने उसका सबब पूछा, तो बतलाया कि मुझे इस तजरुबे में बहुत कामयाबी हुई है—नौजवान औरतें जो अकसर सौदा लेने आती हैं तराजू की डंडी पर बिलकुल नज़र नहीं रखतीं और इस तरह मैं उनको कम सौदा हवाले कर देता हूँ।

(२)

एक विद्यार्थी (दूसरे से)—'आई डोंट नो' के क्या मानी हैं। दूसरे ने बताया "मैं नहीं जानता।"

पहिला—"वाह इतना पढ़ गये मगर काठ के उल्लू रहे। ज़रा से जुमले के मानी न बता सके।"

(३)

एक आनरेरी मजिस्ट्रेट के पास एक मुकदमा पेश हुआ।

इस अङ्क के गल्पों की सूची।

१—दानपात्र-[ले०, श्रीमान राय कृष्णदास जी ... ३५१
२—अभागिनी-[ले०, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा ... ३५७
३—होली में नई बहू-[ले०, श्रीयुत विश्वम्भरनाथ जिज्जा ३६९
४—पतिदेव-[ले०, श्रीयुत गोपालराव देवकर ... ३७२
५—विनोद-[ले०, श्रीयुत 'गुप्त' शिक्षक ३७६
६—कलेक्टर की होली-[ले०, श्रीपाण्डेय वेचन शर्मा 'उग्र' ३८१
७—गुरुबाबा की होली-[ले०, श्रीयुत 'त्रिदण्डी' ... ३८८

गल्पमाला के उद्देश्य और नियम।

१—इसका प्रत्येक अङ्क प्रति अंगरेज़ी मास की १ ली तारीख़ को छप जाया करता है। जो सब मिला कर सालभर में ७०० से अधिक पृष्ठों का एक सुन्दर ग्रन्थ हो जाता है।

२—रानी, तथा राजा और महाराजाओं से उनकी मान-रक्षा के लिये इसका वार्षिक मूल्य २५) रु० नियत है।

३—इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से २॥) है और वी० पी० से २॥।) है। भारत के बाहर ४) है। प्रति अङ्क का मूल्य ।=) आना। नमूना मुफ्त नहीं भेजा जाता है।

४—'गल्पमाला' में उसके गल्पों ही द्वारा संसार की सब बातों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

५—मौलिक गल्पों को इसमें विशेष आदर मिलता है। पुरस्कार देने का भी नियम है।

मई १६२४ में छपने वाले गल्प।

१—माँ-[ले०, श्रीयुत ब्रजनाथ रमानाथ शास्त्री।
२—रूपा-[ले०, श्रीयुत गिरीशदेव वर्मा।
३—पढ़ो और हँसो-[ले०, श्रीयुत 'विनोदी'।

दानपात्र ।

लेखक—
श्रीमान राय कृष्णदास जी ।

(१)

यु एक चित्रकार अपनी कृतियाँ महाराज को दिखा रहा था। सम्राट् उन्हें ध्यान से देख रहे थे—देखकर प्रसन्न हो रहे थे—वास्तव में उसके चित्र मनोहर थे।

वे बारबार प्रशंसा कर रहे थे।

चित्रकार के मुख पर प्रसन्नता खेल रही थी। वह साँवला कुछ कुछ चेचकरू था, किन्तु उसकी छवि बड़ी ही ...ली थी। गालों तक घुँघराली लटें लहरा रही थीं, आँखों ...स था, भाव था, कल्पना थी। हाँ, प्रसन्नता से इस समय ...की लुनाई दूनी हो उठी थी।

अपनी प्रशंसा सुनकर वह नत हो रहा था। वह नहीं ... कि वह नम्रता शालीनता की थी या अहंकार की।

क्योंकि आत्म-प्रशंसा सुनकर जो नति होती है वह अहंकार ही व्यक्त करती है, नम्रता कृतज्ञता वा शालीनता नहीं।

*   *   *   *

सम्राट को केवल एक संतान थी–एकमात्र कन्या। वही षोड़शवार्षिकी कन्या इससमय कहीं से आकर पिता के पीछे खड़ी हो गई। वह भी चित्रकार की कला देखने लगी।

चित्रकार ने राजकुमारी पर एक निगाह डाली। उसके सौन्दर्य का क्या कहना राजकुमारी जो ठहरी, एक बार देख कर वह रह न सका। राज-कन्या के सौन्दर्य ने चित्रकार से हठात् एक और निरीक्षण छीन लिया। वह सिहर उठा। उसके सारे शरीर में बिजली दौड़ उठी।

कुमारी की आँखें चित्रपर गड़ी थीं, पर वह कनखियों से चित्रकार का निरखना भी देख रही थी! उसके गालों पर लाली दौड़ गई।

सम्राट् ने चित्रकार से कहा—"हमारे यहाँ जो पुराने चित्राधार है, उन्हें तुम छाँट दो। चित्रों को विषय और कला के अनुसार लगा दो और जिन चित्रों में कला की अभिव्यक्ति न हो, उन्हें अलग कर दो।"

चित्रकार ने हाथ जोड़कर, नत होकर, आज्ञा शिरोधार्य की।

सम्राट बोले–"तुम्हें यह काम इसी महल में, हमारे निजी पुस्तकालय में बैठकर करना होगा कि हम भी कभी कभी आकर तुम्हारा काम देख लिया करें।"

चित्रकार की प्रसन्नता का कोई ठिकाना

(२)

चित्रकार राजकीय संग्रह के बीसों चित्राधार फैलाए हाराज के वाचनालय में बैठा है। किन्तु उसका चित्त काम में नहीं लगता। उसे सारा संसार सूना जान पड़ता है।

आज फिर कहीं से राजकुमारी आ पहुँची। उसने पूछा—"क्यों हाथ पर हाथ दिए बैठे हो।"

"विचार कर रहा हूँ कि कैसे काम करना चाहिए।"

राजकुमारी खिल खिलाकर हँस पड़ी—"इसमें विचारना क्या है!" वह हँसती हँसती, आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से चित्रकार को देखती हुई चली गई।

वह सहज-हँसी, वह अकृत्रिम हँसी, वह निर्मल हँसी, वह चुलबुलेपन की हँसी और वह कुतूहलपूर्ण दृष्टि चित्रकार का हृदय बेध गई।

* * * *

चित्रकार ने चित्राधारों से चित्र अलग अलग कर डाले, फिर उन्हें छांटने लगा।

बीच में एक बार सम्राट् आए, उन्होंने देखा कि चित्रकार चित्रों के कई ढेर लगाए बैठा है, पर उन ढेरों में कोई क्रम नहीं। हर ढेर में मिली जुली कलम के अच्छे बुरे चित्र हैं।

सम्राट ने पूछा—"यह क्या कर रहे हो?"

"देखता हूँ कि कैसे ठीक होगा।"

सम्राट चुपचाप चले गए।

(३)

धीरे धीरे संध्या हो चली। वह कभी इस ढेर से उसमें

उसमें से इसमें चित्र रख रहा था। मालूम नहीं होता था।
उसका कार्यक्रम क्या है।

इसी समय राजकन्या आ पहुँची। पश्चिम आकाश व
लालिमा फूलदार काँच के पल्लों और आलमारी के हल्क
शीशों पर आलोकित हो रही थी। उसकी आभा से उ
कमरे का सुनहला काम और भी गहरा हो उठा था।

उसने अल्हड़पन से पूछा—"कहो कुछ छाँटा?"

"कुमारी, यह एक दिन का काम नहीं है"

कुमारी ने देखा कि उसका मुंह पीला पड़ रहा है। उस
पूछा—"लो फूल लोगे"। उसके हाथ में कई तरह के फूल
संभवतः अभी वह उद्यान से घूमकर आई है।

"नहीं फूल न लूँगा।"

"मेरे हाथ से भी नहीं?"

"नहीं, तुम्हारे हाथ से भी नहीं"

"क्या मैं इस योग्य नहीं?"

"नहीं मैं ही इसका अधिकारी नहीं"

"क्यों, तुम तो कलावन्त हो। यदि तुम इसके अधिकारी
नहीं तो और कौन?"

"हाँ, कलावन्त हूँ। इसीलिये तो अधिकारी नहीं। इस
का अधिकारी तो कोई प्रकृति का प्रेमी हो सकता है। कला
का जगत् तो कृत्रिमता है।"

कुमारी ने फिर घिघिया कर कहा—"लेलो।"

चित्रकार की आँखे ज़मीन पर गड़ी थीं। वह न मालूम
किन किन विचारों में डूब रहा था। उसी दशा में उसने सवि-
नय कहा—"कहता हूँ हठ न करो"

चित्रकार ने कुमारी को "तुम" कह दिया। पर यह, न उसेही खटका न कुमारी को।

कुमारी ने हठ किया, आग्रह किया, आज्ञा दी, आदेश किया, विनय किया, अनुनय किया, कोप किया, धमकी दी; क्षत्रिय-कन्या का मुंह आरक्त हो उठा, पर चित्रकार पिपासित दृष्टि से उसका मुंह देखता भर रहा।

तब राज-कन्या वाचनालय के किवाड़ से लग कर रो उठी। फिर भी चित्रकार उसे ज्यों का त्यों देखता रहा। रुदन स्त्रियों का अन्तिम अस्त्र है।

कमरे में अन्धकार फैल रहा था। सिंह-पौर पर शहनाई बज उठी और चित्रकार भी उठ खड़ा हुआ। अब फिर उसकी निगाह ज़मीन पर गड़ी हुई थी।

कुमारी उसको ओर सकरुण नयन से देखने लगी, पर द्वार के बाहर निकल गया। राजकुमारी भी बाहर आई उसने कहा—"ठहरो—" पर चित्रकार आगे बढ़ता गया।

ज्यों उसने नीचे के खण्ड में जाने के लिये सीढ़ी पर पहिला पैर रक्खा, ठीक उसी समय सारे प्रासाद में विद्युद्दीप जल उठे।

राजकुमारी ने उस कृत्रिम आलोक में देखा कि यह तो पहिचान भी नहीं पड़ता। उसकी लटों की छाया में उसका रूखा मुंह देखकर राजकुमारी कातर हो उठी। उसने रुदन करते हुए फिर भी कहा—"ठहरो—"

आह! इन तीन अक्षरों में कितनी पुकार भरी थी। वही पुकार, वही अवलम्ब-याञ्चा, जो डूबते मनुष्य की गुहार में होती है। पर, चित्रकार उतरताही गया।

कुमारी संगमरमर के जँगले का सहारा दिए पत्थर के

कलेजे से यह देख रही थी । अबला के ही हृदय में इतना ब
है कि ऐसी अवस्था में पाषाण बन जाय ।

चित्रकार सीढ़ियाँ तै करने पर उसकी आँखों की ओ
होगया । तब मातल की तरह लड़खड़ाती और घायल
समान गिरती पड़ती कुमारी, झरोखे की ओर, बावलो
तरह झपटी ।

अस्तङ्गत सूय के बचे खुचे धूमिल उँजाले में, उसने सं
के दिए की तरह टिमटिमाती और हसरत भरी निगाह से
देखा कि चित्रकार राजमार्ग पर चला जा रहा है । उस
चाल पुतले की तरह बेजान है । वह बिलबिला उठी ।

जिसतरह केन्द्रच्युत तारा आकाश में प्रकाश की ध
क्षणिक रेखा करता हुआ जाने कहाँ बिला जाता है उ
तरह वह कलावन्त भी राजकुमारी के देखते देखते ओझ
हो गया ।

साथही शून्य प्रकृति उदासी की जम्हाई ले उठी ।

इति ।

अभागिनी ।

लेखक ।
श्री परिपूर्णानन्द धर्म्मा 'शान्त' ।

['हा दुर्दैव !' संख्या २]

(१)

उस समय वह, माँ निद्रा की गोद में खेल रही थी। हाँ--वही माँ निद्रा जिसके अङ्क में धनी-निर्धन-सब को आश्रय है। चिन्तातुर नरपति उसी की शरण में जाकर अपने चित्त के बोझ को हलका करता है। दुःखातुर भिक्षुक उसी की शरण में जाकर अपने क्लेश को, आपत्तिग्रस्त तथा व्यथित हृदय की अग्नि को, भोजनाभाव से जनित—पेट की क्षुधा ज्वाला को सब को शान्त कर देता है। माता का अङ्क सब के लिये खुला है—आओ-बैठो, चैन करो, बालकों के समान खेलो—और सुख दुख को भुला लो, हल्का कर लो।

-- हाँ—उसी माता निद्रा के अङ्क में वह भी, जी कुछ हल्का कर रही थी। अभी २ दो मास भी पूरे न हुए। उसने अपना कुछ किसी को दिया था, समर्पित किया था, पदाम्बुजों पर भेट चढ़ाया था—और उसने—उस विश्वासघाती ने, उसे

स्वीकार कर लिया था—उस रत्न को सप्रेम, सहर्ष ग्रहण कर लिया था, पर अन्त में जब कि सुख का पारा बहुत ऊँचा हो गया—वह भाग-गया—चला गया। कहाँ, यह मालूम नहीं। पर हाँ यह अवश्य विदित है कि वह इतनी दूर भागा कि अब उसे पकड़ना असम्भव है। वह चोर था, चुरा कर भाग गया। कृष्ण के समान गोपियों का हृदय लेकर—पर नहीं! कृष्ण तो अधिक दूर नहीं गये थे, उनसे मिलने की आशा थी। पर वह! वह ठग? बड़ी दूर! इतनी दूर कि पकड़ना असम्भव है। वहाँ भागा। अन्तरिक्ष में ही सम्भवतः गया होगा। पर वह जिस वस्तु को ले गया क्या वह लौट सकेगी? वह क्या था? कुछ नहीं, केवल एक अज्ञात पवित्र युवती का युवा हृदय!!!

अस्तु, तो वह अपने हृदय के खोजाने से परम दुःखित हुई। वह इसे सहन न कर सकी। उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया। उसने शय्या की शरण ली। पर उसको यद्यपि अपनी भयंकर हानि का अनुभव होता था परन्तु तब भी उस भोली को परमात्मा से मृत्यु की प्रार्थना करना न आया। यदि उसे विदित होता कि मृत्यु से उसका सम्पूर्ण दुःख छूट जायगा तो वह उसके लिये प्रस्तुत हो जाती। पर उसे विदित ही न था। इसी कारण प्रार्थना न कर सकी। यदि करती तो सफल भी होती। क्योंकि बीच में दशा बहुत खराब हो गयी थी। पर ज्यों त्यों कर के, पिता—धनी पिता के शतशः रुपये बर्बाद करा डाले—पर धन्य ईश! अभी तक तेरा वह सुन्दर जीव जीवित है। वह बच गया। सम्भवतः तुझे उसकी सुन्दरता पर दया आ गयी हो। वह इस समय स्वस्थ थी। इस समय उसके बीमारी द्वारा उत्पन्न कमज़ोरी ने साथ छोड़ दिया था। उस घातक का दगा भी ~ था।

पवित्र चेहरे में स्वाभाविक सुन्दरता होती है। उसे गहना नहीं चाहिये, तिलक नहीं चाहिये, तेल फुलेल नहीं चाहिये— केवल पवित्रता चाहिये। पर यहाँ तो पवित्रता के साथ भोला-पन भी था। सोने में सुगंधि थी। वह कितनी सुन्दर थी। पर सोने में सुन्दरता और भी बढ़ती है सुत मुख कितना भावमय प्रतीत होता है—तो क्या उससमय संसार की सम्पूर्ण सुन्दरता उसी में व्याप्त हो रही थी।

हाँ! यह ठीक है! उस समय वह परम सुन्दरी बनी हुई थी। यदि ऐसा न होता तो ब्रजभूषण खड़ा एकटक उसकी तरफ देखने न लगता। हाँ! वही ब्रजभूषण, जो स्त्रियों को देख-कर आँख नीची कर लेता था। वही सदाचारी-संयमी, तपस्वी ब्रह्मचारी तथा जितेन्द्रिय २१ वर्ष का नवयुवक ब्रजभूषण उसको—उसकी रूप-आभा को, लावण्य-द्युति को देखने के लिये क्यों खड़ा हो जाता। पर चाहे जो हो! वह तो रुक गया और उसे देखने लगा—वह भी रूप का ध्यान था। सुन्दरता का स्वरूप था। सदाचार जनित आभा का पोषक था। वह उसे-उस भोली सुन्दरी अप्सरा (छिः) [कितना घृणित शब्द है] सती सीता का एक टक देखने लगा। यह अनुचित था। बुरा था। सभ्यता के खिलाफ़ था। पर क्या उसे इसका ध्यान था। वह भी पवित्र था— पर...... कितना मनोरम भाव है!!!

(२)

श्यामानन्द महोदय सुलोचना के पिता के एक दूसरे मित्र थे। हम पूर्व ही कह आये हैं कि उस युवती (सुलोचना) के पिता आधुनिक पश्चिमी विचार के मनुष्य थे। उनकी

राय में युवक युवतियों का विवाह निश्चय करना पितामाता का काम न था। वे इस कार्य को स्वयं युवक युवतियों के हाथ सौंपना चाहते थे। हाँ, पिता माता की देख रेख तथा समुपयोगी शिक्षा दीक्षा देते रहना भी उचित मानते थे। एक बार उन्होंने अपनी कन्या का प्रेम अपने एक मित्र के पुत्र से उत्पन्न करवाने का प्रत्युत प्रयत्न किया था। सफल भी हुए थे पर विधि ने सब कार्य पर पानी फेर दिया। सारा प्रयत्न व्यर्थ निकला। सुलोचना ने कभी विवाह न करने का निश्चय किया था। पर पिता जी जानते तथा समझते थे कि वह अभी अज्ञात है। उसे अपनी प्यास की पूरी थाह नहीं। वह अवश्य अपनी भूल समझेगी।

इसी भावना से उन्होंने, दूसरा नाटक प्रारम्भ किया पर अबकी उपाय दूसरा था। उस पूर्व प्रेमी युवक की मृत्यु के बाद से उसने पुनः कभी मन्दिर में जाने का आग्रह किया था। करती भी क्यों। वह ध्यानमग्न युवक अब कहाँ मिलता! युवक नेत्र (अर्थात् युवावस्था प्राप्त नेत्र!) ढूंढते ही हैं—किसी न किसी को लक्ष्य करते ही हैं—चाहे प्रेम से, वैराग्य से! अनुरक्ति या विरक्ति से।

हाँ! पिताजी ने अपने मित्र से सलाह करके व्रजभूषण को अपने एक कार्य से घर बुलाया। मुख्य उद्देश्य गुप्त रक्खा। यदि किसी पर प्रगट था तो स्वयं उनपर, उनकी सहवासिनी धर्मपत्नी पर, तथा व्रजभूषण के पिता पर, माता पर नहीं। माता पुराने विचार की थी। यदि सुनती तो अपने पुत्र को कदापि न जाने देती।

व्रजभूषण आये। उस समय सुलोचना के पिता भीतर थे—ठीक उस कमरे के बाद जिसमें वह सो रही थी। नौ

ने युवक के आने की सूचना दी। सूचना मिलनेही आज्ञा हुई कि यहीं लिवा लाओ। ब्रजभूषण को क्या मालूम कि उसे किसी भयानक पाश में बद्ध किया जा रहा है। वह निस्सङ्कोच चला गया—और उस बाला—युवती अथवा सुन्दरता की प्रतिमूर्ति के सन्मुख ठिठक कर खड़ा हो गया। वह दो मिनट तक खड़ा रहा। इसी समय उस सुन्दरी की माता ने आकर कहा—"आओ बेटा। चले आओ। सङ्कोच क्यों करते हो!"

"आह! मुझे इस रूप-लावण्य का अध्ययन करते देख लिया। मैं कितना असभ्य था। हाय भगवन्! इनके हृदय में मेरे प्रति क्या भाव उदय हो गये होंगे।" यह सोच मारे लज्जा के उसका मस्तक झुक गया। वह लज्जा के मारे मरता हुआ उसके पिता जी के पास पहुँचा। उन्होंने बड़े सत्कार से कहा—"आओ बेटा!"—युवक लजाता हुआ बैठ गया। बात करते २ अपने असली उद्देश्य पर आने के लिये पिता ने नम्रता पूर्वक पूछा—"बेटा! कहो आज कल पढ़ाई लिखाई का क्या हाल है?"

"जी! अच्छा है! अभी परीक्षा समाप्त हुई है। अब तो कुछ दिनों तक आराम मिला।"

"तो क्या बेटा! आजकल कुछ समय तुम्हें बचता है?"

"जी हाँ! क्यों नहीं!"

"तो क्या मेरा एक काम करोगे! तुम्हें तकलीफ़ तो न होगी।"

"जी नहीं! कहिये क्या सेवा है?"

"हाँ बेटा! तुम्हारे पिता जी से मैंने आज्ञा ले ली है। काम यह है कि तुमने तो देखा ही होगा मेरी बच्ची कितनी कमजोर हो गयी है। वह उस कमरे में है। तुमने तो रास्ते

में आते देखा होगा। (यह सुनकर ब्रजभूषण का मस्तक झुक गया। उन्हें स्मरण हो आया कि बाला के माता ने उसका रूप-पान देख लिया है।) यद्यपि अब वह बीमार नहीं है। पर तब भी डाक्टरों की राय में उसका संध्या का घूमना भी आवश्यक ही है। वे कहते हैं कि वहाँ जाकर स्वयं टहले। पैदल घूमे! तुम बेटा समझते ही हो कि आज कल समय बड़ा बुरा है। किसी गैर पर विश्वास किया नहीं जा सकता। हमको अपने काम से ही फुर्सत नहीं मिलती, अतएव तुम्हीं एक ऐसे मिले जो इस काम को कर सकते हो। देखो! बेटा, यह पर उपकार का काम है।"...

अब तक ब्रजभूषण चुपचाप सुनता रहा। ज्योहीं उसने अन्तिम वाक्य सुना, चौंक उठा। उसने अपने को रोकना चाहा, पर न रुक सका—अचानक उसके मुख से निकल ही गया—"पर... ।"

"पर! क्या बेटा! सङ्कोच क्या है। तुम भी तो मेरे बच्चे हो...यदि नित्य प्रति मेरी मोटर पर घुमा लाया करोगे तो बड़ा उपकार होगा।"—

ब्रजभूषण ने स्वीकार कर लिया। उसने चाहा कि 'नहीं' कह दे, पर नहीं कह सका। कहता कैसे! वह युवक ही था। युवा हृदय था। साथ ही आकर्षित।

यदि अस्वीकार करता तो कितनी मूर्खता होती?

* * * * * *

दो एक दिन माता भी संग में घूमने गयीं। तीसरे दिन स्वास्थ्य का बहाना करके न गयीं। पीछे काम का बहाना कर जाना बन्द कर दिया। घूमने जाना होता ही ब्रज-भूषण निरन्तर अपने को उस जाल में फंसा

वह बचना चाहता था। पर अब क्या हो सकता है एक अंग्रेज़ी कहावत है कि, " Love will find a way !"

(४)

और सुलोचना! जब उसने यह सुना कि उसे एक युवक के साथ घूमने जाना होगा तो वह पहले बड़ी कुपित हुई। मनही मन रुष्ट हुई। इसका एक मात्र कारण यह था कि जिस दिन से उसने अपने उस हृदय-धन को खोया है उसका मन उचाट हो गया है। आज जब उसने जाने का समाचार सुना वह अत्यन्त रुष्ट हुई। पर ज्योंही उसने उसको देखा जिसके संग उसे जाना था तो उसका क्रोध अनायास ठण्ढा होगया। वह कुछ शान्त हो गयी।—उसे पूर्व युवक की मूर्ति कुछ क्षण के लिये भूल गयी।

पहले दिन वह घूमने के समय पूर्ण विरक्त बनी बैठी रही। तीसरे दिन से विरक्तत्व में कुछ कमी होने लगी। उसने इसका अनुभव किया। पर लाख चेष्टा करने पर भी वह अपने को विरक्त न बना सकी। सातवें दिन तक विरक्तत्व पूर्ण अनुरक्तत्व में परिणत हो गया। इसमें उसका दोष न था—यह था उसकी प्यास का अपराध। बिचारा मन्दिर का ध्यानी युवक भूलने लगा।इससे उसकी निष्कपटता में धब्बानहींलगता

* * * *

थोड़े में बहुत समझना !!!

(५)

आज घूमने जाते २ एक मास हो गये। व्रजभूषण के पिता ने अपनी स्त्री को इसप्रकार सिखाया पढ़ाया कि वह भी कुछ न बोली।

और इधर प्रेम-पाश की डोरी जकड़ गयी। एक दूसरे का प्रेम परिमार्जित होकर स्पष्ट हो गया। सङ्कोच, धो कर बहा दिया गया।

* * * *

शुभ्र चन्द्रज्योत्स्ना के प्रकाश में, ७ बजे संध्या समय माघ की पूर्णिमा के दिन सुलोचना तथा ब्रजभूषण उद्यान में घूम रहे हैं। कितनी सुन्दर ! कितनी भावमय ! कितनी उत्तम ! युगल जोड़ी। दोनों पढ़े लिखे थे। अस्तु सामयिक राजनैतिक प्रसङ्ग पर बात कर रहे थे।

अचानक ब्रजभूषण रुक गया। पास के घने घास पर बैठते २ वह बोला !—"तुम भी बैठ जाओ ! मैं तो टहलते टहलते थक गया।"

हाँ अवश्य जीवन यात्रा से भी थक गये होंगे। क्यों! यह अशुभ क्यों ! इसीलिये कि उस घने घास में एक विषधर सर्प था। उसने ! उस यमदूत ने, उस सुन्दरी के हृदय के दूसरे Body guard (शरीर रक्षक) को संसार से छीन लिया—वह 'उफ़' कह कर गिर पड़ा। हा अभागिनी!

इति।

होली में नई बहू।

लेखक—
श्रीयुत पं० विश्वम्भर नाथ जिज्जा,
स० सम्पादक—'दैनिक भारतमित्र'।

(१)

बालम जो दबाये, तो तुम किलकारियाँ मारो।
फेंके जो वह अबीर, तो पिचकारियाँ मारो॥

होली में नये बालम से मिली। दिल की मुरादें चिहुँक उठीं। अरमान सहसा उभर आये। क्या करने के लिये प्राण की अभिलाषाएँ कुछ कहने लगीं! कामिनी रंग घोलते हुए ज़रा मुस्करायी।

पर सहसा, हिम्मत पस्त हो गई। तबियत लस्त हो गई! क्या कुछ सोचते सोचते नयी बहू कामिनी का रंग ज़र्द पड़ गया!

"नयी बहू! नयी बहू!" पुकारती हुई कई कुल-कामिनियाँ आईं। एक ने आते ही किवाड़ पर ज़ोर से लात मारी। किवाड़ खुल गये। सब युवतियों ने अन्दर जाकर देखा कि, नई बहू ज़मीन पर बैठी एक बालटी में रंग घोल रही है।

सब युवतियाँ खिलखिलाकर हँसने लगीं। एक ने व्यंग के लहजे में पूछाः—"नई बहू, यह रंग किसके लिये घोला

जा रहा है ? ये तुम्हारे कोमल कमल से हाथ पिचकारिय
किस पर बरसायेंगे ?"

नई बहू ने हँसी की चेष्टा दिखाते हुए, पर झेंपो हु
धीरे से कहाः—" हटो जी, हमसे यह न पूछो ! हमें वता
शर्म मालूम होती है... ... ..."

नई बहू ने आगे कुछ न कहा । एक मसख़री युवती बोली
"वाह, क्या खूब आपकी शर्म है ! बस, इस शर्म ही पर अग
कोई तुम पर न्योछावर होजाय, तो देखो नई बहू, तुम किस
को दोष न देना । तुम इस वक्त अजीब हो !"

यह बातें हो ही रही थीं कि नई बहू के पतिदेव अतो
रसिया वहाँ आ पहुँचे । हाथ में भरी पिचकारी थी
दर्वाज़े पर डट के खड़े हो गये ।

सब युवतियाँ हँसी के फुहारे छोड़ती कमरे से भा
निकलीं । रसिया ने उन्हें न रोका ।

नई बहू ज़रा घबराई, आन बान के साथ यौवन की शा
दिखाते हुए उठ खड़ी हुई । हाथ जोड़ के गिड़गिड़ाते हु
बोलीः—" मुझे इस कमरे से बाहर निकल जाने दो, तब र
छोड़ना, नहीं तो दरी चाँदनी ख़राब हो जायगी !"

रसिया ने मुस्कुरा के कहाः-"आज मैं तुम्हें अच्छी तर
ख़राब करूँगा, दरी चाँदनी क्या चीज़ है ? बस, संभल
खड़ी हो जाओ और मेरा हमला संभालो ।"

इस समय नई बहू को न जाने कब की हिम्मत याद
गयी । उसने चट रंग की बालटी उठा ली । कहाः—"देख
क़समिया खींच के मार दूंगी; जो पिचकारी छोड़ी होगी !"

पर, वहाँ ठहरने की त[illegible] थी ? रसिया ने तुर
[illegible] मारी, नई बहू [illegible] पिचकारी पड़ी ।

कुछ घबरा सी गयी। रसिया ने लपक कर उसके हाथ से बर-जोरी बालटी छीन ली। और, दूसरे हाथ से प्राणप्रिया को कमर से पकड़ लिया।

रसिया ने कहा:–"यह बालटी अभी तुम्हारे सिर उलट दूंगा, नहीं मुझे जो दिल में आये, करने दो। बस एक......"

नई बहू छटक के हाथ के बल से निकल गई। दौड़कर दुशालों के बक्स पर खड़ी होगई। बोली:—"देखो-देखो हजारों रुपये के दुशाले खराब हो जायँगे, जो रंग छोड़ा है।"

रसिया ने तुरन्त बालटी रखदी। इसबार झपटकरदोनों हाथों से बहू को पकड़ लिया। और प्रिया का चुम्बन लेते हुए कहा कि-"बस, इसीलिये तुम इतना डरती हो!"

नई बहू ने बाल सम्हालते हुए कहा:—"अच्छा, अच्छा, अब छोड़ दो, नहीं सास ननँद सब लडकियाँ क्या कहेंगी? मुझे जाने दो।"

रसिया ने हँसकर कहा:—"कहेंगी क्या! अच्छा मुझे यह बालटी डालने दो तब देखो वो क्या कहती हैं।"

प्रिया प्रियतम के हाथों से भागने के लिये छटपटाने लगी और घसीटा घसीटी करने लगी। अबकी रसिया ने उसे गिराकर दोनों टांगों में दबा लिया और ऊपर से रंग की बालटी उलटा दी।

रसिया ने उसे फिर छोड़ दिया। नई बहू रंग से नह कर लाल परी बन गयी थी। सौन्दर्य से भरा मुख लाज से सन उठा। पतली बारीक साड़ी शरीर के अवयवों से चिपक गयी थी। युग्म यौवनों की बहार हृदय लूट रही थी।

रसिया ने ललचायी हुई दृष्टि को सन्तुष्ट करते हुए

कहाः—"अब तुम चिल्ला कर गाओ, और नाचो, मैं हारमोनियम बजाता हूँ।"

कामिनी के लम्बे२ केश जो मुंह पर, और पीठ पर चिपक गये थे, उन्हें निचोड़ते हुए उसने झुंझलाकर कहा:—"अगर हारमोनियम इस समय छूआ तो मैं उसे तोड़ डालूंगी। मुझे हाथ में चोट लग गयी, मेरी कमर छिल गयी। देखो, गले के नीचे हंसली के पास छरछरा रहा है।"

रसिया ने तनिक चिन्तित होकर कहा:—"कहाँ छरछराता है?" रसिया ने देखा कि, कामिनी के हँसली के पास दो तीन नाखून लग गये हैं।

रसिया ने कहाः—"खून नहीं निकला, सिर्फ़ छिल गया है।"

कामिनी ने भौहें तान कर कहाः—"अगर ख़ून निकला होगा तो क्या लाल रंग से मालूम होगा। उफ़! बड़ा छरछराता है।"

रसिया ने उसे प्यार करते हुए कहाः—"जब नहाओगी तो अच्छा हो जायगा। अभी कुछ चिन्ता न करो।"

कामिनी अपनी साड़ी निचोढ़ चुकी। खिरकी में से आता हुआ पवन उसे सुखाने लगा। लालपरी कामिनी गर्वीली गोरी बनी दिल उड़ाने लगी।

रसिया ने मुस्करा के कहाः—"देखो, अब तुम देखने लायक हुई हो।"

नई बहू का हृदय इससमय किसी अनिर्वचनीय भाव से प्रसन्न होने लगा। यह पहली होली थी कि प्राणप्रियतम ने इस तरह दबाकर होली खेली। पर, ऊपर से रोष और असन्तोष दिखाते हुए ठमक के बोलीः—"दिल में कुछ और भी

अरमान बाकी हों तो पूरे कर डालो । लो, मैं तुम्हारे पास खड़ी हूँ।"

वह उनके पास खड़ी होगई। रसिया हट कर दर्वाजे की तरफ़ चला गया और उसने कहाः—"अब तुम मुझ से दूर ही रहो, यह रंग में भरी देह मुझ से न चिपटाना।"

नई बहू को सहसा प्राणधन के हृदय से, लिपट जाने की दिल्गी सूझी! उसने हाथ आगे बढ़ाए, पर रसिया इसी समय भाग गया।

(२)

दिन का तीसरा पहर। होली में मस्त कुलकामिनियाँ एक दूसरे पर रंग छोड़ कर अघा चुकी थीं। नई बहू कामिनी का साथ किसी ने न दिया।

एक सरला नाम की सखी ने नई बहू से सहानुभूति दिखाई। सरला ने कहाः—"तुम फिर रंग घालो। चलो, मैं घोल देती हूँ, और देखती हूँ कि वह कैसे छोनते हैं।"

नई बहू सरला को साथ लिये अपने कमरे में गई। उसने उसे एक रंग की बड़ी पुड़िया दी। बालटी भर के चुपचाप पानी ले आई। उसी बालटी में फिर रंग घोला।

नई बहू ने कहाः—"उन्हें कोई दबाकर पकड़ता तो मैं उन्हें नहलाती।"

सरला ने कहाः—"नहीं, मैं एक काम करती हूँ। रसिया इससमय अपने कमरे में होंगे। मैं बाहर से कुंडी लगा देती हूँ तब तुम खुली खिड़कियों में से उनपर पिचकारियाँ छोड़ो।"

(इ)सी तरह नई बहू ने प्रायः आध घन्टे तक प्रियतम को [illegible]
(कि)या। मारे पिचकारियों के रसिया का सारा शरीर और
कमरा लाल कर दिया।

(य)ों बहू वहाँ से भाग कर सास जी के पास चली गयी।
(र)सिया भी किवाड़ खोलकर भागी!

(र)सिया रंग से भरा मुंह पोंछता हुआ गुस्से में बाहर
(आ)या। दालान में आकर देखा कि, नयी बहू सास के पास
(है) यहाँ और भी लड़कियाँ, बहुएँ बैठी हैं।

(का)मिनी ने एक युवती से चुपके से कहा—"ज़रा
(इ)नकी सूरत देखना। देखो, मुझे कैसे गुस्से से
(रहे) हैं।"

(इ)सके बाद सास को भी यह मालूम होगया कि, नयी
(बहू ने) रसिया को बुरी तरह पिचकारियों से नहलाया है।
(सब) हंसने लगीं। एक ने कामिनी को मना करते हुए
—"बहू, अब उसके पास न जाना, नहीं तो अबकी
(तुम्हा)री बुरी गत बनेगी।"

कामिनी ने गर्दन टेढ़ी करके और मस्तक ऊँचा करते
(हुए) कहा—"अरे बहन बैठी रहो! वह क्या अब मेरे पर
(रंग) छोड़ेंगे।"

सचमुच रसिया को फिर कामिनी पर रंग छोड़ने का
(अव)सर न मिला।

(३)

(रा)त के दस बजे। कामिनी समस्त सिंगार किये,
(पा)यजेब की मधुर ध्वनि छिटकाते हुए, दोनों हाथों की मुट्ठियाँ
(ब)न्द किये रसिया के कमरे में घुसी।

(२)

क्रमशः कमला की आयु चौदह वर्ष की हुई। संध्या के पांच बजे, कमला ने बहुत सी युवतियों के साथ बैठ कर सीता-अनुसूया-संवाद आरंभ किया ही था कि चिठ्ठी-रसा ने कमला के पिता शंभुनाथ को पुकारा।

कमला ने कहा 'पिता जी अभी घर पर नहीं हैं।' चिठ्ठी-रसा कमला को एक पत्र देकर चला गया। कमला ने ऊपर पढ़ा तो उसके पिता का नाम लिखा था। कमला पत्र को लेकर भीतर जाही रही थी कि शंभुनाथ भी आ पहुँचे। पिता को पत्र देकर कमला ने फिर अपना पूर्व सम्वाद आरंभ किया।

शंभुनाथ पत्र को पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और जाकर कमला की माता को सुनाने लगे। पत्र कमला के विवाह का था।

* * *

शुभ लग्न में कमला का विवाह कंचनपुर के मालगुजार के पुत्र सुशीलकुमार के साथ होगया। सुशीलकुमार की आयु २६ वर्ष की है। और बी० ए० पास हैं। और थोड़े ही दिन से लखनऊ में "हेम-प्रभा" नाम की एक मासिकपत्रिका का संपादन कर रहे हैं। कमला जैसी सद्-गुण सपन्ना पत्नी को पाकर सुशीलकुमार को अत्यन्त हर्ष हुआ।

पति पत्नी दोनों दोनों के अनुकूल थे। सुखी थे।

(३)

इस बार कमला को ससुराल में आये हुए तीन मा

हो गये। आज ही लखनऊ से सुशीलकुमार का पत्र आया है। वे छुट्टी लेकर घर आने वाले हैं। यह सुन कर कमला के हर्ष का ठिकाना न रहा। सुशीलकुमार को दक्षिणी ढंग का पहनाव तथा चोटी का गुथाव बहुत ही पसंद था। आज कमला ने भी इसी ढंग की पोशाक पहिन कर रामायण पढ़ी। दोपहर को सुशीलकुमार भी आ पहुँचे, पर भोजनादि से निवृत्त हो पहले अपने इष्ट मित्रों से मिलने बाहर निकल गये।

* * * *

संध्या के ६ बजे सुशीलकुमार अपने इष्ट मित्रों से छुट्टी पा घर आये। देखा, कमला पीतल की एक छोटी सी थाली में गुलाब-पुष्प और एक पुष्पमाला तथा एक घी से भीगी हुई फूलबत्ती सजा रही है। यह देख कर सुशीलकुमार ने कमला से पूछा—"प्रिये, आज किस देवता की पूजा की तैयारी कर रही हो। क्या नागेश्वर जी के मंदिर में जाओगी?"

कमला—"जी नहीं।"

सुशीलकुमार—"तो क्या अटलबिहारी के मंदिर में?"

कमला—"जी नहीं, मैं कहीं नहीं जाऊगी" इतना कह कर कमला ने थाली में रक्खी हुई फूलबत्ती को जला दी और पुष्पमाला को सुशीलकुमार के गले में डाल आरती करना शुरु किया। तत्पश्चात् चरणों को छुआ।

सुशीलकुमार प्रेमानन्द में मग्न हो गये। कमला ने कहा—"लीजिये मैं अपने इष्ट-देव को पूजा कर चुकी।"

उत्तर में कुछ न कह सुशीलकुमार ने कमला को अङ्क में ले लिया और उसके गुलाबी गालों पर 'प्यार' की झड़ी सी लगा दी। इति।

विनोद।

लेखक-

श्रीयुत 'गुप्त' शिक्षक।

(१)

एक मनुष्य ने एक बूढ़े मसखरे से पूछा—"तु धरती की ओर देख कर क्यों चलते हो? मसखरा बोला—"इसमें मेरा बाप गुम गया है।" यह सुन मनुष्य ने कहा—"य हम ढूंढ़ दें तो हमें क्या दोगे?"

मसखरे ने तुरन्त उत्तर दिया कि "आधा तुम्हारा।" सुन वह मनुष्य हँस पड़ा।

(२)

एक मुगल कहीं से हिन्दुस्तान में आ निकला। दैवय कहीं उसे एक कुंजड़ी जामुन बेचती हुई मिली। मुगल पूछा—"अय कुंजड़न! इस मेवे का क्या नाम है?" वह बोल "इसको जामुन कहते हैं।" मुगल के पास उस वक्त पैसा न

जो मोल लेकर खाना; परन्तु जामुन की सूरत याद रक्खी। फिरते फिरते किसी बाग़ में आ निकला। एक जामुन के पेड़ के नीचे कई जामुन पड़ी थीं और चार छः काले भौंरे भी थे। यह उन्हें बीन बीन कर खाने लगा, साथ ही काले २ भौंरों को भी चबाने लगा। जब मुँह में कीड़े 'चीं—पीं' करने लगे। तब मुगल बोला कि तुम 'चीं' करो या 'चपाट' मैं तो काला काला एक भी न छोड़ूँगा।

(३)

एक रोज़ बादशाह के पास एक फकीर कुछ माँगने की इच्छा से पहुँचा। बादशाह प्रसन्न होकर बोला—"जा इच्छा हो सो माँग।"

भिक्षुक बोला—"मुझे मक्खियाँ बहुत सताती हैं, इनसे मैं बहुत हैरान हूं। इसलिये आप उन्हें आज्ञा करें ताकि वे मुझे न सतावें।"

बादशाह बोला—"ओ, फकीर, ऐसी चीज़ माँग जो मेरे वश में है।"

फकीर बोला—"जब आपका मक्खियों पर ही अधिकार नहीं है तो फिर और क्या माँगू ?"

(४)

एक समय एक शिक्षक महाशय कुछ बालकों को साथ ले मन्दिर की ओर जा रहे थे, रास्ते में किसी मनुष्य ने पूछा—"कहो मास्टर साहिब, आप लड़कों को लेकर कहाँ जा रहे हैं।" उत्तर दिया—"भाई साहिब, इन्हें जल बरसाने के लिये मंदिर में प्रार्थना कराने ले जाता हूँ, क्योंकि धर्म-शास्त्रों

में लिखा है कि ईश्वर छोटे छोटे लड़कों की विनय शीघ्र स्वीकार करता है।"

यह सुन उस मनुष्य ने हँस कर उत्तर दिया—"वाह मास्टर साहिब! यदि लडकों की प्रार्थना ईश्वर मंजूर किया करता तो एक भी शिक्षक जीता न बचता।"

(५)

एक वकील के साथ उनका एक नौकर हमेशा दिल्लगी की बातें किया करता था। एक समय वकील साहब के सामने ही नौकर को बहुत रोकने पर भी हवा खुल गई। तब वकील साहब बहुत क्रोधित हो बोले तुम बड़े गधे हो।

नौकर बोला—महाराज, था तो मैं बुद्धिमान ही, परन्तु अब गधों की संगत में रहने से गधा बन गया हूँ।

वकील सुनकर चुप होगया।

(६)

अक्ल के पूरे एक जेन्टिलमेन साहिब ने अपनी २० वर्ष की उम्र में २५ वर्ष की एक विधवा स्त्री से निकाह किया। स्त्री पहले ही से गर्भवती थी। शादी के ४॥ महीने बादही उसे पुत्र उत्पन्न हुआ। यह देख जेन्टिलमेन महाशय को बड़ा सन्देह हुआ। उसने सोचा, स्त्री सचमुच में बदमाश है और यह गर्भ किसी दूसरे का है। ऐसा सोच स्त्री के पास जा बोला—"क्योंरी! संतान तो पूरे नौ महिने में होती है फिर ये ४॥ महीने में पुत्र कैसा? अवश्य कुछ दाल में काला है।"

स्त्री—"वाह! वाह!! झूठा इल्जाम न लगाइये। मुझे पूरे नौ महिने तो हो गये।"

जेन्टिलमेन—" बतला कैसे हुए ?"

स्त्री—"आपकी शादी को हुए ४॥ महीने हुए, कहो हाँ।"

जेन्टिलमेन—"हाँ।"

स्त्री—"और मेरी शादी को हुए ४॥ महीने हुए, कहो हाँ हुए।"

जेन्टिलमेन—"अच्छा हाँ हुए।"

स्त्री—"तो ४॥ और ४॥ पूरे ९ महिने तो होगये। मुफ्त की झूठी बदनामी से मुझे कलंकित न कीजिये।"

जेन्टिलमेन—"वाह प्यारी वाह! तू तो बड़ी होशियार है। तूने मेरा कितनी जल्दी सन्देह दूर कर दिया! ईश्वर यदि किसी को स्त्री दे तो ऐसी ही चतुर दे।" ऐसा कहते कहते प्रेम में मग्न हो गये।

(७)

बालविवाह के प्रेमी एक महाजन की लड़की जब उमर में ८ वर्ष की हुई तब महाजन ने उसके विवाह के लिये विचार कर एक ब्राह्मण को बुला कर कहा कि तुम कहीं पर सुन्दर रूपवाला लड़का जिसकी उमर १० वर्ष की हो खोज लाओ। ऐसा सुन ब्राह्मण वहाँ से चल दिया। लेकिन वह मसखरा कुछ दूर जा फिर वापिस लौटा और महाजन के पास आकर कहने लगा—" सेठ जी, यदि १० वर्ष का एक लड़का न मिले तो पाँच पाँच वर्ष के दो लड़के ठीक होंगे, या नहीं ?"

(८)

एक बार बादशाह और बीरबल छत पर बैठे हवा खा रहे थे। इतने में एकाएक बादशाह की दृष्टि एक तमाखू के खेत में पड़े गधे पर पड़ी। बीरबल तमाखू खाते

थे । इसलिये उनको चिढ़ाने के लिये बादशाह ने कहा—"देखो बीरबल, तुम तमाखू खाते हो उसे तो गधे भी नहीं खाते।"

बीरबल बोला—"पृथ्वीनाथ ! ऐसे-ऐसे-ने ही तो इसको छोड़ा है।"

(९)

एक माँ अपने छोटी उम्र के लड़के को शिक्षा दे रही थी कि बेटा, आज का काम कल पर न छोड़ना चाहिये । क्या मालूम कल क्या होने वाला है । इसलिये कल का काम भी आज कर लेना चाहिये ।

बालक जल्दी से बोल उठा कि माँ, कल के लिये जो मिठाई रखी है उसे जल्दी ला दे, मैं आज ही खालूं ।

इति ।

कलेक्टर की होली।

(प्रहसन)

लेο—श्री पाण्डेय बेचन शर्म्मा 'उग्र'।

(पात्र)

१ मि० पिस्सन……कुत्तामारपुर का नया कलेक्टर।
२ चण्डू खाँ………बावर्ची।
३ झगड़ू चमार……बेयरा।
४ स्लीपरमल… …चापलूस सेठ।
५ चाटुकार चन्द्र…एक राय साहब।
६ विद्दौजाहत्त दूबे…'महामहोपाध्याय' पद का लालची, पंडों आदि।

प्रथम रङ्ग।

स्थान—बावर्ची खाना।
समय—तीसरा पहर।

(चण्डू खाँ और झगड़ू)

चण्डू०—"अम्याँ, तुम्हारा जादू सभी कलेक्टरों पर चल जाता है। इतनी देर घुल घुल कर क्या गुड़ फोड़ते रहे!"

झगड़ू—"न पूछो भाई, अव्वल दर्जे का बन्दर है, हिन्दु-

स्तानियों का नाम आते ही खांव खांव करने लगता है। तीन ही दिन में तेरह रंग बदल चुका। क्लार्क को 'डैम फूल' कह कर मारने दौड़ा। रजिस्ट्रार को 'नानसेन्स' कह बैठा, तुम्हें ही चार बार ठोंक चुका। कलेक्टर क्या है आफ़त है।"

चण्डू०—"आखिर इस वक्त तुम से क्या पूछ रहा था। मैंने दूर ही से देखा है तुम कुछ बोल रहे थे और वह नोट कर रहा था। किसी चोरी में पकड़े गये हो क्या? बयान लिखा रहे थे?"

झगड़ू—"अजी नहीं, गालियाँ लिखा रहा था।"

चण्डू०—"गालियाँ?"

झगड़ू—"हाँ, वह यह कह रहा था कि अङ्गरेजी गालियों से हिन्दुस्तानी अपनी इज्जत समझते हैं। इसीलिये उसने हिन्दुस्तानियों को हिन्दुस्तानी-ठेठ हिन्दुस्तानी-गालियों से याद करने का मन्सूबा बाँधा है। पर, हाँ—मैंने भी बेटा को खूब चर्का दिया है।"

चण्डू०—"सब गालियाँ लिखा दी न! या खुदा! अब उठते बैठते ज़लील होना पड़ेगा। तुम ने बड़ा ही बुरा काम किया है। कौन कौन सी गाली लिखायी है?"

झगड़ू—"बता दूँ? देखो हँसना मत! पहले लिखाया है 'साहब' 'सरकार' 'हजूर'।"

चण्डू—"ये गालियाँ हैं?"

झगड़ू—"मैंने उसे समझा दिया है कि हिन्दुस्तानी इन शब्दों का गालियों के रूप में अङ्गरेजों के सामने रखते हैं। 'साहब' माने 'गधा' 'सरकार' माने 'सूअर' 'हजूर' माने 'उल्लू का पट्ठा'! सच कहता हूँ वह हमारी जबान में एक दम कोरा है। देखना, अब तुम उसे 'साहब' वगैरह न कहना

जिसका दिल हो आजमा कर देख ले

शर्त लगा के, बाजी मार के, एक आने का टिकट लगा के
इकरार नामा लिख देंगे कि नई पुरानी

खराब से खराब

गर्मी सूजाक बाघी को

की० ५।≈) की० ७।-) की० ५≈)

हमारी दवा से ३ दिन में शर्तिया लाभ नहीं मालूम होगा तो खुशी के साथ कीमत वापस देंगे। गर्मी, सुजाक, बाघी को दूर करने में हमारी दवा सब दवाइयों से अच्छी है। हजारों रोगी आराम हो चुके। जरूर आजमाइये और लाभ उठाइये। सच्ची और असली दवा है।

पं० सीताराम वैद्य, ५३, बांसत[illegible] स्ट्रीट, कलकत्ता।

विजय-पुस्तक-भण्डार की समयोपयोगी।

आदित्य ग्रन्थमाला।

श्रीयुत इन्द्र विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित पुस्तकें।

[१] नैपोलियन बोनापार्ट (सचित्र) मूल्य १॥) (दूसरा संस्करण तय्यार हो रहा है।

[२] प्रिंस बिस्मार्क या जर्मन साम्राज्य की स्थापना मूल्य १।)

[३] महावीर गेरीवाल्डी- लेखक पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति। मूल्य १।)

राष्ट्रीय साहित्य।

[१] स्वर्ण देश का उद्धार—मूल्य ॥≠) [२] राष्ट्रीयत का मूल्य यन्त्र मूल्य ≋) [दूसरा संस्करण तैयार हो रहा है] [३] राष्ट्रों की उन्नति—मूल्य ।) [४] संसार का क्रान्तियाँ, लेखक श्रीयुत सुख सम्पतिराय भण्डारी १॥≠)

धार्मिक तथा अन्य।

बालपयोगी वैदिक धर्म—लेखक पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति मूल्य ।=) (दूसरा संस्करण)

वैदिक मेगजीन [लाहौर] यह पुस्तक वैदिक धर्म की प्रवेशिका समझी जा सकती है। पं० इन्द्र ने अपनी प्रवाह युक्त स्पष्ट लेख प्रणाली में बच्चों के लिये यह जो पाठ इसमें दिये गये हैं, जिनसे पुस्तक आर्यसमाजी अथवा जो कोई भी वेद विश्वासी अपने बच्चों को भी धर्म की शिक्षा देना चाहे वह लाभ उठा सकता है।

उपनिषदों की भूमिका—लेखक श्रीयुत इन्द्र विद्यावाचस्पति। मूल्य ।≠) संस्करण तैयार हो रहा है।

मैनेजर—विजय पुस्तक भण्डार, [illegible]ली।

'अरुणोदय'

सम्पादक—बा० शिवदान प्रसाद सिंह, बी०ए०, एल०एल०बी

'अरुणोदय' हिन्दी भाषा का एक सार्वजनिक पाक्षिकपत्र है। इसका मुख्य उद्देश्य देश की (राष्ट्रीय) शान्ति, उन्नति और समृद्धि को बढ़ाना है। लेख ज़ोरदार, गम्भीर, और उपयोगी होते हैं और प्रायः सबके पढ़ने योग्य होते हैं। कानून और अर्थशास्त्र के विषय भी रहते हैं। प्रत्येक हिन्दी भाषी प्रेमी को ग्राहक बनना चाहिये। नमूने का एक अंक मुफ्त। वार्षिक मूल्य ३) रु० अग्रिम।

विज्ञापन दाताओं और क्रोड़पत्र बँटाने वालों को शीघ्र ही पत्र व्यवहार करना चाहिए।

मैनेजर—'अरुणोदय' मिर्जापूर।

अरुणोदय आफिस की पुस्तकें।

Personal Magnetiom Re. 1/4; Developement of wil power Re. 1; Art of Advertising Re. 1; Memory Cul ture As. 12; Success in examinations As. 12; Evils o Cigarette Habit As. 4, Postage exclusive.

नवीन उत्तम व्यवसाय (रियायती मूल्य) २) रु०, परीक्षाओं में सफलता ।≤), सफलता की प्रथम व द्वितीय सीढ़ी प्रत्येक ।), पार्क की सैर ≥), परिवर्तन ≥), राष्ट्रीय भंडा ≠, स्वदेशी का स्वराज्य ≠)॥ डाकव्यय अलग।

पता—अरुणोदय [illegible] मिर्ज़ा—

श्री भारत धर्म महामंडल की एक मात्र
सचित्र मासिक मुख पत्रिका—

"निगमागम चन्द्रिका"

इसका सन १६२४ का विशेषाङ्क बड़ेही महत्व का है। यह स्तम्भ बद्ध किया गया है। इस प्रकार अलग अलग स्तम्भ युक्त कोई भी हिन्दी का पत्र नहीं निकला। इसमें ८ स्तम्भ हैं। धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक और ऐतिहासिक इन चारों स्तम्भों में हिन्दी के प्रसिद्ध २ विद्वानों के लेख तथा कवितायें हैं। शेष चार स्तम्भ सम्पादकीय हैं। लीजिये, शीघ्रता कीजिये, नहीं तो पीछे पछताना होगा। इस, सादे रंगीन सब मिलाकर साल भरके ग्राहक बनेंगे उन्हें यह अंक अन्य अंकों की ही भाँति मिलेगा।

२॥) भेज कर ग्राहक बनने से आपको क्या २ सुविधायें होंगी।

१—अनेक धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक लेखों तथा सुन्दर २ कविताओं से परिपूर्ण पत्रिका आपको प्रति मास मिला करेगी।

२—आप महामंडल के सदस्य समझे जायँगे।

३—आपका समाज हितकारी कोष से विपुल धन की सहायता मिल सकेगी।

४—पंच देवताओं का दर्शनीय चित्र 'प्रमाण पत्र' स्वरूप मिलेगा।

५—महामंडल से प्रकाशित सम्पूर्ण ग्रन्थ पौनी कीमत में मिल सकेगी। कहिये इस से अधिक आप और क्या चाहते हैं। महामंडल के फार्म, नियमावली, कार्ड लिख देने से मुफ्त भेजी जाती है।

व्यवस्थापक—

"निगमागम चन्द्रिका" कार्यालय ... कैण्ट

...तो बुरे फँसोगे ! अब यह हमें, जामे के बाहर होने पर ...'हुजूर' या 'सरकार' कह कर खुश होगा ।"

चण्डू०—"अच्छा और क्या लिखाया है ?"

झगड़ू—"और गालियाँ हिन्दुस्तानियों के लिये हैं। जैसे ...टहल की रोटी, मेंढक का 'मुरब्बा' 'प्याज की पकौड़ी' ...न्ध को दाल' 'मूली का कोफ्ता' 'लहसुन की रोटी' ...ड़ों का अचार'—ये गालियाँ 'मर्दों' के लिये, और 'भुतनी' ...न,' 'मेरी अम्मा,' 'दादी' ये सब औरतों के लिये ! एक ...ाी और भी की है। उसने पूछा 'स्लेट' को क्या कहते ...मैंने बता दिया 'दादा' ।"

चण्डू०—"भाई, कमाल करते हो । बड़ा अच्छा किया । ...कर) बिल्ली का अचार ! कटहल की रोटी !! वाहरी गाली !"

झगड़ू—"और सुनो ! जानते हो उसे गालियाँ याद करने ...जल्दी क्यों पड़ी ?"

चण्डू०—"नहीं ।"

झगड़ू—"यहाँ के कुछ चापलूस परसों साहब के साथ ...ली खेलने आयेंगे । वह इससे सख्त नाराज़ है, पर चाप-...सों को मिलाये रखना अंगरेजों का पुराना उसूल है । इसी ...से उसने उनसे होली खेलना मंजूर कर लिया है । मैंने उसे ...बता दिया है कि हिन्दुस्तानी कैसी होली से खुश होते हैं ?"

चण्डू०—"क्या समझाया है ?"

झगड़ू—"सो उसी दिन देखना !"

द्वितीय रंग ।

...चन्द का घर ।

...—प्रातः १० बजे ।

(चाटुकार चन्द, स्लीपरमल और विड़ौजा दत्त दुबे
बातें कर रहे हैं)

चाटु०—"परसाल मि० ब्राउन के मुख को मैंने अबीर 'रेड' कर दिया था। अब आज पिग्सन साहब..."

स्लीपर०—(बीच ही में टोक कर) "मगर देखो पिग से वैसी हरकत न करना नहीं तो ऐसा डाँटेगा कि 'पेल' जाओगे।"

चाटु०—"अरे चलो! न जाने कितने इग्सन पिग्सन चरा चुका हूँ। 'पेल' (पीला) पड़ने वाले कोई दूसरे होंगे।"

स्लीपर०—"तुम जानो भाई! मैं तो धीरे से एक अबीर साहब के चरणों पर रख दूँगा।"

विड़ौजा०—"अरे,ऐसा आचरण कदापि न प्रदर्शित कर अनर्थ हो जायगा। जैसे "कपि की ममता पूछ पर" होत वैसी ही गोरों की जूतों पर। जूतों की खराबी साहब नहीं बर्दाश्त हो सकती!"

स्लीपर—"तुम नहीं जानते। कभी साहबों का दर्शन किया भी है? खैर तुम क्या करोगे?"

विडौजा—"मैं तो साहब को 'कबीर' सुनाऊँगा। पहली कविताः—

क र र र र र र कबीर

'बेबी' है 'बाबा' साहब के बूढ़ा नौकर बॉय।
खड़ी सामने लड़की उनकी 'मिस' हो जाती हाय
बड़ी यह भूल भुलैया है।

चाटु०—"वाह! खूब है! हजूर खुश हो जायँगे!"
विडौजा—"अभी क्या दूसरी सुनिये—

(कान पर हाथ रख कर ज़रा ज़ोर से)

ररररररर कबीर!

"लड़की होती 'गरल' तुम्हारी 'चिलरन' बच्चे लोग।
'डार्लिंग' 'प्यारी' को कहते साहब हो या 'रोग'॥
तुम्हारी लीला है न्यारी!"

स्लीपर—(हँसकर) "अरे 'गर्ल गर्ल'! 'गरल' नहीं और
[illegible]द्रेन' है 'चिलरन' नहीं! जो भाषा नहीं जानते उसमें
[illegible]ाक घुसेड़ते हो?"

विडौजा—(अपनी धुन में मस्त)

ररररररर कबीर

'माइन' को अपना लेने हो करने 'दाइन'—दान,
'डाइन' को भोजन तुम समझो, वाह! गौर भगवान॥
तुम्हें फिर क्या हम समझें!"

चाटुकार और स्लीपर—"बस, बस! इन कबीरों को
[illegible]में आप अवश्य महामहोपाध्याय हो जायँगे।"

विडौजा—"इसमें भी कोई शक है!"

स्लीपर—"अच्छा चलिये। ठीक चार बजे हमें एक साथ
[illegible]हुज़ूर के यहाँ चलना होगा।"

तृतीय रंग।

[illegible]न—मि० पिग्सन के बंगले का एक कमरा।

समय—५ बजे शाम।

(पिग्सन और झगड़ू)

पिग्सन—"झगड़ू!"

झगड़ू—(चुप)

पिग्सन—(बिगड़ कर) "यू हुज़ूर, सरकार, [illegible]
[illegible] गई!!

झगड़ू--(स्वगत) "खूब समझे बेटा ! पुकारा क 'हुजूर !'—अच्छे उल्लू फँसे हो ! (प्रकट) क्या हुकुम सर !"

पिग्सन—" अबी हमारा दादा (स्लेव) लोग नै आया ?"

(एक अर्दली का प्रवेश)

अर्दली--"सर, बाहर तीन आदमी मिलने आये हैं।"

पिग्सन—"ओ, आ गया ! बीटर लाओ । (झगड़ू रे झगड़ू इंक का पाट लाओ, ओली केलना ओगा !"

(अर्दली और झगड़ू का प्रस्थान)

पिग्सन—(गालियों को याद करता है) "मौली कोप्टा, बिल्ली का आचार, डायन, चुटनी, प्याज क' पकौ.

(चाटुकार एण्ड फ्रेण्ड्स का प्रवेश)

चाटु—(पिग्सन से) "गुडइविनिङ्ग हुजूर !"

स्लीपर—"आदाब अर्ज है सरकार !"

बिडौजा—"चरण कमलेषु साष्टाङ्ग प्रणाम, धर्मावत साहब !"

पिग्सन—(बिगड़ कर स्वगत) "सब गाली बोलटा ओह सब गाली ! (प्रकट) टुम लोक अमारा दादा (पिग्स 'दादा' का अर्थ गुलाम जानता है न !) होकर गाली बोल है ? टुम हजूर, टुम सरकार, टुम शात्र।"

विडौजा—(हाथ जोड कर) नहीं धर्मावतार हम गा प्रदान नहीं करते हैं, कदापि नहीं।

(आँख मूँद कर स्तुति पाठ आरम्भ)

"असित गिरि समस्यात कज्जलं सिन्धु पात्रे-
सुरतरु वर शाखा लेखिनी पत्र मुर्वी

लिखति यदि गृहीत्वा............

पिग्सन—(श्लोक को संस्कृत गाली समझ कर) "चुप ो! 'कटहल की रोटी !' 'मेढक का मुरब्बा !' चिली—
ो...(भूल जाने के कारण अधिक क्षोभ) झगड़ू ! ओ
ू शाव! जल्दी आओ सरकार । आमारा पाकेटबुक
ो! गाली भुल गया !"

चाटुकार—(पिग्सन का हाथ पकड कर) "हुजूर कैसी
ात है ! माई बाप !"

पिग्सन—"आमको बाप ? बाप माइने बदमाश ! यू
ा का रोटी ! सुटनो ! डायन ! मेरी अम्मा !"

(झगड़ू का रंग का घड़ा, लँगोट और गालियों को
पाकेटबुक लिये प्रवेश)

पिग्सन—(झगड़ू से) "लाओ बुक । (पाकिट बुक
कर धारा-प्रवाह गालि-प्रदान) चावल का दाल, मूली का
ा, मेरा दादा, डायन, मेरी अम्मा, अपनी—(दम लेकर)
ुन का रोटी, कटहल की रोटी, दादी !"

बिडौजा—(चाटुकार के कान में) 'जान पड़ता है साहब
निमन्त्रण का प्रबन्ध किया है। मगर यार, लहसुन की रोटी !
क का मुरब्बा ! प्याज की पकौड़ी ! अच्छा खा लूंगा कोई
नहीं । ब्राह्मण का मुख हमेशा पवित्र होता है ।"

पिग्सन—(तीनों चापलूसों से) कापड़े उटारो, यू माई
ा लोक ।"

चाटुकार—"कपड़े क्यों उतारें हजूर।"

बिडौजा—"अरे साहब के साथ भोजन करने चलना है न।"

पिग्सन—"फिर गाली ! जल्दी कपड़े उटारो ! (झगड़ू
ेली धुला कर उटारो।"

(झगडू और कई अर्दली मिल कर चाटुकार, स्लीपर और बिड़ौजा के कपड़े उतार कर लँगोट पहनाते हैं।)

पिग्सन—"डालो इंक।"

(नौकरों का स्याही डालना)

चाटुकार एण्ड फ्रेण्ड्स—"बाप रे बाप! मरे रे दादा!!!"

पिग्सन—"और डालो! अवी गाली बोलटा है। दादा! डायन! बुटनी! मेरी अम्मा! प्याज की पकौड़ी!"

(तीनों को खूब नहलाने के बाद)

झगडू—"अब सर?"

पिग्सन—"टुम बोलो। आव?"

झगडू—"फाटक के बाहर निकाल दूँ?"

पिग्सन—"हाँ निकाल दो।"

बिड़ौजा आदि—"अरे ऐसा नहीं हुजूर, साहब सरकार, मेरे दादा, अब नहीं खेलूंगा! क्षमा करो।"

पिग्सन—"फिर गाली? निकाल दो—मेरी अम्मा! प्याज की पकौड़ी! निकालो!!"

(ब्लूब्लैक इंक से सराबोर भूत की तरह तीनों चापलूस गिड़गिड़ाते हैं, कपड़े मांगते हैं पर पिग्सन के नौकर उन्हें फाटक बाहर कर के ही छोड़ते हैं।)

(भा० जीवन से

इति।

गुरुबाबा की होली।

लेखक—
श्रीयुत त्रिदंडी।

(१)

होली का हुलास होले होले हिये में फूल रहा है और फूल रहा है आँखों के सामने यह नज़ारा जब कि मैं गुरुदक्षिणा में काफ़ी रकम मार ला कर मज़े से मौज मारूँगा। सैर की सैर रहेगी आँखों की गरमी झाड़ आऊँगा और रकम भी मिलेगी? बस, बस, इस से अच्छा होली मनाने का दूसरा कोई ज़रिया नहीं है, कल—कल ही सेठ मानिकचन्द मारवाड़ी के यहाँ, मिरज़ापुर जाऊँगा।

मन ही मन 'मटरू मिसिर' (मिश्र) ये मनगढन्त को मुनासिब मानकर रात की गाड़ी से जाने की तैयारी में लग गये। आप सब जाने, मटरू मिसिर के सैकड़ों शिष्य हैं, पर हैं सब आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे। मटरू को जब ज़रूरत होती, झट किसी गाँव या नगर में जाकर किसी शिष्य को धर दबाते। माल भी छकते और काफ़ी रकम एंठ लाते। चेलियों को भी प्रसाद, वरदान दिया करते थे।

(२)

तीन बजे रात ट्रेन मिरज़ापुर पहुँची, गुरू जी इन्टर क्लास के डब्बे से बाहर निकले। आप सिरपर साफा कोट-कमीज चादर, सब परिधान खद्दर के पहिने थे, पर पैर में बढ़िया बूट डटा था। साथ में एक खिदमतगार पान का झोरा, गीता और ठाकुर वगैरह लिये था। सेठ जी पहले से ही प्रतीक्षा कर रहे थे, सामने आते ही सड़ाका साष्टाङ्ग दण्डवत किया। गुरू जी गौरव के सहित गाहक का गात स्पर्श कर के उठाया और आशीर्वाद दिया। कुशल-कथा के बाद सेठ जी अपनी फिटिन पर गुरूजी को घर ले आये। ठाकुरबाडी के खूब सजे हुये कमरे में उतारा और सेवा की सब सामग्री इकट्ठी होने लगी। गुरू जी ने शौचादि के अनन्तर ज़रा गुदगुदी करने के लिये, नौकर को भंग बनाने की आज्ञा दी और सेठ जी को समझा दिया कि आधपाव बादाम तीन माशे इलायची, एक माशे सौंफ, तीन माशे सफेद मिर्च एक मासे केसर और टके की पत्ती—दूध-चीनी ख़ास वगैरह ऊपर से। इतना सामान रोज़मर्रा दोनोंवक्त बूटी के लिये भेज दिया कीजिये। क्या करूँ, बिना यह सब चीजें मिलाये, भंग बादी करती है।

भंग छनी, तेल की मालिश हुई, स्नान हुआ और गुरू बाबा पूजन पर बैठे। उसी समय सेठ जी आये। हाथ जोड़ कर पूछा—'महाराज, भोजन की क्या इच्छा है! मैंने तो पक्की रसोई का इन्तिजाम कर दिया है पूजा के बाद आप अन्तःपुर में जाकर 'तसमयी' पूड़ी और थोड़ा हलआ बना लीजिये। सेठानी सब प्रबन्ध कर देंगी। मैं अब दुकान पर जा रहा हूँ, लौटने पर आपकी सेवा करूँगा।"

सेठ के चले जाने के बाद गुरू बाबा ने खूब गहिरा त्रिपुंड लगा सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित कर डाला। फिर बटुआ में से डिब्बा निकाल गहिरे में पान सुरती जमाकर दो चार पीक ठीक ठाकुर जी के दरवाजे के सामने थूक दिया और अंगौछे में अतर लगा कर अन्दर मकान दाखिल हुए।

(३)

सेठ जी ने पहली स्त्री के मर जाने पर (बहुत प्रयत्नों से) अपनी आयु के चालीस वर्ष में एक सोलह वर्ष की रूपवती भार्या को प्राप्त किया था। प्यार और अधिकता से घर में सेठानी जी का एकाधिपत्य था। हुकूमत थी। वस्त्राभरण थे, सेज-सवारी और सोहाग, सब कुछ था—पर था वही नहीं जो ऐसे बनमेल ब्याह में नहीं होता। रूप और युवत्व के आघात-प्रतिघात से मन में ठोकर मार मार कर वासना बाहर निकल पड़ना चाहती है। गुरू जी के सत्संग से वासना दमन करने की इच्छा करके वह पहले ही से रसोईघर में बैठी थी। गुरू जी को देखतेही हाथ बढ़ाकर चरण रज लिया। गुरूजी ने माथे पर हाथ फेर कर आशीर्वाद दिया—"सोहाग अचल रहे, भगवान शीघ्र तुमारी गोदी भरें।"

सेठानी जी ने एक भरपूर दृष्टि गुरू जी के सुन्दर-सुगठित सुरभित शरीर पर दौड़ाया और एक लंबी साँस लेकर बैठ जाने के लिये आसन दिखा दिया। आसन ग्रहण कर प्रेमपूर्वक गुरू जी ने कहा—"आप अच्छी तो हैं ?

सेठानी—"सब आपकी कृपा पर निर्भर है। सेठजी बूढ़े बीमार ही रहते हैं भगवान् जाने, कब क्या हो

आय, इसी से चिन्तित रहती हूँ । आपके आशीर्वाद से एक बालक......"लज्जा के कारण सेठानी चुप हो गयीं।

"नहीं सेठानीजी, लज्जा की कोई बात नहीं, अवश्य इसकी कोशिश करनी चाहिये । सेठ जी बूढ़े तो हो गये हैं पर उपाय करने से अर्थ सिद्ध हो जाता है।" कह कर गुरू जी ने एक अर्थपूर्ण दृष्टि से सेठानी जी की ओर देखा। सेठानी ने कृतज्ञता के भाव से गुरू की पलथी से सटा कर माथा नवाया। गुरू जी सिर पर हाथ रख कर गरदन पर खसका ले गये और धीरे से ज़रा खींच कर सेठानी का मस्तक अपनी पलथी पर रख लिया। पीठ पर हाथ फेरने लगे। सहसा द्वार से दासी को आते देख सेठानी का माथा पीछे ठेल कर ज़ोर से कहना शुरू किया—"सुख से रहो, फूलो फलो भगवान तुमारी गोदी भरे।"

सेठानी सजग हो बैठी। दासीसे कहा—"कहाँ गयी थी। गुरू बाबा के भोजन का प्रबन्ध करना है और तू न जाने कहाँ मर रही है। देख, जल्दी चूल्हा जला दे।"

गुरू जी ने कहा—"मेरे भोजन में कुछ विशेष आडम्बर नहीं। मैं केवल; थोड़ी सी सादी 'तस्मयी' (खीर) बना कर ठाकुर जी को भोग लगाता हूँ।"

सेठानी ने दासी से दूध,चावल और साफ़ चीनी लाने को कहा। पर, जब सब चीज ले आई तो सेठानी ने देखा त्रिपाई में चीनी के स्थान पर नमक आ गया है। उन्होंने बिगड़ कर दासी से कहा—"अन्धी है क्या ! कहा क्या लाने को और ले आई क्या, जा इसे रख कर चीनी को ले आ।"

गुरू जी ने त्याग का भाव दिखलाते हुए कहा—

"ठीक है, ठीक है, चीन क्या होगी २, मैं तो सादी 'तसमयी' नैवेद्य में अर्पण करता हूँ ; व्यर्थ ही—अच्छा।"

दासी ने चीनी लाकर (चौके में) नमक की परई की बगल में रख दिया। खाने के समय एकान्त रहे, इस विचार से गुरू जी ने सेठानी और सेविका दोनों को यहाँ से हट जाने को कहा और कहा कि जब तक मैं न बुलाऊँ भीतर न आना, ठाकुर जी को भाव-भक्ति से नैवेद्य लगाना है न।"

ढोंग दिखाने के लिये गुरूजी ने खीर में चीनी तो न मिलायी पर, जब खाने बैठे तो जिह्वा को स्वाद ही न मिले। लाचार, धीरे से परई, की ओर हाथ को बढ़ाया। चीनी' की एक 'मुट्ठी' थाल में पड़ी, और देखते देखते खीर में तल्लीन हो गयी। 'अब सुन्दर स्वाद हो गया होगा।' यह कल्पना कर गुरूजी ने एक भरपूर ग्रास, मुख गह्वर के हवाले किया। पर यह क्या? हाय हाय! थू, थू!! चीनी के स्थान पर नमक डाल दिया। अब?

पाप को छिपाने के लिये पापही का आश्रय करना पड़ता है। अपनी मूर्खता छिपाने के विचार से गुरू जी ने थाली की खीर कहीं फेंक देने का विचार किया। पर कहाँ फेंकें? खीर की थाली हाथ में लेकर इधर उधर स्थान ढूँढने लगे। बगल की कोठरी में गव (ढीली खाँड़) रखने के लिये एक खाना (ज़मीन में बड़ा गड्ढा) था। गुरूजी धीरे से उसी (खाते) में थाली की खीर काँछ कर गिराने लगे! पर, दुर्दैव! थाली हाथ से छूटकर खाते में जा रही।

अब तो गुरू जी व्यग्र हो गये थाली कैसे निकले? लोग क्या समझेंगे? गुरूजी ने उपाय सोचा; रस्सी लेकर [illegible] बाँधा और उतर पड़े थाली लाने को। पर

धत्तेरे भाग्य की ! गुरू बाबा का असाधारण भार पाने के कारण चक्की से खूँटा अलग होगया और गुरू बाबा जुआ रस्सी सहित खाते में जा रहे। भीतर जाकर बेचारे गुरू बाबा बड़े फेर में पड़ गये। किसी को पुकारते हैं तो लज्जित होना पड़ता है और नहीं पुकारते तो आखिर कब तक।

जब घंटों बीत गये, गुरू बाबा की आहट न मिली तो सेठानी दरवाजे पर आकर पुकारने लगीं। पर जब कोई उत्तर नहीं मिला तो भीतर आकर देखा। अरे! गुरू बाबा मै थाली के लापता हैं, बाकी सब सामान पड़ा है। सेठानी सख्त हैरान होकर चारों ओर ढूँढने लगीं। खाते के भीतर से बाबा जीने कहा—"मैं यहाँ खाते में गिर पड़ा हूँ परमेश्वर के लिये मुझे शीघ्र निकालिये, मैं सब हाल कहता हूँ।"

सेठानी—"आखिर आप खाते के अन्दर कैसे गये?"

गु० बा०—"मैं रस्सी फेंकता हूं उसे आप पकड़े रहिये ऊपर आता हूँ तो बतलाऊँगा।"

सीरा में सनी हुई रस्सी का एक सिरा गुरू बाबा ने अपने हाथ में पकड़ा गुरु बाबा ऊपर चढ़ने लगे। गुरू के गुरु भार से सेठानी के हाथ पैर काँपने लगे और वह भी लड़खड़ाकर खाते में गिर पड़ी। दैवोऽपि दुर्बल घातकः।

दोपहर को सेठ जी रोटी खाने के लिये घर आये। बाहर बरामदे में दासी को बैठे देखकर पूछा—"क्या गुरू बाबा ने भोजन किया? तूं बाहर क्यों बैठी है?"

दासी-"लाला जी, गुरू जी ने कहा 'भोग' के समय स्त्रियों की छाया न पड़नी चाहिये। तूं बाहर बैठ, मैं जब बुलाऊँगा तब आना, इसी से मैं यहीं बैठी हूँ।"

सेठ जी लपक कर घर में गये, देखा, ठाकुर जी बिराज रहे हैं पर गुरूवाया और सेठानी का कहीं पता नहीं। अब तो सेठ जी के देवता कूच कर गये। लगे जोर जोर से सेठानी को पुकारने। कई आवाज लगाने के बाद सेठानी ने कहा कि हमें शीघ्र निकालिये तब सब हाल कहूंगी। हम लोगों की बातें की गरमी से बुरी हालत हो रही है।

सेठ जी ने कहा,—"सत्यानाशिनी, क्या यह पाखंडी भी यहीं खाते में है?"

सेठानी—"मैं रस्सी फेंकती हूं किसी मजबूत जगह में उसे बांधकर हम लोगों को निकालिये, विपत्ति से रक्षा कीजिये। सब हाल सुनाती हूं।"

रस्सी फेंकी गयी। सेठ जी ने खिड़की के छड़ों में उसे मजबूती से बांधा। पहले गुरूवाया ऊपर आये। जब सेठानी ऊपर चढ़ने लगीं तो मौका पाकर गुरूवाया बाहर निकलने का यत्न करने लगे। जल्दी में जो एक कोठरी में घुसे तो जोर से चौकठे की ठोकर लगी और धड़ाम से गिर पड़े। उस घर में रूई बिखरी पड़ी थी। जिसने गुरूवाया के सोरा सने हुए शरीर में लपट कर उन्हें लंगूर बना दिया। परन्तु गुरूवाया को अपनी दशा देखने का अवसर कहां? तेजी के साथ घर से निकल कर भागे।

गली में शैतान लड़कों की एक मंडली खेल रही थी, गुरूवाया का विचित्र वेष देखकर ताली पीटती हुई पीछे दौड़ी। सब लड़के जोर जोर से चिल्लाने लगे—धोबी है, चोर है, बन्दर है, भालू है, होली है, होली है, होली है।

इति।

इस अङ्क के गल्पों की सूची।

१—माँ-[ले०, श्रीयुत व्रजनाथ रमानाथ शास्त्री ... ३९६
२—प्यारी पताका-[ले०,श्रीयुत पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'४०५
३—रूपा-[ले०, श्रीयुत गिरीशदेव शर्मा ४१०
४—मेरी बेवकूफ़ी-[ले०, श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव बी० ए०, एल० एल० बी० ... ... ४२१
५—अन्त-[ले०, श्रीयुत परिपूर्णानन्द शर्मा ४३३

गल्पमाला के उद्देश्य और नियम।

१—इसका प्रत्येक अङ्क प्रति अंगरेज़ी मास की १ली तारीख़ को छप जाया करता है। जो सब मिला कर सालभर में ५०० से अधिक पृष्ठों का एक सुन्दर ग्रन्थ हो जाता है।

२—रानी, तथा राजा और महाराजाओं से उनकी मान-रक्षा के लिये इसका वार्षिक मूल्य २५) रु० नियत है।

३—इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से २॥) है और वी० पी० से २॥।) है। भारत के बाहर ४) है। प्रति अङ्क का मूल्य ।=) आना। नमूना मुफ़्त नहीं भेजा जाता है।

४—'गल्पमाला' में उसके गल्पों ही द्वारा संसार की सब बातों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

५—मौलिक गल्पों को इसमें विशेष आदर मिलता है। पुरस्कार देने का भी नियम है।

जून १९२४ में छपने वाले गल्प।

१—चिन्ता-सोहाग-[ले०, श्रीयुत पं० विश्वम्भरनाथ जिज्जा।
२—बुद्धू-[ले०, श्रीयुत परिपूर्णानन्द शर्मा।
३—तीन हृदय-[ले०, श्री गोविन्दप्रसाद शर्मा नौटियाल।
४—पढ़ो और हँसो-[ले०, श्रीयुत 'विनोदी'।

विजयध्वनि

माँ।

लेखक—
श्रीयुत प्रजनाथ रमानाथ शास्त्री।

(१)

गुलजान सुन्दरी थी—षोड़शी और रूपवती थी। विधि के अमिट विधान से उसे आज साहब के घर में रहकर 'आया' का काम करना पड़ता था। परन्तु इसमें वह दुखी नहीं है। साहब, रेजिमेंट में कप्तान हैं, उन्हें वह सुखी रखने में खूब दत्तचित्त है। फिर भी न जाने क्यों गुलजान को चैन नहीं है। प्रभुपत्नी जब उसे "आया" कह कर बुलाती हैं तब उसका मन मानो बड़ा दुखी होता है।

प्रभुपत्नी मिसेस मेकोइन, सुप्रसिद्ध कम्पनी Army and Navy के मैनेजर की अन्यतम पुत्री हैं। उन्हें, अपने रूप यौवन तथा बड़े घर का बड़ा अभिमान है, परन्तु दुर्भाग्यवश उन्हें, पति-सुख से वंचित रहना पड़ता है। इसी एक दुःख से दिन जब एकाएक मिसेस मेकोइन शय्याग्रस्त हुई तब

उन्होंने दो वर्ष के लड़के को अपनी आया के हाथ में देकर कहा—" गुलजान प्रतिज्ञा करो कि मेरे मरजाने के बाद तुम इस लड़के को नहीं छोड़ोगी। जब तक जीवित रहोगी जेधून को भूलोगी नहीं।" प्रभुपत्नी ने इतना कहकर अपना क्षीण हाथ गुलजान के स्थूल छाती पर धर दिया।

गुलजान ने धीरे २ परन्तु दृढ़ कण्ठ से कहा—"मेमसाह मैं अल्ला के नाम पर कसम खाती हूं कि प्राण रहते इस लड़ को अपने से अलग नहीं करूंगी।" गुलजान इतना कह वा बैठ न सकी, झट छोटे शिशु को बाहर लेजाकर खिलाने लगी

गुलजान उस छोटे शिशु की कौन थी? वह धीरे २ बाल को हिलाती डुलाती अपने मनही मन में गुनगुनाने लगी- "ना राजा का पलटन, ना राजा का घोड़ा-मेरे बाबू का मुलु में कोई नहीं जोड़ा।"

मिसेस मेकोइन ने ज्वर से तप्त ललाट पर अपना गर्म हाथ पटक कर दीर्घ निश्वास परित्याग किया। आज ती वर्ष से उसके पति ने उसे कुलटा समझ, परित्याग कर दिय है। वह क्या करे? नारी का यह असह्य अपमान वह सह सकी। अपने इस नश्वर देह को यहीं छोड़, वह दो दि में चल बसी।

* * * *

मेम साहब की मृत्यु के दूसरे दिन साहब ने गुलजान बुलाकर कहा-"देखो, इस लड़के को तुम अच्छी तरह रखना तुम आज से दस रुपये और ज्यादा पाओगी। इसका स भार अब तुमपर है। जाओ अब।" न जाने क्यों इस शि पर उनको पुत्र-स्नेह बिलकुल नहीं था। अभागे ने जब जन्म गृहण किया कभी पितृ-स्नेह नहीं पाया।

गुलजान ने अपनी वेतन-वृद्धि से आनन्द नहीं पाया। कप्तान ने लड़के को उसी के पास रखने की आज्ञा दी है यही उसका पुरस्कार है।

(२)

धीरे २ एक बरस व्यतीत होगया, इस अवसर में कप्तान साहब ने अपना नया विवाह कर लिया है। गुलजान इस विवाह से खुश नहीं थी। यदि दूसरी प्रभुपत्नी बच्चे को छीन लेगी तब? उसने देखा प्रभुपत्नी खूब सुन्दरी और सुस्वास्थ्य-सम्पन्ना है। प्रथम दर्शन में ही, उसकी वेशभूषा और बनावट चुनावट देख गुलजान का मन उसके प्रति न जाने क्यों विद्रोही हो उठा। नूतन मिसेस मेकेंजिन ने थोड़ा हँस कर शिशु के तरफ, लेने को हाथ बढ़ा दिया। शिशु गुलजान को छोड़ उसकी गोदी में नहीं गया। कप्तान साहब ने अपनी स्त्री का हाथ पकड़ कहा—"फ्लोरा, इसे लेने की तुम्हें ज़रूरत नहीं है। क्यों व्यथ में आफ़त लेती हो, चलो टहल चलें।"

उसके दुलारे को कहीं यह छीन न ले, इसी आशंका से गुलजान का हृदय अभी तक स्तब्ध हो रहा था। प्रभुपत्नी को जाते देख उसका हृदय हलका हुआ। उसने शिशु को चुम्बन दे, प्यार किया। मानो धनिक सेठ ने डाकू के हाथ से अपने धन की रक्षा की।

किन्तु यह आनन्द स्थायी न रह सका। गुलजान ने थोड़े ही में जान लिया कि उसका यह अधिकार पद्म-पत्र-स्थित जल-बिन्दु सदृश प्रतिमुहूर्त अस्थायी हो उठा है। नूतन गृहिणी उसे [illegible] सकती। सौत की सन्तान माता-

रणतः विमाता का स्नेह-भाजन नहीं बन सकता। विशेष कर जब स्वयं पिताही उसके प्रति स्नेह-लेश-हीन हो तब तो कहनाही क्या? जेसून उसकी विमाता का चक्षुशूल हो उठा।

एक दिन गुलजान अपने घर में बैठी थी। एकाएक शिशु का उच्च क्रंदन सुन पड़ा। आ कर देखा तो प्रभुपत्नी छोटे से बालक को घर झाड़ने वाले ब्रश से मार रही है। क्रोध से गुलजान का आपाद मस्तक जल उठा। ज्ञानशून्य हो उसने प्रभुपत्नी के हाथ से ब्रश को छुड़ा जोर से दूर फेंक कर तीव्र भर्त्सना सूचक स्वर में कहा—

"मेम साहब?"

इसके बाद आहत शिशु को गोद में ले वह घर के बाहर जाने को उद्यत हुई। मिसेस मेकोइन नेगम्भीर स्वर में कहा-"पाजी लड़के को जिस तरह तुम नष्ट कर रही हो इससे वह शीघ्रही डाकुओं के दल में जा मिलेगा। अब नहीं सहा जाता। मुझे इसे सुधारने की कोशिश करनी ही होगी।"

गुलजान उस समय तो तेजी कर चली गई, परन्तु थोड़ी देर बाद उसे अपने बर्ताव पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने थोड़ी देर बाद घर में आ अपनी आँखों में आँसू ला कहा—"मेम साहब, मैं अपने व्यवहार से बड़ी लज्जित हूँ। दया कर इस समय मुझे माफ करें अब कभी ऐसा नहीं करूंगी। बच्चा तो आपका ही है परन्तु इतने दिनों से खिलाते खिलाते मोह हो गया है। वह मेरा प्राण है इसी लिये मुझे उस समय क्रोध आ गया था। हम तो छोटे हैं। छोटों की बातों पर भला बड़े क्या ध्यान देते हैं?"

मिसेस मेकोइन हिन्दी भलीभाँति नहीं समझती थीं तथापि जो कुछ भी समझा उससे उनका संकल्प शिथि

सों हुआ। उनने कहा—"गुलज़ान, तुम्हारा महीना आज-
तक चुकता दूंगी तुम अब जाओ। लड़का तुम्हारा नहीं है।
मैं अब इसे अपनी ताड़ना में रक्खा करूंगी।"

गुलज़ान ने अपने चारों तरफ अन्धकार देखा। उसने
कातर कण्ठ से एकबार मेम साहब से कहा—"मेम साहब!
तुम मेरी माँ हो। मुझे निकाल मत दो। ज़रा दया करो।
मुझे अपने पास रहने दो। थोड़े दिन तक लाल को और
खिला लेने दो।"

गुलज़ान प्रभुपत्नी के पदतल में लोटने लगी। परन्तु
इससे भी उनका हृदय नहीं पसीजा। उनने गुलज़ान के सिर
पर पदाघात कर कहा—"Go, you dam."

तत्क्षण गुलज़ान के अश्रु विलीन हो गये। वह उसी
क्षण उठ खड़ी हुई। उसने स्थिर कण्ठ से कहा—"अच्छा,
मेम साहब मैं जाती हूँ।"

लड़का उस समय खूब ज़ोर २ से रो रहा था।

(३)

मि० मैकोइन अपनी पत्नी को ले क्लब घर गये हैं। चार
पाँच घण्टे तक उनके यहाँ आने की सम्भावना नहीं है।
गुलज़ान ने धीरे २ शिशु के कमरे में प्रवेश किया। एक बार
चारों तरफ अच्छी तरह देख शिशु को गोदी में उठा लिया।
धीरे २ उसने वह घर पार कर दिया। खोई हुई संपत्ति वाला,
जिस प्रकार अपनी संपत्ति मिल जाने पर खुश होता है गुल-
ज़ान भी उसी प्रकार खुश हुई।

शिशु के सहित गुलज़ान के भाग जाने का संवाद सुन
कप्तान साहब ने किसी प्रकार का भी चांचल्य प्रकट नहीं

किया। उन्होंने अपनी स्त्री से कहा—"उहँ जाने भी दो—तुम्हें बड़ी उनकी चिन्ता है। ईश्वर हमें तुम्हें सुखी रखे, ऐसे लड़के तो और हो जायँगे।"

"बात ठीक है परन्तु लोग क्या कहेंगे?" यह कह कर मिसेस मेकोइन ने अपने विवेक का परिचय दिया।

लाचार मि० मेकोइन ने पत्रों में विज्ञापन दिया—"एक आया कंधे पर शिशु लेकर भाग गई है। शिशु युरोपियन है जो महाशय उनको पकड़ कर लावेंगे उनको उचित पुरस्कार से पुरस्कृत किया जायगा।"

किन्तु यह चेष्टा सफल न हुई। गौरवर्ण-शिशु-संयुक्त नारी कहीं भी किसी को नहीं मिली।

(४)

गुलजान गोरखपुर में अपने एक दूर के नाते वाले भा के यहाँ रहती है। उपरोक्त बातों को हुए आज अठारह व व्यतीत हो गये हैं। जेसून इस समय सुश्री युवापुरुष हो गय है। इस समय वह अपने मामा के घोड़ा गाड़ी वाले व्यवसा का साझीदार है। गुलजान उसके लिये खूब परिश्रम कर भी कभी चैन से नहीं बैठती। वह उसकी माँ होकर भ दासी जैसी टहल किया करती थी। जेसून भी उसे माँ स भिन्न नहीं समझता था। आज भी वह अपनी माँ की गोद का लाल ही बना हुआ है।

अपनी मानसिक एवं शारीरिक शक्ति के बल से जेसून अपने व्यवसाय में खूब उन्नति करने लगा। वह कौन है? उसके और अपने इन कुटुम्बियों के बीच क्या रहस्य है वह अभी तक कुछ नहीं जानता था, परन्तु इतनी बात उसने जरूर

... की कि उसका यह अत्यन्त गौर मुख देखकर उसके ... आरोहियों की नज़र विस्मयपूर्ण तथा एक अव्यक्त ... में पूर्ण हो उठती थी। एवं वे उसे अपेक्षाकृत ज्यादा ... दे दिया करते थे। कभी २ वह सोचता—"यह कैसी ... है!" एक बात और थी कि जेसून सकल सुपरिच्छद ... धारी नरनारियों को देखकर एकाएक व्याकुल हो उठता था। उनका आकर्षण मानो चुम्बक सद्रूप था, जो जेसून को ... बार लोहे के समान खींचा करता था।

एक दिन गुलजान ने देखा—जेसून मिरजई खोलकर ... व्याकुल नेत्र से अपने गौर शरीर को टकटकी बाँधे ... रहा है। गुलजान को देख उसने इशारे से उसे अपने ... बुलाया। गुलजान पास आई। सहसा युवक ने पूछा— ... इसका क्या मतलब है कि मेरा शरीर इतना अधिक ... र है? मैं सुनता हूं—आजही सुना—लोग कह रहे ...—ओह, मैं नहीं कह सकता—वह कैसी भयानक बात ...—लोग कहते हैं कि मैं तुम्हारा जारज सन्तान हूँ-मैं साहब ... का लड़का हूँ।"

गुलजान सर्पाहता सी स्तंभित रह गई। उसके मुख से ... अक्षर भी न निकला। दीर्घ काल से जो स्मृति, स्मृति से ... रही थी, सहसा वह मेघोद्भिन्न सूर्य किरणों की तरह ... उठी।

निष्ठुर सन्देह से जेसून उन्मादी की तरह माँ का हाथ ... पकड़े रहा। उसने थोड़ी देर बाद बड़े कर्कश स्वर में कहा— "... सच है?, क्या यह सब सत्य है? तो क्या मैं तुम्हारा ... जारज सन्तान हूँ?

मन्त्र-चालित हो गुलजान ने कहा—"हाँ।"

कुरो—"पर, कुमक तो गई थी। हाँ हुआ क्या?"

यु०—"हुआ क्या? विजय हमारे हाथ रही। पर, हमारा वीरवर कप्तान शत्रुओं के हाथ में पड़ गया। कुमक पहुँचने तक हमारे पचास साथियों में से एक मैं और दूसरा कप्तान ओकू ही बच रहे थे—परन्तु उसी समय एकाएक साठ सत्तर रूसियों ने घेर कर हमारे कप्तान को कैद कर लिया। कुमक पहुँचने पर वे भाग गये।"

जनरल कुरोकी कुछ सोच विचार में पड़ गये। क्षण भर बाद उन्होंने पूछा—

"ओकू को वे पकड़ क्यों ले गये? मारा क्यों नहीं?"

यु०—"बात यह है कि जिस समय शत्रुओं को हमारी अल्प-संख्या का विश्वास हो गया उस समय वे हमारे बहुत निकट आकर सङ्गीनों की लड़ाई लड़ने लगे। उस अवसर पर एक रूसी अफसर से कप्तान ओकू ने जबरदस्ती उसका राष्ट्रीय झण्डा छीन लिया था।"

कुरो०—"शाबाश।"

यु०—"पर हमारी राष्ट्रीय पताका भी कप्तान ही के हाथ में थी। अपमानित रूसी अफसर ने उसका पताका छीन कर अपना बदला लेना चाहा।"

कुरो०—"फिर क्या हुआ?"

यु०—"हमारे कप्तान कोई ऐसे-वैसे वीर तो थे नहीं जो बिना प्राण दिये ही आपकी पताका शत्रुओं के हाथ में दे देते। जिस समय उन्हें इस बात का ज्ञान हुआ कि शत्रु उन्हें गिरफ्तार करना चाहते हैं उसी समय औंटी हुई रूसी पताका को मेरे हाथ में देते हुये उन्होंने कहा—"यदि मैं जीवित रहा तो ठीक ही है नहीं तो कुरोकी महाशय की आज्ञा से यह

पताका मेरी स्त्री के पास भेज दी जाय। मैंने रण-यात्रा के समय, अपनी स्त्री से, शत्रुओं की एक पताका उपहार देने की प्रतिज्ञा की है!"

कुरो०—"वह पताका कहाँ है?"

युत्सु ने अपने कोट के भीतर से एक रूसी पताका निकाल कर जनरल कुरोकी के हाथों में दी। कुरोकी ने पताका के सम्मान के लिए अपनी टोपी उठाते हुए युत्सु से पूछाः—

"तुमने इसे अपमानित तो नहीं किया है।"

युत्सु ने दृढ़ता से उत्तर दिया—"नहीं, बिल्कुल नहीं।"

प्रसन्न होकर कुरोकी ने कहा—'ठीक। हमें किसी की राष्ट्रीय पताका का कदापि अपमान न करना चाहिए। यह अत्यन्त पवित्र वस्तु है। इसके प्रति शत्रुता दिखाना कायरता है, नीचता है, असभ्यता है। तुम विश्वास रक्खो बहादुर ओकू की इच्छा पूरी की जायगी।"

(२)

रूसी सेना के असंख्य वीर आश्चर्यपूर्ण दृष्टि अपने सेनानी की ओर देख रहे हैं। उनके सम्मुख एक ज पानी वी—अपनी सूर्य्य के चिन्ह वाली रक्त-वर्णा पताका लि निर्भय खड़ा है।

सेनानी ने वीर ओकू से कहा—"पताका नीचे झुका दो। इस समय तुम हमारे बन्दी हो। आत्म समर्पण करो।"

ओकू—"मेरे बन्दी होने में क्या सन्देह है? पर आप पताका झुकाने का आग्रह क्यों करते हैं? मेरे साथ ही इसे भी कारागार की कोठरियों में ठूँस दीजिए।"

सेना०—"यह नहीं होने का। तुम्हें इस क्षुद्र पताका को मेरे चरणों के सम्मुख झुकाना पड़ेगा।"

क्षुद्र पताका! वीरवर ओकू के नेत्र रक्तवर्ण हो गये। उन्होंने गरज कर कहा—

"यह कदापि नहीं हो सकता।"

पृथ्वी के विधाता (Adjuster of the Earth) रूस-सम्राट का प्रतिनिधि—रूसी सेनापति भी साधारण आदमी नहीं था। उसने भी उसी—नहीं नहीं उससे भी भयङ्कर—स्वर में उत्तर दिया—

"जरूर होगा। तुम्हें अपने झण्डे को मेरे पैरों के सम्मुख झुकाना पड़ेगा, नहीं तो तुम अपनी पताका सहित तोप से उड़ा दिये जाओगे।"

* * * *

इशारा हुआ। क्षणभर में भयङ्कर वदना काली स्वरूपा तोप ओकू की पीठ से सटा कर लगा दी गई। गोलन्दाज़ हाथ में पलीता लेकर सेनापति के मुख की ओर देखने लगा।

फिर वही हुक्म हुआ—

"पताका नीचे झुकाओ। व्यर्थ में क्यों प्राण देते हो?"

ओकू ने पताका सहित अपना दाहिना हाथ तोप के मुख पर टेक दिया—उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उस तोप पर जापानी वीर ओकू ने विजय प्राप्त कर अपनी जातीय पताका गाड़ दी है—और कुछ मुस्करा कर बोलाः—

"सेनापति महाशय! यह जातीयता का प्रश्न है। इसके पालन करने के लिए प्राण दे देना गौरव की बात है। आप लोग अपनी अज्ञानता वश हमें कायर और असभ्य समझते हैं इसी लिए हमारी पताका का अपमान करना चाहते हैं। मैं भग-

धान बुद्ध के चरणों की शपथ करके कहता हूँ कि जीते जी अपनी पताका आपके हाथों में न दूँगा। इसके लिए आप चाहे जो करें।"

सेनापति ने गोलन्दाज़ की ओर एक भयङ्कर इशारा किया चारों ओर निस्तब्धता छा गई। इसी निस्तब्धता में सब ने सुना—ओकू अपना जातीय गान गा रहा था:—

"जय जननी जापान!
ऐसा कौन नीच है जिससे हो तेरा अपमान?
जल कर, मर कर, हम रक्खेंगे तेरे पद की आन,
तन, मन, धन सब कुछ है तेरा, हो! तुझ पर बलिदान!
जय जननी जापान!"

* * * *

ओकू की हिम्मत नहीं छूटी, उसका हठ नहीं छूटा, उसके दृढ़ पञ्जे से उसकी पवित्र पताका भी नहीं छूटी—हाँ छूटा पशु बल ने जापान की जातीय पताका को आकाश में फहरा दिया—और वन्दी. ओकू के अङ्ग प्रत्यङ्ग को अलग अलग कर के मुक्ति धाम में पहुँचा दिया।

नीचे संसार को ऐसा मालूम हुआ मानो आकाश गरज कर कह रहा है:—

'ओकू की जय!'

(प्रताप से)

इति।

रूपा।

लेखक—
श्रीयुत गिरीशदेव वर्मा।

(१)
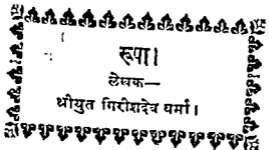
राघा की प्रियतमा कन्या रूपा अठारह वर्ष की है। उसका जन्म नीच कुल में होने पर भी उसकी रूप-प्रभा का प्रकाश चतुर्दिगन्तिक है। गांव वालों के मुख से जो हर्ष और सीत्कार से सने अस्फुट शब्द निकलते थे, रूपा उसे समझती थी कि ये प्रेम और व्यक्त व्याकुलता की उच्छ्वासें मुझे ही लक्ष करके निकल रही हैं। उसकी शरीर-लता में लावण्य का ललित कुसुम खिल रहा था, चञ्चल और विशाल नेत्रों में स्वेत दूध की धारा के समान भोली चितवन खेल रही थी, नितम्ब देश के नीचे तक लटकते हुए काली नागिन के समान उसके केश-कलाप लीलामय चंचल गति से काली घटा के बीच में चपला के समान मालूम होते थे। सुन्दरता के सर्वोक्त लक्षण विराजमान थे। पास पड़ोस की स्त्रियाँ करुणापूर्ण कण्ठ से कहा करती थीं कि कोई देवी किसी कर्म फल से च्युत हो इस लोक में आ 'रूपा' रूप में प्रकटित हुई है। किसी का

कथन था —साक्षात लक्ष्मी ने रूपा के रूप में मल्लाह कुल (उज्वल किया है। परन्तु समय तेरी गति बलवान है। रूप बाल-विधवा है। उसके इस लोक के देवता परलोकवास हो चुके हैं। उसके लिये संसार सूना है। माता की मृत्यु तदनन्तर पिता का स्वर्गवास के दुःख भी रूपा के मर्मस्थान क कम्पित कर चुके हैं। अब उसके पालन पोषण का भार ए दूर की सम्बन्धिनी स्त्री पर है। गाँव, अधम-तारिणी माता गंग के किनारे शोभा दे रहा है। रूपा के पिता मछली मारने क व्यवसाय करता था, बालिका भी उसको इस कार्य में सहा यता दिया करती थी, अतः वह इस समय नाव चलाने मे अति प्रवीणा है। पालन पोषण करने वाली स्त्री का भी व्यव साय उपरोक्त पिता की नाईं ही है। रूपा उसे मौसी कहकर पुकारा करती है।

घर के काम काज के लिये रूपा सैकड़ों बार गंगा के तट पर आती है। गंगा में स्नान करना गंगा में जल पीना तथा घर के कार्य से छुट्टी मिलने पर गंगा के तट पर कलानिधि की सुधास्निग्ध अनुपम ज्योत्स्ना के प्रकाश में बैठना, रूपा का नियमित कार्य है। ग्रीष्म ऋतु में गंगा कृश हो जाती थी, उस समय जिस प्रकार वह उसको रोचक थी, उसी प्रकार वर्षाकाल में भी उसको आनन्ददायिनी थी। गंगा उसके सुख दुख की सङ्गिनी है। रूपा के स्वामी के मरने पर उसके पिता जो सतसंगी थे—उसका अच्छे२ उपदेश देते थे। इसी से रूपा का चरित्र, शुद्ध तथा निर्मल हुआ है।

(२)

हम जिस गाँव की चर्चा कर रहे हैं आजकल उसके जमीं

दार का नाम मदनगोपाल है। पिता की मृत्यु के बाद मदन स्वतन्त्र होकर विलासप्रिय होगया है। समयानुसार मदिरा का सेवन, तदनन्तर व्यभिचारी होकर वह सुमार्ग की सीढ़ियों से उतर कर कुमार्ग की सीढ़ियों पर जा चढ़ा है। कलकत्ता के कालेज में जब वह पढ़ता था तभी उपरोक्त दोष इसने प्राप्त कर लिये थे। धन के लोभी दुष्ट लोग, अनेक प्रकार की गौरव सूचक बातें कहकर मदन का धन खाया करते थे। उसे विश्वास था कि उसके ऐसा विद्वान रूपवान और धनवान संसार में कोई नहीं है।

रूपा के रूप तथा सुन्दरता की बातें गाँव में फैल रही थी, तब कामुक मदन से कब किस प्रकार छिपी रह सकती थी। दुग्ध पर जिस तरह बिल्ली की तीखी दृष्टि पड़ती है उसी प्रकार मदन की पापदृष्टि रूपा पर पड़ी। धन लोभ, अन्याय, प्रलोभन तथा डर दिखलाकर प्रथम, औरों के द्वारा उसने उसे वश में लाना चाहा, परन्तु इससे कार्य की सिद्धि न हुई। वैश्कुल में जन्म होने पर भी रूपा सती धर्म की महिमा जानती थी।

सर्वदा निराश होने से रूपोन्मत्त मदन का रोष क्रमशः बढ़ने लगा—अन्त में वह अपनी लोक लज्जा तथा मान मर्यादा को छोड़कर स्वयं उसके पाने के लिये यत्न करने लगा।

रूपा नियमित रूप से सूर्यास्त के कुछ पहिले गङ्गा स्नान को जाती है—ऐसा जानकर मदनगोपाल भी सायंकाल में हवा खाने के बहाने अच्छे कपड़ों से सज्जित होकर वहाँ जाने लगा। बेचारी रूपा उसके इस व्यवहार से दुखी होकर लज्जा से मस्तक नीचा किये हुए घर आकर अपनी मौसी

से सब बातें कहती थी। उसकी मौसी जमींदार के विरुद्ध बोलने का साहस न रख चुप हो जाती थी।

दिन पर दिन बीतने लगा परन्तु मदनगोपाल की आशा-लता पल्लवित न हुई। अन्त को उसने दूसरे उपाय का अवलम्बन किया। उसने धन देकर उसकी मौसी को अपने हाथ में कर लिया। मौसी धन के लोभ में पड़ कर अभागिनी रूपा को पिशाच के हाथों में दे देने के लिये सहमत हो गई। निराश्रया हरिणी को व्याधा के पंजे में फंसा देने का उपाय ठीक हो गया।

(३)

नित्य के अनुसार गंगा के तट पर रूपा ने मदन को देखा, कामान्ध मदन ने रूपा को देखकर आज अपने कुअभिप्राय को जताया। सुशीला रूपा ने उसकी ओर दृष्टि न देकर घर की ओर लौट पड़ी। परन्तु मदन को पीछे२ आता देख डर कर वह शीघ्रता से जाकर अपने घर में घुस गई, पीछे से मदन ने भी घर में आकर बाहरी दरवाजा बन्द कर दिया। रूपा ने मौसी! मौसी! पुकारा, किन्तु कहीं से कोई उत्तर न मिला। रूपा समझ गई कि उसके सर्वनाश में अब विलम्ब नहीं है। मदन ने उसकी ओर बढ़ते हुए कहा—"रूपा! तुम एकदम निर्बोध हो। ऐसा सुन्दर रूप और यौवन क्या व्यर्थ जाने देने की चीज़ है। आज इस भीगे वस्त्र में तुम्हारी सुन्दरता मानो अंग २ से फूट कर निकल रही है। मेरी इच्छा होती है कि तुम्हें दिनरात हृदय में रखूं।"

रूपा लज्जा से मस्तक नीचा किये बोली—"बाबू जी!

मैं अभागिनी दरिद्र कन्या हूँ। आप जमींदार हैं, मेरे पिता तुल्य हैं। आप मुझसे ऐसी बातें न करें।"

मदन—"रूपा! तुम्हारी जो इच्छा हो सो कहो, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। मैं तुम्हारे लिये बहुत दिनों से लालायित हो रहा हूँ। क्या तुम जमींदार की प्रणयिनी नहीं होना चाहती?"

रूपा—"नहीं, मुझे धन की आवश्यकता नहीं है। मुझे जो कुछ है वही बहुत है। आप मेरे घर से चले जाइये, नहीं तो मौसी को पुकारूँगी।"

मदनगोपाल ने जोर से हंसते हुए कहा—"तुम्हारी मौसी तो मेरे ही लिये घर से चली गई हैं। वह मेरी राय में हैं, केवल तुम ही दयाहीन हो। इस समय भी मेरी बात मान लो। मैं तुम्हें अपनी रानी बनाऊँगा।"

रूपा—"नहीं, मैं आपके सुखों की भूखी नहीं हूँ।"

मदन—"तुम कदाचित न होओ। परन्तु बहुत सी आभूषण-वस्त्र-विहीना वैश्य ब्राह्मण की कन्यायें तक सती होने की अपेक्षा वस्त्रालङ्कार युक्त मुझ जैसे जमींदार की उपपत्नी होने में अपना सौभाग्य समझती हैं।"

रूपा—"लेकिन बाबू जी, मैं आपके पैरों पड़ती हूँ। आप मेरा धर्म बचावें मुझ अभागिनी पर दया करें।"

मदन—"रूपा! तुम धर्म की बातें क्यों चलाती हो। तुम्हारा जन्म नीच कुल में हुआ है। धर्म किसे कहते हैं यह तुम नहीं जानती। दोनों समय मछली खाना और एकादशी को भी उपवास न करना—यदि इसमें पाप नहीं है तो मेरी प्रार्थना स्वीकार करने में भी पाप नहीं है। रूपा! अब मैं विशेष विलम्ब नहीं कर सकता। यदि तुम

मेरी बात को सरलता से स्वीकार करती हो तो करो, नहीं तो मैं जबरदस्ती करूँगा।"

मदन के कठोर बातों को सुन कर रूपा के नेत्रों में आँसू आ गये। रोते २ रूपा बोली—"मदनगोपाल बाबू! आप के धन हैं। आप मुझ पर दया कीजिये। आपके इच्छा करते ही एक नहीं सौ २ स्त्रियाँ आपकी सेवा करेंगी। मेरी रक्षा कीजिये।" ऐसा कह कर करुणापूर्ण नेत्रों से रूपा दया की भीख माँगने लगी! किन्तु पाषाण हृदय मदन इससे थोड़ा भी नम्र न हुआ, वरन हँसते हुए बोला—"रूपा! इस प्रकार सती धर्म की रक्षा के लिये, स्त्रियों की प्रार्थना तो मैं इसके पहिले भी कई बार सुन चुका हूँ।"

ऐसा कह कर दुष्ट मदन कामान्ध राक्षस के समान झपट कर रूपा को अपनी छाती से लगाकर चुम्बनालिङ्गन करने लगा। रूपा ने बल कर के उसके पंजे से निकल कर घर में इधर उधर दौड़ने लगी। उसने पास में एक नोकीला हँसुआ पड़ा देखा, उसे उठाकर बोली—"नराधम! अब अगर एक पैर भी आगे बढ़ा तो इसे तेरे कलेजे में घुसेड़ दूँगी। यदि ऐसा न कर सकी तो आत्म-हत्या कर लूंगी।"

रूपा की इस भयंकर मूर्ति को देखकर मदन की पापात्मा एक बार काँप उठी। नराधम एकटक रूपा को देखता रहा, परन्तु थोड़ी देर में रूपा शान्त होगई। हँसुआ को दूर फेंक दिया और बोली—"मदनगोपाल बाबू! क्या आप सच मुच प्यार करते हैं?" मदन, रूपा के इतने जल्द इस स्वभाव परिवर्तन से चकित होकर बोला—"यदि ऐसा नहीं होता तो राजराजेश्वर मदन तुम्हारे द्वारा अपमानित क्यों होता!

रूपा—"क्या आप कसम खाकर कह सकते हैं कि मुझे प्यार करते हैं?"

मदन—"बोलो कौन कसम खानी पड़ेगी? मैं वही खाऊँगा।"

"अच्छा सुनिये"—इतना कह कर रूपा धीरे २ मुस्कुराई। इस मुस्कुराहट में चपला चंचलायमान हुई। घाव के ऊपर नमक पड़ गया। रोगी तड़फड़ा उठा। रूपा बोली—"मेरा एक प्रेमी और है, वह भी आपही की तरह रोज़ मुझ से प्रेम की भीख माँगा करता है। मैं दो आदमी की नहीं हो सकती, इस लिये आपकी न होकर उसकी होऊँगी। क्या आप उसका नाम ले सकते हैं?"

मदन ने ज़ोर से कहा—"यही बात है तो मुझसे प्रथम क्यों नहीं कहा? वह कौन सा अभागा है? इस देश में कौन ऐसा है जो मदन की प्रणयिनी के निकट प्रेम-भिक्षा चाहता है! वह कहाँ है?"

रूपा—"वह रोज़ गंगा के बीच वाले 'दिअरे' पर आकर मुझसे प्रार्थना करता है। वह इस पार का रहने वाला नहीं वह उस पार का रहने वाला है। मैं ने आपकी बात उससे कही थी, वह इस पर हँसने लगा और बोला—"मेरे प्रताप से सैकड़ों मदनगोपाल का ठिकाना लग चुका है। यह मदन मेरे लिये अति तुच्छ है।"

रूपा की बात सुनकर मदन की क्रोधाग्नि भड़क उठी। बोला—"चलो देखूँ, वह कैसा प्रतापी है। आज उसे मार डालूँगा। किन्तु रूपा तुम्हारा विश्वास नहीं, उचित मेरे पंजे से निकलने के लिये तुमने यह जाल रचा। तुम्हें भी मेरे साथ चलना होगा।"

रूपा—"अवश्य चलूँगी। चलिए।"

(४)

रात्रि का कुछ भाग समाप्त हो चुका है। अष्टमी का चन्द्रमा पृथिवी के अन्धकार को दूर करने के लिये यथाशक्ति उद्योग कर रहा था, किन्तु एकाएक आकाश के एक किनारे से एक काले बादल के टुकड़े ने आकर उसकी सभी चेष्टा व्यर्थ कर दी। उस समय वायु का वेग प्रबल हो गया था पवन के प्रवाह से गंगा में बड़ी २ तरगें उठती थीं। तरंग पर तरंग उठकर मानो किसी घटना के सूत्रपात की सूचना दे रही थीं।

रूपा शीघ्रता से डाँड़ चला नाव को खे रही थी। बगल में बैठा हुआ मदन आनन्द से अर्द्धोन्मीलित नेत्रों द्वारा रूपा की रूप-सुधा पान कर रहा था।

पवन ने आँधी का रूप पकड़ा। आँधी के साथ ही आकाश बादलों से छा गया। पवन के वेग से भागीरथी में समुद्र की तरह बड़ी २ तरंगें उठने लगीं जो बार २ यह बताती थीं कि इस टूटी फूटी नाव के डूबने में अब विलम्ब नहीं है। मदन प्रकृति के इस भीषण परिवर्तन से डर कर बोला—"रूपा, आज लौट चलो, आज जाने का समय नहीं है।"

रूपा—"देखिये मदनगोपाल बाबू! प्यार करने का बहाना न कीजिये, मैं स्त्री होकर जाने में नहीं डरती और आप पुरुष होकर डरते हैं। यह बड़ी लज्जा की बात है। गंगा में ज्वार आया है। अब हवा का चलना भी बन्द हो जायगा। दिअरा भी नज़दीक है। मेरे रहते आप डूब नहीं सकते।

मरें मरेंगे तो दोनों मरेंगे । ऐसी मृत्यु भी क्या एक सुख नहीं है—!"

अभी बात पूरी भी न हो पाई थी कि नाव दिअरे के किनारे आ लगी । रूपा ने नाव से उतर कर कहा—"झट चलिये। दिअरे के ठीक बीच में वह विदेशी आप की बाट देख रहा है। मैं आपको दूर से उसे दिखा दूंगी । मैं नर-हत्या न देख सकूंगी ।"

मदन ने कहा—"अच्छा ऐसा ही करना ।"

रूपा ने कुछ दूर आगे बढ़कर सामने अंगुली दिखाकर बोली—"वह देखिये—वहाँ पर वह बैठा है । कुछ दूर और आगे बढ़ने ही बस साफ़ २ देखियेगा ।"

ज्योंही मदनगोपाल तलवार लिये कुछ दूर आगे बढ़े, रूपा दौड़ कर किनारे से लगी हुई नाव पर चढ़ कर चलती बनी । गंगा की तेज धारा में नाव हंस के समान नाचते नाचते बढ़ चली । कुछ काल बाद मदन ने जब पीछे फिरकर देखा, तो देखा रूपा नाव पर धीरे २ हँस रही है। चन्द्रमा की शीतल किरणों से उसका मुख तेजमय हो रहा है। अब मदन की बुद्धि चकरा गई । मृत्यु का भय होने लगा। वह तैरना नहीं जानता था, इसके अतिरिक्त इस समय गंगा में 'ज्वार' का आरम्भ होगया है। थोड़ी देर में 'दिअरा' गंगा के गर्भ में विलीन हो जायगा । दिअरा पर जलही जल हो जायगा।' मदन किनारे आकर बोला—" रूपा ! मेरा प्राण बचाओ, नाव इधर लाओ । देखो, दिअरे का भाग जल्दी जल्दी डूब रहा है।"

रूपा नाव पर से बोली—" मदनगोपाल बाबू ! अब आप-का इस जन्म का लेखा शीघ्र ही समाप्त होने वाला है। आप

अब भगवान का नाम स्मरण करिये, जिसमें आपका कल्याण हो।"

मदन व्यग्र होकर बोला—" रूपा! मुझे क्षमा करो, मैं तुम पर अत्याचार न करूंगा। मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूं। दया करो, क्षमा करो।"

रूपा—"छि, छि, आप पुरुष होकर मरने से इतना डरते है! मैं स्त्री होकर इसी समय आनन्दपूर्वक उसका आलिङ्गन करूँगी। आपने मेरा शरीर कलङ्कित किया है, अब मैं इस शरीर को कदापि न रक्खूंगी।"

मदन—" रूपा! इस बात को तो कोई भी नहीं जानता और मैं भगवान के नाम की शपथ खाकर कहता हूं—किसी के सामने यह बात न कहूँगा। तुम मेरी रक्षा करो।"

रूपा—"मनुष्य के छिपाने से क्या कोई बात छिप सकती है भगवान सर्वदर्शी हैं। हाँ एक बात आप से और कहनी है। अपने प्रेमी की बात,—क्या आप उसका नाम सुनना चाहते हैं?।"

मदन—"नहीं, वह सुनने की आवश्यकता नहीं। पानी बढ़ता आता है। अब मैं खड़ा होने में भी असमर्थ हूं। तरंगों की टक्करों से पैर उखड़े जाते हैं।"

रूपा—"सुनिये अथवा न सुनिये, मेरे प्रेमी का नाम है "मौत" जोकि शीघ्र ही आपको हड़प लेगा। उसका घर मेरे देश में नहीं है, इसी से वह आप से नहीं डरता है।"

देखते देखते एक के बाद एक तरंग आकर मदन की देह पर टकराने लगी। वह प्राण बचाने के लिये हाथ जोड़ रूपा से बार २ प्रार्थना करने लगा कि लौट आओ। किन्तु रूपा न लौटी। प्रबल तरंग की झोंकों में न मालूम मदन कहां

आ गया । उसकी पापिष्ट आत्मा संसार से प्रस्थान कर चली ।

इधर रूपा नाव पर खड़ी हो, हाथ जोड़ आकाश की ओर देखकर बोली—"हे भगवान, पाप तथा पुण्य किसे कहते हैं—मैं नहीं जानती, किन्तु पापी के छूने से मेरा शरीर कलङ्कित हुआ है। अब इस शरीर को मैं नहीं रख सकती। मेरी यह प्रार्थना है कि भविष्य के लिये मदनगोपाल की आत्मा इस अपराध से मुक्त कर दी जाय।"

इतना कहकर रूपा नाव से उछल कर गंगा की धार में जा गिरी। तरंगों की शान्तमयी गोद में उसकी भौतिक देह विलीन हो गई। साथही साथ उसकी नाव भी नाविक के बिना डूब गई।

इति।

मेरी बेवक़ूफ़ी।

(अंग्रेजी से)

ले०-श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव बी.ए, एल.एल.बी.।

(१)

कोई किसी में नाम पैदा करता है और कोई किसी में। मगर मैंने ख़ास झेंप में नाम कर रखा है। कोई लड़ने में अपनी बराबरी नहीं रखता कोई इल्म में। कोई हुनर में। कोई मार पीट में। मगर मैं, झेंप में एकता हूं। दावे से कहता हूं कि इसमें कोई मेरा पासंग भी नहीं पा सकता। रुस्तम ने कुश्ती में भले ही किसी को पटखना दिया होगा, लेकिन झेंप की काट छाँट ही और है। इसमें उनकी दाँव पेंच एक नहीं काम आ सकती। इस अखाड़े में मैं ही मैं हूं। यह इज़्ज़त और खुशकिस्मती अकेली मेरी कोशिश से नहीं मिली, बल्कि ईश्वर ने भी कुछ मदद की है। किस्मत ही में बेवक़ूफ़ियाँ करनी लिखी हैं तो मैं क्या करूँ। कोशिश करता हूं कहने को कुछ और ज़बान से निकलता है कुछ। फ़िक्र तो मुझे हरवक़्त यही लगी रहती है कि किसी सूरत से लोगों की नज़रों में भला मालूम होऊँ। मगर किस्मत की ख़ूबी से हरदफ़े ऐसी अक़्

हमन्दी कर बैठता हूँ कि उल्लू बन जाता हूँ। यह महारानी हैप मेरे पीछे बेतरह पड़ी हुई हैं। इस लिये लोगों से मिलना जुलना छोड़ दिया। छे महीने से किसी आदमी की सूरत तक नहीं देखी। दिन भर कमरे ही में पड़ा सड़ा करता हूँ। और जब ज्यादे तबियत घबड़ाती है तब एक सुनसान नाले में मछली का शिकार करने चला जाता हूँ।

एक रोज़ मैं अपने पुराने पेड़ के नोचे बैठा मछली का शिकार खेल रहा था। बस यही सोच में था कि क्या ही अच्छा होता कि दुनिया में कोई भी औरत न होती, तब मैं मज़े से बेखटके घूमता। इतने ही में मुझे कुछ दूर पर बड़ी ही सुरीली हँसी सुनाई दी। आँखें उठा के देखा कि नाले के उस पार दो खूबसूरत युवतियाँ आपस में चुहलें कर रही हैं। उनको देखते ही मैं भड़क के उठा। मगर जल्दी में हैट के बदले मछली के चारे की हाण्डी सर पर रखने लगा।

यह देखकर बड़ी बोली—"माफ कीजियेगा मिस्टर, हमारी वजह से आपको बड़ी तकलीफ हुई। क्या करें, हम सब इस मैदान में टहलने के लिये आई थीं। मगर अब घर का रास्ता भूल गईं। भटकते भटकते यहाँ तक पहुँची हैं। पर अब समझ में नहीं आता इसको कैसे पार करूँ।"

मैं—"यहाँ से एक मील की दूरी पर एक पुल है। मगर उधर जाने से आपको रास्ते में एक साँड़ मिलेगा। इसलिये आइये इस तरफ़। थोड़ी ही दूर पर एक पेड़ का तना है। उसी पर से इधर आजाइयेगा।"

कहने को इतना कह गया। न जाने किस तरह से। पर, इसके बाद मेरी ज़बान झट से बन्द हो गई और पैर चलने

लगे। विना कुछ कहे सुने डगन उगन छोड़ कर एक तरफ को सरपट चला।

बड़ी—"अजी ओ मिस्टर, ज़रा आहिस्ते से चलिये।"

उस पार वे दोनों और इस किनारे पर मैं। वे धीरे धीं चलती थीं और मैं तीन तीन गज का डेग रखता था। चल रास्ता बताने मगर मालूम यही होता था कि मैं नकेल तोड़ के भागा हूँ। और पीछे से कोई मुझे खदेड़ रहा है।

जैसे ही उस कुन्दे के पास वे पहुँची हैं। वैसे ही छोट चिल्ला उठी।

"ना ना मैं इस पर से नहीं जाऊँगी। इसको देखते ह मेरी जान सूख जाती है।"

बड़ी०—"अरे! इसमें घबड़ाने की कौन सी बात है चली आओ।"

इतना कहके वह तो इस पार हो रही मगर छोटी उसी तरफ अटक रही। थी ज़रा नखरे वाली। इसलिये एक पैर रख रख के वह वार वार हटा लेती थी।

मैं०—"ठहरिये, मैं आपकी मदद करता हूँ।"

यह कह के दनदनाता हुआ मैं उसके पास पहुँच गया। उसने झिझकते हुए अपना नन्हा सा हाथ मेरे हाथ में दिया। यहाँ तो बिजली दौड़ गई। गए उसको सम्भालने के लिये मगर खुद ही गिरने गिरने होगए। अगर उसका सहारा न होता तो...कुछ नहीं। बड़ी मुशकिलों से उसने अपना एक पैर बढ़ाया। और बढ़ा कर खींच लिया और खड़ी होके हँसने लगी। उसकी इन बातों से मैं उसपर हजार जान से...जाने दीजिये अगर दूसरी न होती तो झेपको ऐसी तैसी उसको गोद में उठा के ले भागता। न जाने किन २ नखरों से वह इस पार

गई। रास्ते में अगर दस दफे मेरी टाँग बहँकी तो बीस दफे दिल फिसला।

इस तरफ़ आते ही बोली कि मैं बेतरह थकी हुई और प्यासी हूँ। इस पर मैंने धड़ाके से कहा कि चलिये मेरा मकान नज़दीक है। वहाँ ज़रा देर आराम कीजिये।

जैसेही मैं इन दोनों को लिये हुए घर पहुँचा वैसे ही चची मुझे देखते ही मुस्कुरा पड़ीं और मुझे अजीब निगाह से घूरने लगीं। अब कहाँ रुकावट? मेरी पुरानी आदत ने एकबारगी सा बोल दिया।

मैंने चची से लड़खड़ाती हुई ज़ुबान में कहा कि ये दोनों अपना रास्ता भूल गई हैं। इसलिये......। चची समझ गईं और बड़ी ख़ातिर से उनकी आवभगत की। दो प्याले में दूध भर के उनके सामने लाईं। मैंने लपक कर उनके हाथ से प्याले लिये और बड़ी शान के साथ उन्हें लेके आगे बढ़ा। मगर कुछ तो झेंप की वजह से और कुछ कमबख़्ती की मदद से मेरे जूते का अगला हिस्सा दरी की सूराख़ में फँस गया। नतीजा यह हुआ कि मैं प्याला लिये दिए दोनों युवतियों की गोद में मुँह के बल औंधा आ पड़ा। चोट तो लगी। चाहे उन दोनों को या मुझे। मगर दोनों का साया अच्छी तरह से ख़राब हो गया। मेरी समझ में यह नहीं आता कि उस वक्त मेरी शक्ल कैसी रही होगी। छोटी ने बड़े भोलेपन के साथ मेरी ओर से कहा—

"च! च! च! आपकी दरी ख़राब गई।"

"और आपके कपड़े?" चची ने कहा।

"जाने दीजिये धुल जायँगे।"

चची ने उस वक्त अपनी राग छेड़ दी। कहने लगीं—

"क्या किया जाए ! टाम हमेशा ही बेवक़ूफियाँ किय करता है। कोई काम इसका बिना बेवक़ूफी के नहीं होता ऐसा झेपू है यह कि इसके मारे नाक में दम है। ठहरिये मैं आप लोगों के लिये और दूध लाती हूँ।"

झेप का नाम सुनते ही दोनों युवतियाँ मुस्कुराती हुई मुझे देखने लगीं। अब तो मेरी हालत बिगड़ी। ऐसा मालूम होता था कि मैं खड़े २ उबाल दिया गया, चेहरा घूमता हुआ कन्दील की तरह रंग बदलने लगा। ज़राही में सफ़ेद और ज़राही में लाल हो जाता था। यह अच्छी तरह से ज़ाहिर हो गया कि मेरी क़िस्मत में बेवक़ूफियाँ ही करना लिखा है जब तक जऊँगा ऐसाही करता रहूँगा। बस एकबारगी ज़िन्दगी से तबियत घबड़ा गई। मैंने रोआसा होकर चची से कहा—

"चची, आप इन दोनों युवतियों को रास्ता बता दीजियेगा। मैं अस्तबल में फाँसी लगा के मरने जाता हूँ।"

इतना कह के यहाँ से मैं चला। छोटी का यह कहना कि "क्या यह सच कह रहे हैं" मेरे कानों में पड़ा।

चची०—"कोई ताज्जुब नहीं कि यह ऐसा कर बैठे क्योंकि हाल ही में एक आफत इसने की थी।"

शायद मेरे पुराने किस्से में ये लोग मौजूदा हालत को कुछ देर के लिए भूल गईं कि दस मिनट के बाद ये लोग अस्तबल में आईं, और आते ही सब की सब चिल्ला उठीं।

मैं कड़ी से लटकती हुई रस्सी से अपनी गर्दन बान्धे एक गड़बड़े बाँस पर खड़ा था और कूदने के लिये तइयार था चची चिल्लाईं। मैंने अपना सर उठाया।

"चची! अब चुप रहो। ईश्वर का नाम लो आज से बेव"[पगला]

इको खतम। छोटी से कह देना कि मैं उसे बहुत प्यार करता हूँ बस।" और जैसेही वह हाथ फैला के मुझे, रुकने के लिये चिल्लाने लगीं। मैं अपनी आँखें ऊपर चढ़ा के दन से कूद पड़ा।

कुछ देर तक मैं यही समझता रहा कि मैं मर गया। अगर गला घुटता हो इसके बजाए पैरों में बड़ा दर्द हो रहा था। अब भी मैं यही ख्याल किये हुए था कि मैं जरूर मर गया हूँ। इस लिये मैं चुपचाप रहा। इतने में मेरे कानों में आवाज़ सुनाई दी। काहे की? हँसी की।

मैंने आँखें खोल दीं। अब मालूम हुआ कि मैं हवा में नहीं लटक रहा हूँ। जैसा कि मैं सोचे हुए था। बल्कि आराम से ज़मीन पर सीधा खड़ा हूँ। और गले में टूटी हुई रस्सी पड़ी हुई है। अफ़सोस कमज़ोर पतली रस्सी ने दगा की। अगर पहले से जानता होता तो रस्सी को दोहरा चौहरा कर लेता। सचमुच बड़ी गलती हुई।

इतना तो मैं कह सकता हूँ कि मेरा जीता जागता काठ के उल्लू की तरह आँखें बन्द किये हुए इस ख्याल में खड़ा रहना कि मैं मर गया हूँ उन दोनों युवतियों के लिये बड़ा ही हँसाने वाला सीन रहा होगा। मेरा चची ने आकर मुझे हिलाया और कहा—"टाम, टाम, देखो दूसरी बेवकूफी कर रहे हो।"

* * *

मैं उन युवतियों को उनके घर पहुँचाने के लिये चला। रास्ते में एक आदमी बगल से होकर गुजरा और छोटी को देख कर मुस्कुराते हुए चला गया। मैं आपे से बाहर। जब वह बहुत दूर चला गया। मैं उसे एकबारगी हजारों गालियाँ देने लगा।

छोटी०—"हायँ ! हायँ ! मेरे भाई ने क्या बिगाड़ा है तुम्हारा।"

अररर ! यह क्या मैंने किया। उसी के भाई को गालियाँ दे बैठा।

(२)

उन दोनों लड़कियों का भाई था बड़ा भला आदमी। थोड़ी देर में वह अपने घर पर आया और मेरी बेवकूफी की ज़रा भी न परवाह कर के मुझसे उसने हाथ मिलाया। और मेरा दोस्त हो गया। मैंने दिल में नए सिरे से ठान लिया कि अब बेवकूफी किसी तरह की भी नहीं करूँगा। चाहे जो हो। उससे बड़ी बातें हुईं। ईश्वर की कृपा से इज्जत में उस वक्त कोई फर्क नहीं आया। अन्त में उसने कहा कि कल मछली का शिकार खेलने चलना।

रात को बड़ी गर्मी थी और कमरे में मच्छड़ों के मारे और भी नाक में दम था। इसलिये तकिया लिये मुर्गीखाने की ढालुएँ छत पर उचक गया और वहीं लम्बा होगया। सुबह को उन्हीं लड़कियों के भाई ने आकर मेरे तलवे को अपने डगन से खोद के जगाया। मैं घबड़ा के उठा, मगर उस घबड़ाहट में अपने को सम्हाल न सका। ऊपर से लुढ़क कर नीचे के गड़हे में छपाक से गिरा।

"खूब तड़के नहाने का तरीका तुमने बड़ा अच्छा निकाला" उसने कहा—"लो अब जल्दी निकलो। उसमें पड़े क्या करते हो। उठो चलो शिकार को।"

शिकार को चलूँ ? कौन सा मुहँ लेके। अगर कहीं उस गड़हे के नीचे कोई छिपा हुआ कूआँ हो तो मैं बड़ी खुशी से

४. पुस्तक ...
...देनी होगी।

पुस्तक को स्वच्छ व सुन्दर रखने में
सहायता कीजिये।

विजय-पुस्तक-भण्डार की समयोपयोगी
आदित्य ग्रन्थमाला ।

श्रीयुत इन्द्र विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित पुस्तकें ।

[१] नैपोलियन बोनापार्ट (सचित्र) मूल्य १॥) दूसरा संस्करण तय्यार हो रहा है ।

[२] प्रिंस विस्मार्क या जर्मन साम्राज्य की स्थापना मूल्य १।)

[३] महावीर गेरीवाल्डी—लेखक पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति । मूल्य १।)

राष्ट्रीय साहित्य ।

[१] स्वर्ण देश का उद्धार—मूल्य ॥≠) [२] राष्ट्रीयता का मूल मन्त्र मूल्य ≢) [दूसरा संस्करण तैयार हो रहा है] [३] राष्ट्रों की उन्नति—मूल्य ।) [४] संसार की क्रान्तियाँ, लेखक श्रीयुत सुखसम्पतिराय भण्डारी १॥≠)

धार्मिक साहित्य ।

बालोपयोगी वैदिक धर्म—लेखक पं० इन्द्र विद्याचस्पति मूल्य ।≠) (दूसरा संस्करण)

वैदिक मेगजीन [लाहौर] यह पुस्तक वैदिक धर्म की प्रवेशिका समझी जा सकती है । पं० इन्द्र ने अपनी प्रवाह युक्त स्पष्ट लेख प्रणाली में बच्चों के लिये यह जो पाठ इसमें दिये गये हैं जिनसे पुस्तक आर्यसमाजी अथवा जो कोई भी वेद विश्वासी अपने बच्चों को भी धर्म की शिक्षा देना चाहे वह लाभ उठा सकता है ।

उपनिषदों की भूमिका—लेखक श्रीयुत इन्द्र विद्यावाचस्पति । मूल्य ।≠) संस्करण तैयार हो रहा है ।

मैनेजर—विजय पुस्तक भण्डार, नया बजार दिल्ली ।

...० पुस्तक ...
देनी होगी।

पुस्तक को स्वच्छ व सुन्दर रखने में
सहायता कीजिये।

३ दिनमें
तोपोंके मुंह बन्द

पुस्तक फाड़ना, [illegible] मूल्य या पुस्तक देनी होगी।

पुस्तक को स्वच्छ व सुन्दर रखने में सहायता दीजिये।

पुस्तक फाड़ने, खोने पर मूल्य या पुस्तक देनी होगी।

पुस्तक को स्वच्छ व सुन्दर रखने में सहायता कीजिये।

बिजली के बल से क्या नहीं हो सकता।

बिजली लँग को चला सकत है, बहरे को सुन सकती है, निर्ब के शरीर न बत पैदा कर सकत है। बहुत दिनों डाक्टर लोग बि जली के बल से शरीर के दर्द को आराम कर रहे हैं। पर हाल ही में एक ऐसी अँगूठी तैयार की गई है जिसके बीचमें बिजली बैठाई हुई है। अँगूठी के हाथ में पहनने से इसकी बिजली शरीर से इस तरह प्रवेश कर जाती है कि ज़रा भी मालुम नहीं होता। शरीर में प्रवेश कर खून में मिले हुए रोग फैलाने वाले कीड़ों को मार देते है। जिसमें रोग जल्द आराम हो जाता है इसको बाईं हाथ की किसी उँगली में पहननी चाहिये। इससे दमा हैजा, प्लेग, महामारी, बवासीर, आत्रनज़ूल, स्वप्नदोष, कमर का दर्द स्त्रियों के प्रदर रोग, प्रसूत रोग, धातु क्षीणता सुजाक आतशक, गर्मी और इनफ्लुएन्जा इत्यादि रोग शीघ्र आराम हो जाते हैं। इस अँगूठी को बूढ़ा, जवान, बच्चा, स्त्री, सभी को अपने हाथ में एक रखना चाहिये। मूल्य १ अँगूठी की १।)डा० खर्च १ से ८ तक ।≈) आना।

इनाम भी पाइयेगा—१ मँगाने से १ जर्मन वायस्पकोप, ४ मँगाने से १ सेट असली विलायती सोने का कमीज बटन, ४ मँगाने से १सुन्दर जेबघड़ी, ८ मँगाने से १ सुन्दर सोन्होला आठकोना हाथ-घड़ी गारण्टी ४। सोल एजेन्ट—

पी० एच० डी० कम्पनी पोस्ट — नं० १०१

पुस्तक ...
देनी होगी।

पुस्तक को स्वच्छ व सुन्दर रखने में
सहायता कीजिये।

पाश उसके अन्दर घुस जाता। और कभी न निकलता। और साहब, क्या करता? निकला किसी सूरत से और कपड़े बदल कर चला।

सुनसान नाले पर सिर्फ एक अपने ही साथ के एक आदमी के साथ बैठने में मेरी घबड़ाहट ज़रा ठहरी रही। मैं बड़ा खुश था कि, योहीं धीरे धीरे झेंप की आदत छूट जायगी। घन्टों अफीमची की तरह पीनक में गोता खाता रहा। कोई मछली ही न फँसी। फँसी भी तो एक साँप की शकल की। सूरत से पता ही नहीं चलता था कि यह कौन सा जानवर है। इरादा किया कि अपनी प्यारी को यह अजीब चीज़ भेंट दूँगा। वह बड़े शौक से इसको चक्खेगी।

यह सोच कर शिकारियों की तरह डगन में मछली टाँका, अकड़ता हुआ चला। उसके दरवाज़े पर बहुत सी औरतें बैठी हुई थीं। जैसे उस छोटी ने मुझे मुस्कुरा कर देखा वैसे ही, दिल की सारी मज़बूती बड़ी तेज़ी के साथ पिघलने लगी। मगर इसकी मैंने बड़ी कोशिश की कि सब लोगों की तरह खूब तपाक से मिलूं। इसीलिये जहां तक मुझे याद है गर्दन झटक के सलाम किया। और लड़खड़ाती हुई ज़बान में कहा—

"जनाब छोटी मिस साहबा। आपके लिये एक जानवर, बड़ी लम्बी मछली भेंट देने लाया हूँ।"

इतना कह के मैं घबड़ा गया। मछली डगन से मेरे कन्धे पर लटक रही थी। न जाने कैसे एक डोरे का एक कटिया मेरे कोट के पीठ में फँस गया। मैंने ताबड़ तोड़ झटका दिया और और उलझ पड़ा। सर घुमा के अपनी पीठ जो देखने की

कोशिश की तो धड़ाम से नीचे चित्त हो गया। पिनपिना कर जो ज़ोर किया तो कटिया छूट कर एक मेम साहबा खोपड़ी पर तड़ाक से लगी और वहीं अटक गई। जल्दी हटा लेने के लिये झिट्टा दिया। बस गजब हो गया। मे साहबा के नकली बाल सब साफ़ निकल आए। पहले मैंने समझा कि धड़ से खोपड़ी अलग हो गई। मगर बा देख कर जान में जान आई। उसको छुड़ा कर एलाहदा क की कोशिश करने लगा कि इतने में मेरी प्यारी के छो कुत्ते ने उसे कोई शिकार की चीज़ समझ कर उसपर झप और मुहँ में ले लिया और बात की बात में तहस नहस क डाला। मैंने बहुतेरा चुचुकारा। सब कुछ किया। मगर व कम्बख्त मारे तेजी के कटिया ही निगल गया। छोटी रो लगी। हाय! हाय! देने आया भेट और ले ली उसके प्या कुत्ते की जान! मैं भी रोने लगा। और कलप कलप क कहा कि—"मेरे मुहँ में क्यों न अटक गया।"

उसने गुस्से में कहा—"मैं बड़ी खुश होती।"

मैं डगन उगन सब छोड़ छाड़ के भागा। और वे लो जैसे उनके जी में आया, कुत्ते के कंठ से कटिया निकालने क कोशिश करते रहे। ईश्वर जाने गला काट के निकाला य बन्दूक मार के निकाला या निकाला ही नहीं। मुझे इसक नहीं खबर।

(३)

अब तो मैंने क़सम खाली कि चाहे जो हो छोटी व मकान पर हर्गिज़ नहीं जाऊँगा। पर दिल उसके देखने क बहुत चाहता था। रोज यों ही कमरे में मक्खी मार रहा

एकाएक दरवाज़े पर बड़ा शोर व गुल सुनाई पड़ा। खिड़की के बाहर सर निकाल के देखा तो मालूम हुआ कि सरकस का इश्तिहार बट रहा है। चर्चो से मालूम हुआ कि ज़नाने जगह को युवतियाँ भी तमाशा देखने जायँगी। मैंने सोचा कि वहाँ जाने से मुझे अपनी प्यारी को देखने का मौका मिलेगा। अगर उन लोगों ने मुझे पहचान लिया तो बुरी होगी। इसके लिये तै कर लिया कि कोने में बैठूंगा और नज़र बचा के घुमूंगा।

रात हुई। मैं सरकस देखने चला। टिकट लेकर दाखिल हुआ। दाहिने बायें जो नज़र डाली तो एक तरफ उसको बैठे हुए देखा। मैंने जल्दी से मुँह पर रूमाल डाल लिया, ताकि वह पहचान न सके। और दनदनाता हुआ आगे बढ़ता गया, सीधे अखाड़े की चौहद्दी पर पहुँच गया। और ठोकर खाकर भरररर धड़ाम से अखाड़े के भीतर गिरा। बड़े ज़ोर की आवाज़ गूँजी। मेरे गिरने की नहीं, लोगों के हँसने की। लोग अलग तालियाँ बजाने लगे। क्या करूँ? समझ में नहीं आता, हर जगह बेवकूफी। पूछिये। भला रूमाल से मुंह ढाँक कर अन्धा बनने की कौन ज़रूरत थी। खैर पतलून झाड़ के

एक जगह खाली देखा। झट से बैठ गया। लोगों ने कहा यह खाली नहीं है। जिसका जगह है वह पानी पीने बाहर गया है। मैंने तिनमिना के कहा—

"क्या यह जगह उसके बाप की है।" इतना कह के मैंने बगल बगल जो देखा तो दाहिने कुर्सी पर उसी छोकरी को

देनी होगी।

पुस्तक को स्वच्छ व रखने

मुस्कुराती हुई पाया। वाह ! शाह ! क्या नज़र बचा के बैठ हूँ। इतने में उस जगह का बैठने वाला मेरे सामने झिझकत हुआ खड़ा हुआ ही था कि मैंने डाँट बताई।

"अबे ओ अकिल का भदभद ! क्या तू शीशा है जो उस तरफ की चीज़ें मुझे देखाई पड़ेंगी ? अबे हटता है सामने से या नहीं। बदतमीज, बेहूदा, बह झापड़......"

इतने में छोटी बोली—"आयँ ! आयँ ! मेरे भाई के पीछे इस बुरी तरह क्यों पड़े हो ?"

"अररररर ! आप हैं ? मैंने पहचाना नहीं" हाय किस्मत। सब बेवकूफियाँ हमारे ही नाम बैनामा हो गई।

इसी बीच में किसी के मुहँ से आग की आवाज़ मैं सुनी और सामने कुछ लपट सी दिखाई पड़ी।

मैं घबड़ा उठा। आँखें अन्धी हो गई। हाथ पैर फूल ग मेरे दिमाग में एक बड़ा डेरावना और भयानक सीन घु पड़ा। मैंने सोचा कि अभी अभी सारा खीमा जल उठेगा और कटघरे के शेर और चीते एक बारगी छूट पड़ेंगे। आफ मच जायगी, भागने को रास्ता न मिलेगा। सैकड़ों स्त्रिय और बच्चे कुचल कर मर जायँगे।

इन्हीं ख्याल से बावला होकर मैं उस छोटी को ज़ब दस्ती गोद में उठा कर गिरता पड़ता उसे घसीटता हु बाहर ले चला। लोग मेरे पीछे दौड़े। और बाहर आके मु सभों ने घेर लिया। और सब एक मुहँ होकर पूछने लगे क्या हुआ क्या। इस पूछ पाछ ने मेरी सारी खुशियों प वज्र ढाह दिया। मैं समझता था कि मैंने उसकी जान ब ही ली आखिर और सब लोग मुझे शाबाशी देंगे। मग

[illegible] मालूम हुआ कि मैंने बड़ी गलती की और सचमुच लात
[illegible] खाने का काम किया है। शेर का तमाशा देखने के लिये
[illegible] पांच लोहे के सलाख में लत्ता बांध कर रोशनी कर दी
[illegible] थी। उसको मैंने अफ़सोस! घबड़ाहट में क्या से क्या
[illegible]। उसके भाई ने उस वक्त मुझसे गुस्से में पूछा कि—
"तुमको मैं क्या ख्याल करूँ, पागल या वेवकूफ़?"

मैंने जवाब दिया कि—"दोनों।"

इति।

देनी होगी।

पुस्तक को स्वच्छ

अन्त ।

लेखक—

श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा ।

['हा ! दुर्दैव, अभागिनी'— संख्या ३]

(१)

प्रभात काल था । मन्द मधुर स्फूर्ति-कर वा
शरीर में नवीन जीवन संचार कर रही थी
पल २ पर उसके मधुर थपेड़े मस्तिष्क
ताज़ा तथा इन्द्रियों को निरालसी बना रहे थे

उसी समय—जो कि पक्षियों के भगवद्भजन का समय
एक षोड़शी अपने छोटे उद्यान में एक फव्वारे के पास खड़
होकर—पक्षियों को दाना चुंगा रही है । दाना चुंगते
धीरे २ वह किसी विचार-सागर में डूबने लगी। क्रमशः ए
ऐसी तन्द्रा में डूब गई, कि उसे अपने शरीर की भी सुध
रही। हाथ में दाना उठाये वह विचार-सागर में गहरा गोत
खाने लगी, उसके नेत्र कबूतर के एक सुन्दर जोड़े की ओ
एकटक स्थिर होकर देखने लगे जो कि अलग दाना चुग र
थे। धीरे २ वह विचार की तरङ्गों में इस प्रकार प्रवाहि

होने लगी कि उसे अपने दाने से भरे अञ्जुलि को हटाने का भी ध्यान न रहा। नित्य के ढीठ पक्षी उस पर आकर बैठ कर दाना चुगने लगे। सरला को भी इसका ध्यान न रहा।

एक मिनट—दो मिनट—तीन मिनट—उस उद्यान के वृक्षों ने 'आह' के साथ देखा, उस कुमारी के कपोलों पर चार बूँद गरम २ आँसू टपक पड़े। प्रकृति का यह सुन्दर खिलौना रो रहा था।

* * * *

पीछे से किसी ने सरला के पीठ पर हाथ रक्खा, सरला चौंक पड़ी। पीछे मुड़ कर उसने देखा, उसकी माँ खड़ी है, उसके भी नेत्र में आँसू हैं। अब सरला अपने दुःख के वेग को न रोक सकी। वह बच्चों की तरह रो पड़ी। माता को भी रुलाई आ गई, उसने सरला को छाती में चिपका लिया। माता की स्नेहमय गोदी में अपने आँख के गरम पानी को बहा कर वह कुछ शान्त हुई। चुमकार कर माता ने पूछा—"क्यों बेटी, क्यों रो रही हो?"

वाह! माता! क्यों पूछती हो। क्या नहीं जानती। अभी २, कल की बात है उस पवित्र तथा भोले निष्कलंक हृदय ने तुम्हारे ही प्रयत्न से किसी से प्रेम किया था। करालकाल ने उसे अपना ग्रास बनाया। पुनः तुम्हीं ने अपने पति से सलाह कर उसे दूसरे के साथ प्रेम-पाश में बँधवाया था। निर्दय काल-चक्र ने उसको भी असमय में छीन लिया। क्या परमात्मा को यह इच्छित नहीं था कि सरला विवाह करे। क्या उसे उसका सुहाग अखरता था? जो हो! उसने दो बार उसके हृदय को टुकड़े २ कर डाला था—उस नन्हे कोमल हृदय पर पत्थर रख दिया था। और फिर कल उस

विचारी सरला ने अपने माता-पिता को इस प्रकार बात करते सुना था:—

माँ—"क्या अब हमारी बच्ची सदा कुंवारी रहेगी ?"

'आह' खींच कर पिता ने कहा—"भाग्य फूटा है। दो बार प्रयत्न व्यर्थ हुए। वैसे अच्छे लड़के कहाँ मिलेंगे। अब तो मैं बिना सरला की अनुमति या प्रेम के दूसरा निवाह ढूंढ कर पुराने हिन्दू रिवाज़ के अनुसार विवाह करूँगा।"

माँ ने कहा—"पर सरला राजी हो जायगी ?"

पिता—"ज़बरदस्ती करनी होगी—अभी बच्ची है। विवाह होने पर झखमार कर प्रेम होगा।"

वाह ! पिता जी ! तुम कितने आदर्श पिता हो। विवाह का कितना मूल्य समझते हो। पिता का यही कर्तव्य है ?

कुछ देर सोचकर पुनः पिता ने कहा था—"तुम सरला के दिल की थाह लेना"—

बस ! सरला ने इतना ही सुना था। सुनते ही उसके कलेजे में आग लग गयी। वह दौड़ कर अपने कमरे में आकर गिर पड़ी। बिस्तरे पर मुह ढाँपकर सिसककर कर रोने लगी।

* * * *

उसी के दूसरे दिन उद्यान में जब वह रो रही थी, माता ने उसे चुप कराकर उसके विवाह का संवाद उसे सुनाया था। बड़े ज़ोर से सरला काँप उठी। सुनते ही उसे बड़ा क्रोध आया। तत्काल ही माता के अङ्क से निकल कर—"छिः माँ" कहती हुई वह एक ओर चली गयी। विचारी माँ अवाक् रह गयी। जिस सरला ने आज तक माता की

रफ आँख भी न उठाया हो उसका ऐसा व्यवहार ? आश्चर्य !
 स्तब्ध होकर वहीं बैठी रही ।

तू नहीं जानती माँ ! समय ने सरला को प्रेम का मूल्य
दा दिया है ।

(२)

सरला के तीव्र विरोध पर भी—जो किसी दशा में अनु-
त न था—उसका विवाह निश्चित हो गया ।

(३)

उस दिन उसके घर में मंगल-वाद्य बज रहे थे । चारों
र धूम थी । बारात भी आई और धूम धाम द्वारचार समाप्त
र चली गयी । रात्रि १२ बजे विवाह की सायत है । सभी
मुख पर प्रसन्नता थी । पर अभागिनी सरला अपने कमरे में
ी सिसक रही थी । धीरे २ दस बजा । झपट कर सरला
ी । अपने कमरे की साँकल चढ़ा दी । इधर उधर देख कर
पने की माता की तसवीर को प्रणाम कर उसने पास में
के एक गिलास में थोड़ा जल और कुछ मिलाया । ज्योंही
ने उसे अपने मुहँ के पास उठाया कि द्वार पर किसी की
हट मालूम पड़ी । किसी ने ज़ोर से पुकारा "बेटी
ला !" सरला ने पहचान लिया कि माँ है । जल्दी से
ने गिलास का 'विष' पी लिया । वह निर्जीव होकर गिर
ी । द्वार पर माँ बिचारी चिल्लाती ही रही * * * ।

जिस समय सरला विष पान कर रही थी उसी समय
न रोशनी के सरला के भावी पति, महफिल में बैठे प्रस-

न्नता से फूले, अपने एक गवैये मित्र से Shakespere की य Line कह रहे थे :—

"If music be the food of love, then go on."

पर, इसी समय उनकी भावी पत्नी का 'अन्त' ह रहा था।

इति।

देनी होगी।

पुस्तक को स्वच्छ व सुन्दर रखने में

सहायता कीजिये।

इस अङ्क के गल्पों की सूची।

-निर्मोही बालम-[ले०, श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा ४३८
-मौन हृदय-[ले०, श्री गोविन्दप्रसाद शर्मा नौटियाल ४६१
-बुद्‌दू-[ले०, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा ४६६
-महामाया की माया-[ले०,श्रीरामरतन उर्फ अर्जुनवर्मा ४७२

गल्पमाला के उद्देश्य और नियम।

१—इसका प्रत्येक अङ्क प्रति अंगरेज़ी मास की १ ली तारीख़ को छप जाया करता है। जो सब मिला कर सालभर ५०० से अधिक पृष्ठों का एक सुन्दर ग्रन्थ हो जाता है।

२—रईसों, तथा राजा और महाराजाओं से उनकी मान-मर्यादा के लिये इसका वार्षिक मूल्य २५) रु० नियत है।

३—इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से; ३॥) है और वी० पी० से ३॥।) है। भारत के बाहर ४) है। प्रति अङ्क मूल्य ।८) आना। नमूना मुफ्त नहीं भेजा जाता है।

४—'गल्पमाला' में उसके गल्पों ही द्वारा संसार की सब बातों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

५—मौलिक गल्पों को इसमें विशेष आदर मिलता है। पुरस्कार देने का भी नियम है।

जुलाई १६२४ में छपने वाले गल्प।

-प्रतिज्ञा-पालन-[ले०, श्रीयुत सीताराम वर्मा।
-निर्मोही बालम-[ले०,श्रीयुत पं०विश्वम्भरनाथ जिज्जा।
-बुद्‌दू की बेवक़ूफ़ी-[ले०, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा।
-पढ़ी और हंसी—[ले०, श्रीयुत 'विनोदी'।

देनी होगी।

निर्मोही बालम ।

लेखक-
श्रीयुत पं० विश्वम्भरनाथ जिज्जा ।

(१)

विहारी लाल वकालत पास करके अब कानपुर में रहते हैं। उनकी पत्नी-रूपगुण की खान-चिन्ता भी उनके साथ है। पति पत्नी में खूब प्रेम है। दोनों अभी युवक और युवती हैं।

गृहस्थी का प्रबंध सम्बन्धी सभी भार चिन्ता के ऊपर है। वह पढ़ी लिखी होशियार है, इसलिये गृहस्थी के समस्त कार्य स्वयं देखती है। विहारीलाल के बहुत आग्रह करने पर भी घर में कोई रसोईदार न रखा गया, क्योंकि चिन्ता भोजन स्वयं पकाती है। यद्यपि घर में दो दासियाँ हैं पर चिन्ता उनसे केवल मोटे काम लेती है। निपुण गृहिणी से घर जैसा स्वर्गीय घर हो जाना चाहिये, चिन्ता ने उसे वैसा ही बना दिया है।

सोना की माँ घर में आटा पीस कर देती है। वह बड़ी

वृद्ध थी, इसलिये चिन्ता की उसपर विशेष कृपा रहती थी सोना उसकी एक मात्र विधवा लड़की है। बुढ़िया चाहती थी कि सोना भी घर में दासी रख ली जाय। उसने कई बा चिन्ता से हाथ जोड़कर प्रार्थना की। इस बीच में घर की एक दासी ने काम छोड़ दिया, इसलिये चिन्ता ने दया करके सोना को वर्तन माँजने के लिये नौकर रख लिया।

युवती सोना घर में काम काज करने लगी। कुछही दिन में उसने अपने सुन्दर स्वभाव से चिन्ता को प्रसन्न कर लिया। सोना, सहज साँवली युवती थी, पर नाक-नकशा बहुत ही सुन्दर था। विहारीलाल जब कचहरी से आते तो सोना नेत्र नचाती हुई जाकर उनका जूता खोलती थी। बिहारीलाल ने सोना की ओर कभी ध्यान न दिया।

(२)

रविवार का दिन था। पानी बरस कर निकल गया था। मेघों के हलके टुकड़े आकाश में इधर उधर दौड़ रहे थे। चिन्ता ने आज बेसन के गुलगुले बनाये थे। बिहारीलाल अपने कमरे में बैठे गुलगुले खा रहे थे और खिरकी में से आकाश की ओर देख रहे थे। सोना पानी का गिलास लेकर विहारीलाल के कमरे में गयी। उसने घूंघट निकाले हुए धीमे स्वर में कहा—"बाबू! पानी लो।"

बिहारीलाल जो खिरकी में से बाहर की तरफ देख रहे थे, उन्होंने गर्दन फ़ेरी। उन्होंने देखा कि, सामने सोना दासी पानी का गिलास लिये खड़ी है। इस समय सोना का मुख घूंघट से अच्छी तरह नहीं ढका था।

बिहारीलाल ने पानी का गिलास लेते हुए सोना का

सोना सौन्दर्य भी देखा। आजके पहले सोना को इतने निकट से इतना साफ कभी नहीं देखा था। सोना उन्हें इतनी सुन्दर दिखी! शुद्ध हृदय में सहसा विकार हुआ—उज्वलता में कालिमा की रेखा लगी।

सोना पानी का गिलास देकर गयी नहीं। वहीं सिर लटकाये खड़ी है। खड़ी भी नहीं रह सकती–हिल भी नहीं सकती, जा भी नहीं सकती। बिहारी के कमरे में जैसे उसके पैर किसी ने पकड़ लिये, पैर पृथ्वी पर जम से गये हैं।

बिहारीलाल ने कुछ सोचते हुए कहा,—"जा सोना हुक्का भर कर ले आ।" इतना सुनते ही सोना, तुरन्त हुक्का लेने चली गयी। बिहारी ने मन में कहा,—"छिः कैसा कुविचार मन में उठा। सोना कहारिन है, हम उसके स्वामी हैं। हमें ऐसा कुविचार मन में न लाना चाहिये।" बिहारीलाल कमरे में टहलने लगे।

थोड़ी देर में हुक्का और सटक लिये सोना आगयी। हुक्का रख दिया। पर, जाती नहीं है। अलग चोर की तरह खड़ी है। अबकी बिहारीलाल ने फिर एक बार उसके उदासीन सौन्दर्य्य को देखा। चंचल नेत्रों के कुटिल कटाक्ष अपना काम कर गये थे।

बिहारी ने हुक्का पीते हुए कहा,—"सोना! ज़रा चिलम तो फूंक दो।"

सोना तुरन्त सिकुड़-मुकुड़ कर चिलम फूंकने लगी। घुटनों के बल सोना चिलम फूंकने बैठ गयी। चिलम फूंकते फूंकते सोना वैसी ही की वैसी रह गयी। फूंकते फूंकते चिलम के कोयले लाल हो गये। पर सोना की गर्दन नहीं उठी। उसने चिलम फूंकना बन्द न किया। बिहारीलाल

इतनी देर तक उसकी झुकी हुई पीठ देख रहे थे। बोले,—"बस कर सोना।"

सोना ने बस किया। गर्दन उठायी। गर्दन उठाने में उ भाग भी उठा। मुख पर श्रम-बिन्दु थे। सोना कैसी भल मालूम हुई।

बिहारीलाल को उससे कुछ बातचीत करने की इच्छा हुई। उन्होंने हिम्मत करके पूछा,—"सोना, तुझे यहाँ कुछ कष्ट तो नहीं है?"

सोना को जो कष्ट है; उसे बिहारीलाल नहीं जानते सोना बिना उत्तर दिये सोचने लगी,—"कहने से क्या कष्ट कम हो जायगा?"

उसने डर कर सोचा,—"न जाने मुहँ से कैसी बात निकल जाय।" उसने केवल उत्तर दिया, "नहीं।"

बिहारी ने ज़रा और साहस किया। उन्होंने सहसा सोना का हाथ पकड़ लिया। कहा,—"नहीं, कुछ हो तो बता?"

सोना के हृदय में गुदगुदी सी हो गयी। उसने सोचा कि हाथ छुड़ाकर भाग जाय। उसने धीरे से हाथ को झटका दिया। सोना ने सोचा कि,—यदि मैं और जोर से झटका देती तो हाथ छूट जाता। पर, हाथ छुड़ाने का जी नहीं चाहता था।

बिहारी ने फिर ज़रा तेज़ होकर कहा,—"बोल, बोल, सोना।"

सोना प्रेम के अत्याचार से विह्वल हो उठी। नई चाहना से जैसे आज हृदय भरने लगा। सोना ने सकुचाये हुए नेत्रों से प्रेम-बाण छोड़ा। बिहारी से आँखों आँखों में बातें हुई। चुप भाषा में एक ने दूसरे का अभिप्राय समझा दिया।

सोना फिर पलकें गिरा कर ज़मीन की तरफ़ देखने लगी।

बिहारी के हृदय में हलचल मच गयी। उसने कान्ति की एक टक्कर को उठाया। उसने दोनों हाथों से सोना का मुँह उठाकर कहा,—"सोना!" सोना के होंठ हिले। बिहारी ने उन होठों का चुम्बन कर लिया।

इसी समय आकाश में मेघों का ज़ोर से गर्जन हुआ। साथ ही, बिजली भी तड़पी। घनघोर बादल घिर आये। ऐसा पड़ने लगा, जैसे फिर वृष्टि होगी।

सोना घर में काम काज करने चली गयी। वृष्टि की सम्भावना होने से बिहारीलाल आज कहीं घूमने नहीं गये।

(३)

बिहारी के विचारों में उपद्रव होने लगा। वे सोना की माधुरी सोचने लगे। उन्होंने सोचा,—"सोना क्या लजीली है। भोली होने के कारण अभी प्यार की बातें नहीं जानती। बालापन है, इसलिये लजाती है..."फिर सोचा,—"दासी से इतनी स्वतंत्रता ठीक नहीं। कहीं बात खुल गयी तो चिन्ता को क्या जवाब दूंगा।...छिः छिः प्राणेश्वरी के प्रति ऐसा विश्वासघात न करूंगा। जाने दो उस क्षुद्र दासी की ओर अब ध्यान न दूंगा। चिन्ता को यह सब बातें जताकर आज क्षमा माँगनी होगी, मैं अवश्य मांगूगा।" बिहारी अपने कमरे में कुर्सी पर बैठे यही सोचते रहे।

रात्रि के आठ बज गये, पर अबतक वह अन्दर रोटी खाने नहीं गये। चिन्ता उन्हें स्वयं बुलाने गयी। चिन्ता ने कमरे में आकर कहा,—"क्यों जी, तुम अब तक खाने नहीं

आये। क्या कोई मुकद्दमा सोच रहे हो ?" चिन्ता ने हं
कर कहा।

बिहारीलाल तुरन्त हँसते हुए कुर्सी से उठे। बोले,
"मैंने सोचा था कि आज तुम जब स्वयं बुलाने आओगी
मैं चलूंगा। तुम्हारे आनेही की बाट जोह रहा था।" दो
हाथ दिये कमरे से बाहर निकले। चिन्ता ने कहा,—"तो
अब दोनों समय स्वंय ही तुम्हें बुलाने आया करूँगी।"

भोजन करने के पश्चात् बिहारीलाल अपने कमरे में सं
चले गये। पलङ्ग पर लेटे २ फिर सोना का ध्यान हुआ। उनक
कल्पना में एक नवीन काली सौन्दर्य-प्रतिमा अङ्कित होगय
थी। वह सोच सोचकर अपनी कल्पना को वास्तविक रू
दे रहे थे। वह अधीर होगये।

घड़ी में ग्यारह बजे। चिन्ता आयी। परी की तरह साड
का सफेद पल्ला उड़ाती हुई चिन्ता ने कमरे में प्रवेश किया
मन्द हास्य को छोड़ती हुई चिन्ता पलङ्ग पर बैठ गयी। चिन्त
ने दो बीड़े पान बिहारी को खाने के लिये दिये।

बिहारी ने पान हँसते हुए खा लिये। पर यह हँसी बनावट
थी। गाढ़ी उदासीनता से उनका हृदय बैठा जारहा था।
चिन्ता से सोना की महाभयङ्कर बात कहनी है। परन्तु, कहने
से सम्भव है चिन्ता का दिल न जाने कैसा होजाय ! फिर,
बड़ी मुशकिल होगी। बिहारी ने सोचा कि, चिन्ता से न
कहनाही अच्छा है। आज जहाँ तक हुआ, वहाँ तक रहे।
आगे से सोना अलग रहेगी। "अब उसकी तरफ कभी न
देखूंगा" बिहारी ने सोचा। बिहारी माथा खुजलाते हुए
पलङ्ग से उठ बैठे।

चिन्ता ने हाथ हिलाते हुए कहा,—"आज मौन क्यों सधा है ? कुछ बातें नहीं करते।"

अन्य दिन की तरह बिहारी का क्षुब्ध हृदय आज कुछ (हँसने हँसाने को नहीं चाहता उन्होंने नखरा करते हुए कहा "आज मेरे सिर में बड़ा दर्द है।"

सिर के दर्द सुनकर चिन्ता चौंक उठी। उसने घबराकर कहा,—"हैं ! सिर में दर्द है। मुझसे अबतक कहा नहीं। ड़ा डाक्टर बुलवाऊँ !"

बिहारीलाल ने कहा,—"नहीं, डाक्टर की जरूरत नहीं। यों ही होगया है, आप ही अच्छा होजायगा।"

चिन्ता ने बिहारी का सिर सहलाया। कहा,—"नहीं जी तुम्हारा सिर गर्म मालूम होता है। मैं डाक्टर जरूर लवाती हूँ।"

चिन्ता उठने लगी। बिहारीलाल बड़ी मुशकिल में पड़े, चन्ता को कैसे समझायें कि यह सिर-दर्द कैसा है। उन्होंने चन्ता का हाथ पकड़ कर ज़रा हँसते हुए कहा,—"नहीं, म मेरे पास बैठो। सिर का दर्द कम होगया है। कल मैं वयं ही जाकर डाक्टर को दिखलाऊँगा।"

कहने सुनने से चिन्ता बैठ गयी। चिन्ता ने कहा,— "अच्छा, मैं सिर में तेल दबाती हूँ, तुम्हें आराम होगा।"

बिहारी ने कहा,—"तुम जानती हो, मुझे सिर में तेल लाने से कैसी घृणा है। कुछ चिन्ता न करो। तुम खुद गीहा हो—तुम्हारे आते ही दर्द स्वयं ही भाग गया है।" बिहारी हँसे, और चिन्ता को हँसाने की चेष्टा की।

ी होगी।

बिहारी ने चिन्ता का सरल मुख देखा, और मन में कहा—
"मैं बड़ा कपटी हूँ।"

(४)

आठ दस दिन और बीते। बिहारीलाल ने जैसा सोचा था वैसा नहीं हुआ। वे नित्य छिप छिपकर सोना से मिलते थे। बच्चा जैसे नये खिलौने को देखकर रीझ जाता है, वैसेही सोना पर रीझ गये। एक दम उसे सब हृदय दे बैठे। चिन्ता को यहसब कांड कुछ नहीं मालूम। उसे नहीं मालूम कि उसकी लहलहाती हुई जीवन-फुलवारी में घोर वज्रप्रहार हुआ है।

एक दिन चिन्ता ने स्वयं ही वह भीषण दृश्य अपनी आँखों से देख लिया। वह बिहारी के कमरे में आरही थी। वह ज्योंही घुसी, उसने देखा कि, सोना पलङ्ग पर बैठी है—उसी पलङ्ग पर जिसपर चिन्ता शयन करती थी। चिन्ता कमरे के अन्दर नहीं घुसी, तुरन्त उलटे पैरों लौट आयी। बिहारी न उसे न देख पाया।

ओह! ऐसा दृश्य! क्या कभी किसी ने सोचा था कि, पानी में आग लग सकती है। शीतल वायु में अङ्गारे उड़ सकते हैं। 'आह!' चिन्ता ने कहा,—"आह! इसी समय मेरे प्राण क्यों नहीं निकल जाते? मेरे मन को क्या हुआ। मैं पागल होकर मरूँगी! मैं मर जाऊँगी!"

चिन्ता हाँफती हुई अपने कमरे में आकर पलङ्ग पर गिर पड़ी। हाथ बेताबी से खिरकी की तरफ़ पटका—हाथ की सब चूड़ियाँ टूट गयीं, और हाथ में धँस गयीं। हाथ से खून

रहने लगा। पर, इस समय तो चिन्ता के हृदय से खून की धारा बह रही थी। हाथ की चोट मालूम भी नहीं हुई।

चिन्ता के हृदय में एक तूफान उठता था, और एक २ सांस से बाहर जाता था। परन्तु, हाय रे स्त्री का हृदय! उस तूफान में स्वामी का प्रगाढ़ प्रेम और अटल विश्वास नहीं उड़ने पाया। चिन्ता ने कांपते हुए होठों से कहा,—"अच्छा स्वामी, तुम्हारी जो इच्छा हो करो—मैं तुम्हारी चेरी हूं।" हांफते हांफते चिन्ता पलङ्गपर लोटने लगी।

लोटकर रोने लगी। मन से बातचीत होने लगी। चिन्ता ने फूटकर कहा,—"अह! कैसा अन्याय स्वामी! तुम यहां रुके हो!"

मन ने कहा,—"अन्याय कैसा! ठीक तो है।"

चिन्ता ने कहा,—"क्या ठीक है? मेरे होते वह अन्य स्त्री को प्यार करें! यह कभी ठीक नहीं है।"

फिर चिन्ता के मन ने निष्पक्षता से कहा,—हाँ ठीक है। जो जिसको प्यार करता है, वह केवल उसके प्यार का अनुचर है। इसमें हस्तक्षेप करना उसके प्यार के साथ अत्याचार करना है। उनको (विहारी को) सुखी रहने दो उसमें, जिसमें वह सुख मानते हैं। उनका यदि नाश हो, तो तू उस सर्वनाश को भी न रोक सकेगी। पर, तुझको एक भक्त दासी की तरह उनके नाश में साथ रहना होगा।

विक्षिप्त चिन्ता ने कहा,—"ओह! नहीं रहा जायगा।" चिन्ता ने रोते रोते कहा,—"हाय मेरा प्यार...प्यारे का प्यार...ऐसा ही है?"

मन ने समझाया,—"यह सब देखते हुए भी चुप, शान्त रहो। सच्ची पतिप्राणा स्त्री को यही करना चाहिये।"

देनी होगी।

बहुत देर तक विलाप क्रन्दन करने के पश्चात् चिन्ता को मन की यह राय पसन्द आई। चिन्ता ने पल्ले से आँसू पोछे। धीरे धीरे कहा,—अच्छा अब मैं शान्त रहूँगी। स्त्री जो नहीं देख सकती, उसी को देखने का साहस करूँगी।

सन्ध्या के छः बज गये थे। पश्चिम दिशा में लाल मेघाच्छन्न आकाश जैसे उदासीनता के साथ धीरे धीरे डूबता हुआ मालूम हुआ। उड़ते हुए बादलों के टुकड़ों में जैसे शोक के आँसू भरे थे, जो बरसने से पहले जमते हैं।

चिन्ता को अपना हृदय भी आँसुओं से भरा मालूम हुआ। वह उठकर पलङ्ग पर बैठ गयी।

इतने में दासी सोना आयी। बोली,—"बहूजी, आज क्या रोटी नहीं बनाओगी!? बिल्कुल शाम हो गयी है अब तक चूल्हा नहीं बाला।"

चिन्ता ने पहले सोना को तप्त क्रोध से देखा। फिर अपने को रोका, और भाव बदल कर कहा,—"नहीं, आज मेरी तबियत नहीं अच्छी है। तू जा, सुखिया (दूसरी दासी) को बुला ला।"

सोना ने बड़ा प्रेम और स्वामी-भक्ति दिखाते हुए कहा, "अरे बहू जी! तुम्हारी तबियत तो बिलकुल खराब होगयी है! मैं बाबू जी को अभी बुलाती······"

चिन्ता ने झुंझला कर कहा,—"बकती क्या जाती है! जा, सुखिया को बुला ला।"

सोना ने फिर चापलूसी से कहा,—"अरे बहूजी! तुम तो······"

चिन्ता ने कहा,—"चुप! जा, जो कहती हूँ कर!"

चिन्ता की इतनी बिगड़ी हुई मुद्रा कभी नहीं देखी थी।

वह दिल में डरी, और चुपचाप सुखिया को बुलाने चली गयी।

सुखिया चिन्ता की विश्वस्त दासी है।

सुखिया आयी। चिन्ता ने उससे कहा कि,—"तू आज खराटी तरकारी बना ले। मैं रोटी नहीं बनाऊँगी।"

सुखिया को मालूम हुआ कि, स्वामिन की तबियत अच्छी नहीं है। वह चूल्हा जलाने चली गयी।

सोना ने आकर चिन्ता के कमरे में लेम्प जलाया। चिन्ता ने कड़ी आवाज़ में कहा,—"कमरे से जाते समय किवाड़ बन्द कर देना।"

सोना ने कुछ पूछना चाहा, पर साहस न पड़ा। वह धीरे से मुहँ लटका कर किवाड़ भेड़ती चली गयी।

चिन्ता का फिर हृदय भर आया। वह फिर पलङ्ग पर गिर कर रोने लगी। उसने कातर स्वर में कहा,—"नाथ! रक्षा करो।"

(५)

चुरट पीते हुए बिहारीलाल ने चिन्ता के कमरे में प्रवेश किया। आप भोले हँसते हुए घुसे। शायद 'प्यारी' को कोई हँसी की बात सुनाते।

परन्तु, यह क्या! बिहारीलाल ठिठक गये। उन्होंने देखा कि चिन्ता पलङ्ग पर पट पड़ी है। मुहँ बिछौने में धँसा है। दोनों हाथ छातियों के पास घुसे हैं। चिन्ता सिसकी भर कर रो रही है।

बिहारी ने पास आकर देखा। देखा, चिन्ता खूब रो रही है।

बिहारी ने चकित होकर कहा,—"अरे, तुम रोती हो क्यों, क्या हुआ ?"

चिन्ता की आँखें रोते रोते लाल हो गयी थीं। उन कातर नेत्रों ने बिहारी की ओर देखा। जैसे, आँखें दया की भिक्षा मांग रही थीं।

बिहारी ने दाहिने हाथ की पाँचों उँगलियों से चिन्ता के सुकोमल मुख को थाम कर कहा,—"क्या हुआ ? प्रिये बताओ क्या हुआ ?"

चिन्ता ने रुंधे कंठ से एक आह खींच कर कहा,—"कलेजे में बड़ा दर्द हो रहा है! उफ़, सिर फटा जा रहा है" चिन्ता उठ कर पलँग पर बैठी। बिहारी भी उसके पास बैठ गया। चिन्ता ने अपना सिर बिहारी के कंधे पर डाल दिया। बिहारी ने उसे हाथ से पकड़ लिया।

उस दिन बिहारी के सिर में जो मिथ्या दर्द हो रहा था, वही दर्द आज वास्तव में चिन्ता के हृदय में उतर आया है। बिहारी ने कहा,—"अरे, कलेजे में दर्द है। तुम्हारा शरीर भी इस समय बहुत गर्म है, बुखार चढ़ा है, मुझे खबर न की। मैं डाक्टर को बुलाने जाता हूँ।"

बिहारी के सिर-दर्द के लिये उस दिन चिन्ता डाक्टर बुलवा रही थी, और आज चिन्ता के लिये बिहारी डाक्टर बुला रहे हैं। परन्तु, दोनो में से कोई किसी की वास्तविक पीड़ा न जान पाये थे। न उस दिन चिन्ता ने जाना था, और न आज बिहारी ने जाना।

चिन्ता ने कहा,—"नहीं प्राणधन! डाक्टर न बुलाओ। तुम मेरे पास बैठो, मुझ अभागिनी को छोड़कर न जाओ।"

चिन्ता ने काँपते हुए होठों से कहा,—"मेरा दर्द जान के यदि तुम्हें कुछ दर्द आवे, तभी यह दर्द जायगा।" चिन्ता बिहारी का हाथ जोर से थाम कर रोने लगी।

"मेरा दर्द जान के यदि तुम्हें कुछ दर्द आवे" इस रहस्यपूर्ण वाक्य ने विहारी को चौंका दिया।

पर, बिहारी ने उसे टाल कर चिन्ता को प्यार करते हुए कहा,—"नहीं, नहीं, प्रिये! तुम्हें जोर से बुखार चढ़ा है, मैं डाक्टर को बुला लाता हूँ......"

चिन्ता ने कहा,—"नहीं, डाक्टर की कोई जरूरत नहीं। हरगिज मत बुलाना। बस, तुम्हारी दया काफी है। तुम मेरे पास बैठो, मुझे मत छोड़ कर जाओ। मैं अच्छी हूँ।"

बिहारी ने कहा,—"तुम यह कैसी बातें करती हो? मेरी दया से कुछ न होगा, डाक्टर बुलाने दो।"

चिन्ता ने करुण स्वर में कहा,—"नहीं, तुम्हारी दया से सब कुछ होगा। मैं मुर्दा से जिन्दा हो जाऊँगी।"

चिन्ता ने मन की पीड़ा साफ न बतायी। वह कलमुही सोना का नाम अपनी जिह्वा से कैसे उच्चारण करती! वह एक बड़ी भयङ्कर बात है। यह सोचने से भी चिन्ता को हजारों बिच्छुओं के डंक मारने के समान पीड़ा होती थी।

बिहारी को पहले कुछ खुटका हुआ, पर जब चिन्ता ने वह बात स्वयं न कही, तो उसने भी उस प्रसंग को न छेड़ा।

बिहारीलाल थोड़ी देर बैठे चिन्ता की बातों में 'हूं, हां' करते रहे। चिन्ता का मन्दन बन्द हो चुका था, उसका शरीर भी अब उतना गर्म नहीं था।

घड़ी में रात्रि के ६ बजे। सहसा बिहारी को कोई बात

देनी होगी।

पुस्तक को स्वच्छ व सुन्दर रखने में
सहायता कीजिये।

याद आ गई। उसने प्यार से कहा,—"मुझे एक मित्र के यह निमंत्रण में जाना है, तुम अब सो जाओ, तबियत हल्की हो जायगी।"

चिन्ता एकबार चिहुंक उठी। पर उसने बिना कुछ भी आपत्ति किये कहा—"हाँ, जाओ।"

बिहारीलाल चिन्ता की ओर देखते हुए चले गये। उनके जाने के बाद चिन्ता ने मन में कहा,—"निमंत्रण खाने गये हैं, या सोना के यहाँ गये हैं?" फिर सिर लटका कर धीरे धीरे रोने लगी।

(६)

सोना का अब निराला ठाठ है। बीस रुपये महीने के एक मकान में सोना रहती है। अब वह टुकड़ों पर गुज़ार करने वाली सोना नहीं है। बिहारी के वकालत की प्रायः आधी आय सोना के लिये खर्च होती है। सोना का रहने सहने का ढंग अब अमीराना है। बिहारी लाल अब उससे खुल्लम खुल्ला मिलते हैं।

रात्रि के आठ बजे सोना पलङ्ग पर लेटी है। लेटे लेटे वह सोच रही थी,—मुझे अब किस बात की कमी है! प्रेम तो नौसिखुओं का ढकोसला है-प्रेम तो मूर्तिमान हो मेरे चरणों पर लोटता है। मैं उस प्रेम की परवाह नहीं करती। प्रेमी तो मूर्ख होता है, मैं क्यों मूर्ख बनूं?"

इतने में सोना की दासी लछिया वहाँ आयी। लछिया बड़ी चालाक औरत है, जमाने भर की छटी है। सोना के लिये बड़े काम की है।

लछिया ने कहा,-"क्या सोच रही हो?"

सोना ने हँसकर कहा,—"सच बताऊँ, प्रेम को सोच रही हूँ।

लछिया ने कहा,—"दुत पगली ! बेमौत मरेगी, अगर ऐसा किया। जो लेना हो, इस समय उससे (बिहारी से) ले ले। नहीं तो जन्म भर रोयेगी।"

सोना ने कहा,—"मुझसे तो कुछ माँगा नहीं जाता। वह सुन्दर मुख देखकर सब कुछ भूल जाती हूँ।"

लछिया ने व्यंग से कहा,—"अरे बीबी, यही सुन्दरता तो अन्त में तुम्हें रुलायेगी। आज तुम उससे ज़रूर गहने माँगना। तुम जो कुछ माँगोगी वह तुम्हें देगा। जो पुरुष अपनी स्त्री छोड़कर दूसरी स्त्री करता है, वह तो गाँठ का पूरा उल्लू है। उसकी गाँठ जितने जल्दी हो, खाली कराले नहीं तो क्या जाने यह बदल जाय। क्योंकि, उल्लू ही तो है।"

किसी ने किवाड़ खटखटाया। लछिया किवाड़ खोलने दौड़ी। चुरुट पीते हुए बिहारीलाल अन्दर घुसे। बिहारी ने कहा—"लछिया, सब ठीक है। कोई नई बात तो नहीं?"

लछिया ने कहा–"हाँ बाबू, तुम्हारे धर्म से सब ठीक है।"

सोना के लिये बेचैनी थी। बिहारीलाल उसके कमरे में गये। सोना सारा सिंगार किये पलङ्ग पर बैठी थी। बिहारी ने उसके सांवले कपोलों पर चुम्बनों की वर्षा की। सोना ने मुस्कुरा कर कहा,—"आज तो तुम बहुत देर से आये। तुम जब तक नहीं आते, यह जान तुम्हारे लिये बहुत छटपटाती है।"

बिहारी ने कहा,—"क्या करूँ, चिन्ता बीमार है, उसी के पास अब तक बैठा था। मुझे तो इस बीमारी के कुछ और ही रंग मालूम होते हैं।"

देनी होगी।

चिन्ता का नाम सुनते ही सोना सर्द पड़ गयी। तेवरी चढ़ाकर बोली,—" क्या रंग मालूम होते हैं ?"

बिहारी ने क्षुब्ध हृदय से कहा,–"उसे शायद मेरे तुम्हारे सम्बन्ध की बात मालूम होगयी है। इसीलिये उसका रात दिन मुंह चढ़ा रहता है।"

सोना ने कहा,—"उंह, इसका आसान सा इलाज है तुम पूछो, क्या ?"

बिहारी ने कहा—"बताओ क्या !"

सोना,—"तुम उसके पास रहना ही छोडदो। वह घर छोड़कर मेरे पास रहो। न वहाँ रहोगे न वह कुछ कहेगी।"

विहारी—"नहीं जी, ऐसा करने से मेरी नाक कट जायगी, दुनिया में बदनाम हो जाऊँगा।"

सोना ने बिगड़ कर कहा—"क्या मेरे पास रहने से बद-नामी होगी ? तो मुझे इस फेर में क्यों डाला ? हाय ! मर्द कैसे निर्दयी होते हैं !" सोना ने दो बूंद आसुओं के भी गिरा दिये।

बिहारी ने तुरन्त चूम कर कहा—"नहीं, नहीं, सोना! रो मत। मैं तो तुम्हारा हो चुका हूं। क्या तुम्हें विश्वास नहीं होता ?"

सोना ने आँसू भरे हुए नेत्रों से कहा—"विश्वास कैसे हो ? मैं कभी एक क्षण के लिये भी यह न समझ सकी कि तुम मेरे हो। हाँ, हाँ, तुम तो पराये हो तुम्हारे ऊपर मेरा दावा कैसा ?"

बिहारी ने सोना को प्यार कर लिया। कहा—"प्यारी, ऐसी बातें न करो। मेरा दिल कटता है।"

सोना ने बड़ी आदर भरी दृष्टि से देखा। उसने कहा—"तुमने न अबतक मुझे सोने की चूड़ियाँ दीं, न मोतियों की माला दी, न साड़ी दी, कुछ भी न दिया। पर, मैं तुम्हारे ऊपर न्योछावर हो चुकी हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो ......"

बिहारी ने बात काट कर कहा—"तुम घबड़ाती क्यों हो! मैं तुम्हारे लिये सब ज़ेवरों का प्रबन्ध कर रहा हूँ। इस हफ़्ते के अन्दर तुम्हें मिलेंगे। न मिलें, तो मुझे कहना।"

सोना मन-ही मन बहुत प्रसन्न हुई। सोना ने प्रेम-दृष्टि से निहारते हुए कहा—"मुझे एक बार प्यार कर के कहो।"

बिहारी ने कहा—"एक बार नहीं, दो चार और हज़ार बार प्यार कर के कहता हूँ, इस हफ़्ते में गहने मिलेंगे।"

बिहारी ने सोना को बारंबार प्यार किया। सोना तृप्त हुई।

(७)

मन का स्वेच्छाचार, जब बुद्धि को अन्धी कर देता है तब मनुष्य को लोक लज्जा, समाज-दण्ड और ईश्वरी कोप का भय नहीं रह जाता। तब मनुष्य पशुवत होकर न्याय और धर्म की परवाह नहीं करता। विवेक और ज्ञान के निकल जाने पर मनुष्य वास्तव में एक अत्यन्त भयङ्कर पशु है। वह पाप कर्म करने में अपना हक़ और दावा दिखाता है। यही दशा बिहारीलाल की है।

यह बात सर्वत्र फैल गयी कि बिहारीलाल वकील ने सोना कहारिन को अपनी रखेली बना कर रख लिया है। मुहल्ले टोले की स्त्रियाँ आ आ कर दबी ज़बान से चिन्ता प्रगट करती थीं, और उसके साथ सहानुभूति दिखाने की चेष्टा

करती थीं । पहले थोड़ा सुना, फिर कुछ अधिक सुना, क्रमशः यह बदनामी बढ़ती ही गयी । कुएँ और कल पर पानी भरने वाली स्त्रियाँ सोना-बिहारी की बातें हाथ मटका मटका कर करती थीं, बरतन माँजते माँजते दो कहारिनें वही बात करती थीं । चिन्ता से मिलने जो स्त्री घर में आती थी, उसके मुख का भाव देख कर चिन्ता समझ जाती थी कि सोना की बात इसे भी मालूम है । चिन्ता को उस समय बड़ी लज्जा मालूम होती थी । चिन्ता अपने को बारंबार धिक्कारती थी ।

बिहारीलाल अब कई कई दिन घर नहीं आते । सोना ने जैसा कहा था, उसके अनुसार उन्हें अब सोना ही के यहाँ अधिक अच्छा मालूम होता है । चिन्ता ने एक दिन ज़बान से पूछा तो बिहारी ने कड़क कर कहा,—"क्या तुम अब मेरे चलने फिरने की भी स्वतंत्रता में बाधा डालना चाहती हो ? मैं ऐसी बाधा को ठुकरा देता हूँ !" यह ठोकर चिन्ता के कलेजे में लगी ।

चिन्ता ने दिल में कहा,—"हाय !" पर प्रत्यक्ष स्वामी से कुछ भी न कहा । उस दिन से चिन्ता ने बिहारी से फिर कभी यह न पूछा, कि तुम कहाँ रहते हो ।

दोपहर का समय दुःख भरे आलस्य में बीत रहा है । चिन्ता अपने कमरे में अकेली बैठी सिसकियाँ भर रही है । नीचे फ़र्श पर उसकी प्यारी बिल्ली "मनवी" बैठी है । उसकी मैना को मरे बहुत दिन हुए । तब से चिन्ता का समस्त मनोरंजन मनवी से होता है ।

चिन्ता की पलकें आँसुओं से भीगी थीं । सामने मनवी

बैठी आर्तदृष्टि से उसकी ओर निहार रही थी, मानों पूछती थी—"स्वामिन ! क्यों रोती हो ?,'

चिन्ता ने रोते रोते 'मनवी' को गोद में ले लिया । कहा-मनवी ! देखती है, स्त्री को कितना कठोर कलेजा करना पड़ता है ।

मनवी इसका क्या उत्तर दे । वह केवल चिन्ता की गोद में बैठी दुम हिला रही थी । चिन्ता ने उसे अपनी बाहों में दबा कर कहा—"मनवी ! देख स्वामी कैसे निष्ठुर हो गये हैं ! क्या करूँ ? विश्वास में अविश्वास कैसे करूँ । हाय ! स्वामी ने निर्मोही होकर मुहँ फेर लिया !"

मनवी ने दुम हिलाई । चिन्ता की ओर देख कर ' घुर घुर' किया । इसके अतिरिक्त मनवी और क्या कहती । मनवी की भाषा चिन्ता के समझने लायक थी । किन्तु, कौन जाने ! मनवी यह कह सकती,—"स्वामिनी ! अविश्वासियों से विश्वास पाने की चेष्टा क्यों करती हो ? हम अबोध जीव हैं हम पर विश्वास करके देखो । तुम देखोगी कि स्वार्थी मनुष्यों की अपेक्षा हम कितने अधिक विश्वासपात्र होने की योग्यता रखते हैं ।"

चिन्ता ने मनवी को कलेजे से चिपका कर प्यार किया ।

इतने में, दासी कमरे में आयी । उसके हाथ में डाक से आया हुआ एक लिफाफा था । दासी ने वह लिफाफा चिन्ता को दे दिया ।

यह उसकी बाल-सहेली प्यारी मुन्नी की चिट्ठ थी । मुन्नी ने लिखा था:—

"मेरी प्यारी भूली बहन,-मेरी प्यारी-प्यारी चिन्ता प्यारी को अपनी मुन्नी का खूब जोर से चिमट के प्यार पहुँचे ।

'अरी सखी ! बारे बलमा ने रिझा लिया। क्यों ? बालम के प्यार के सामने क्या अब मुन्नी की याद नहीं रही ? मैं तेरी एक चिट्ठी के लिये तड़पती हूँ, पर यही सोच कर सब्र करती हूँ कि, मेरी सखी सुख-सोहाग से सलामत रहे, जब उसे याद होगी तो लिखेगी।

"पर, बहन ! तू बड़ी निष्ठुर है। फिर यही कहूँगी कि, बलमा की बातों ने, घातों ने और रातों ने तुझे रिझा लिया। कभी हम गरीबों की भी याद हो तो दो हर्फ तो लिख देना।

तेरी प्यारी सखी,—मुन्नी।"

चिन्ता ने यह पत्र दो बार पढ़ा और अच्छी तरह रोई। वह रोते रोते मुन्नी के पत्र की आलोचना करने लगी। उसने कहा—"हाय, 'बारे बलमा ने रिझा लिया,' सखी मुन्नी को क्या मालूम कि बलमा की लातों ने हृदय कैसा कुचला है। हाय ! मुन्नी ! तू आ, देख मेरा हाल। मुझे अगर मरने से पहले देखना चाहती है, तो आ, और देख मुझे......"

पूर्व कल्पना के संचार, और प्राणपति के तिरस्कार से हृदय विह्वल हो उठा। "क्या पुरुष इतनी भी परवाह नहीं करता...क्या इतनी भी परवाह नहीं करता ? मुझे प्राण-धन बनाया था, आज उसी धन को...हाय, उसी धन को ठोकरों से मार रहे हैं...हाय मेरे प्राण ! मेरे प्राण ! ऐसा न करो... हाय ! दिल ! मेरा दिल ! तुम्हारी ठोकरों में है...हाय, यह नहीं रहेगा। प्राणधन ! इसे दूर न करो ! मुझे दूर न करो !......"

चिन्ता के बाल मुँह पर बिखर गये थे। रोते रोते उसने हाथों से मुँह ढाक लिया। संसार धूएं के समान धुँधला

छा गया। उस अन्धकार में निराशा की चिनगारियाँ उड़ रही थीं। हर तरफ़ आग धधकती हुई मालूम होती थी।

चिन्ता का सारा शरीर जलने लगा। मुझे कंठ में सूइयाँ चुभने लगीं। पीड़ा से मस्तक के सौ टुकड़े हो रहे थे।

चिन्ता धम से पलङ्ग पर बेसुध होकर गिर गयी।

इसी समय, बिहारीलाल धीरे से कमरे का दरवाज़ा खोलते हुए अन्दर घुसे। उन्होंने देखा कि, चिन्ता पलङ्ग पर अचेत पड़ी है। उन्होंने पास जाकर बालों में छिपे हुए मुख को देखा। चिन्ता का मुख मलिन हो रहा था, वह मुख स्वर्ण जैसा कुछ विचित्र हो गया था।

सती, पतिप्राणा स्त्री का यह भयानक मुख देखकर बिहारीलाल एक बार डरे। अपने अपराध और अत्याचार से भरे हुए अपराधों को वह जानते थे। उन्हीं अपराधों ने इन्हें एक बार डराया।

परन्तु, अपराधों के दलदल कीचड़ में फँसा हुआ मनुष्य उस दलदल से निकल आने का प्रयत्न बहुत ही कम करता है। कभी कभी आत्मा की सच्ची आवाज़ जब यह चेतावनी सुना देती है कि, 'तू पापों में फँसा है' परन्तु, मनुष्य जब उसी ओर निकलने का उद्योग न करे, तब समझना चाहिये कि, वह पापों में अच्छी तरह फँस गया है। तब आत्मा की यह आवाज़ भी नहीं सुनायी देती। वह केवल पापों के मार्ग पर चलता है, और पाप कर्म करने के लिये अधिक उत्साहित होता है।

बिहारीलाल ने कहा,—"उफ़! बहुत देर हो रही है। इसे (चिन्ता को) किसी तरह होश में लाना चाहिये, तब काम बनेगा।"